ग्रंथांक....330

परम-रहस्य/ चरम विकास

(आत्मार्थी ही सत्यार्थी, स्वार्थी, पुरुषार्थी-विवेकी-मुक्त)

(गद्य-पद्यमय)

-आचार्य कनकनन्दी

पुण्य-स्मरण

धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान के संस्थापक डॉ. सुशील चन्द्र जैन (बडौत U.P.)के पुण्यस्मरणार्थ।

स्वप्रेरित अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

(1) धर्मदर्शन विज्ञान शोध संस्थान

(2) धर्मदर्शन सेवा संस्थान

ग्रंथांक-330 संस्करण-2020 प्रथम

प्रतियाँ-500 मूल्य-151रु. (ज्ञान प्रचारार्थ सहयोग)

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-श्री हेमन्त प्रकाश देवड़ा (महावीर)

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,

उदयपुर (राज.)-313001/मो. 94608-78187

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, 55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001

फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622

E-mail:nlkachhara@yahoo.com

विषयानुक्रमणिका

अ.सं.	विषय	पृ. स.
1.	बहिरात्मा (अहंकार)-->अन्तरात्मा (सोऽहं)-->परमात्मा-सिद्ध...	4
2.	मैं हूँ धन्यः स्व आत्म तत्त्व ज्ञान के लाभ से	5
3.	मेरा बाह्य-आडम्बर त्याग के कारण	11
4.	समाज के लिए गम्भीर चिन्तन का विषय	12
5.	आत्मार्थी ही होते है यथार्थ से लक्ष्यनिष्ठ। मैं हूँ आत्मा बनूँ परमात्मा	16
6.	मोही-निर्मोही के भाव-लक्ष्य-स्वार्थ-काम	36
7.	न लोकाः पारमार्थिक	61
8.	आत्मविशुद्धि बिन बाह्य तप त्याग से मोक्ष नहीं	67
9.	स्व-आत्मश्रद्धान ज्ञानाचरण करूँ अन्यथा संयम-तप-श्रुत...	68
10.	आत्मविश्वासी ज्ञानी चारित्र वाले ही सही पुरुषार्थी अन्य करते दासवृत्ति	73
11.	शुद्ध भाव ही धर्म अशुद्ध भाव ही अधर्म	96
12.	मैं हूँ अद्वितीय (एकला) सदा सर्वत्र	139
13.	आत्महितग्राही व अहितत्यागी ही विवेकी	176
14.	कटु वाणी	199
15.	श्रमण निर्वाण हेतु बनते हैं, न कि निर्माण हेतु	203
16.	पराश्रित बाह्य प्रभावना परे आत्मसाधना करूँ!	209
17.	स्वतंत्र बनने हेतु मेरा पुरुषार्थ	212
18.	सत्य का अनन्त वैश्विक स्वरूप	246
19.	चैतन्य चमत्कार	279
20.	संसार की विपरीत परिणति	295
21.	हे आत्मन्! निश्चय से तू ही तेरे मोक्षमार्ग-मोक्ष	312

22.	आत्मविशुद्धि श्रद्धा प्रज्ञा से जैनधर्म पलता (चारों गतियों के सुदृष्टि होते हैं जैन)	323
23.	मैं हूँ निश्चय से स्वयंभू-स्वयंपूर्ण-स्वाधीन	324
24.	विज्ञान की उपलब्धियाँ व कमियाँ	342
25.	प्रदूषणकारी मानव आध्यात्मिक दृष्टि से अविकसित	344
26.	शुद्धात्मा गुण गण कीर्तन	345
27.	बागड़वासियों के दोष दूर...	346
28.	आचार्य श्री कनकनन्दी श्रीसंघ के निस्पृह....से प्रभावित 400 चातुर्मास हेतु निवेदन	349

सर्वत्र ध्यान रखने योग्य

वर्तमान की जैनधर्म सम्बन्धी समस्याओं व विषमताओं के समाधान-निवारण हेतु अनेक वर्षों (2004) से अनेक लोगों के निवेदन व रिपोर्ट से भी प्रेरित होकर (1) जैनधर्म के अभी की समस्याएँ एवं समाधान (2) श्रावक-साधु धर्म (3) ध्यान (4) भाव (5) भाव-द्रव्य प्रदूषणः समस्या-समाधान आदि कृतियों की रचना हुई।

दोष, निन्दा व अप्रभावना से बचने व बचाने हेतु मेरा यह शुभ प्रयास है, न कि अन्य की निन्दा आदि हेतु।

-आचार्य कनकनन्दी

बहिरात्मा (अहंकार)-->अन्तरात्मा (सोऽहं)--> परमात्मा-सिद्ध (''अहं'' मैं)

('मैं' (अहं)='सिद्ध' का आध्यात्मिक रहस्य)

('अहंकार' त्याग से 'सोऽहं' से 'अहं' (मैं) मुझे बनना है...)

(सिद्ध अवस्था (भगवान्) ही पूर्णतः 'अहं' (मैं) है, अरिहन्त अवस्था भी पूर्णतः 'अहं' (मैं) नहीं!)

चाल : 1. क्या मिलिए... 2. इक परदेसी....

- आचार्य कनकनन्दी

'अहंकार' त्यज 'सोऽहं' द्वारा, मुझे 'अहं' (मैं) ही बनना है।
यह ही धर्म का सही स्वरूप, परमात्मा मुझे बनना है।।
'अहंकार' है 'बहिरात्मपना', जिसे कहते हैं मिथ्यात्व।
इसे ही कहते 'अन्धश्रद्धान', 'कुदृष्टि' या 'मिथ्यादर्शन'।।(1)

ऐसे जीव शरीर को ही 'मैं' मानते, व करते हैं 'अष्टमद'।
तन-मन धन भाई बन्धु कुटुम्ब, शत्रु-मित्र में करते 'ममकार'।।
इससे युक्त ही धर्म करते, ख्याति पूजा लाभ वर्चस्व हेतु।
इह पर लोक में भोग चाहते, जो यथार्थ से संसार हेतु।।(2)

बाह्य तप त्याग व्रत नियम, शील उपवास इनके हैं व्यर्थ।
आत्मश्रद्धान ज्ञान चारित्र रहित, मिथ्यात्व से सभी होते हैं व्यर्थ।।
अहंकार त्याग से परे होता है, 'सोऽहं' (मैं शुद्धात्मा) जिससे धर्म प्रारम्भ।
इसे कहते हैं 'आत्मश्रद्धान' या 'सम्यक्त्व' या 'सत्यदर्शन'।।(3)

इससे 'अहंकार' जन्य उपरोक्त, सभी दोष भी हो जाते मुक्त।
'निःशंकित' आदि 'अष्टअंग' युक्त, देव शास्त्र गुरु के बनते भक्त।।
चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जैन से ले, 'श्रावक' व 'श्रमण' के 'सोऽहं' भाव।
मैं भी शुद्धात्मा बन सकता हूँ, 'अन्तरात्मा' से 'परमात्मा' भाव।।(4)

यथायोग्य स्व-स्व भूमिका अनुसार, पालते हैं धर्माचार।
गृहस्थ श्रावक दान पूजादि करते, 'श्रमण' पालते 'श्रमणाचार'।।

श्रावक अवस्था से न होता मोक्ष, किन्तु परम्परा से पाते मोक्ष (अहं, मैं)।
श्रमण अवस्था से तद्भव या, परम्परा से पाते हैं मोक्ष (अहं, मैं)।।(5)...

मोक्ष ही पूर्णतः 'अहं' (मैं) अवस्था, पूर्वावस्था न पूर्ण 'अहं' (मैं)।
'णिरंजणो सो 'अहं' भणियो'', निरञ्जन (सिद्ध) को 'अहं' (मैं) कहते अरिहन्त।।
अरिहन्त अवस्था में भी अघाती कर्म है, तथाहि परम औदारिक शरीर।
अतः अरिहन्त अवस्था भी पूर्णतः, 'अहं' (मैं) नहीं अवस्था 'नो संसार'।।(6)..

इस अवस्था को प्राप्त करने हेतु, 'अहंकार' त्यज ध्याओ हे! 'सोऽहं' भाव।
'सोऽहं' 'सोऽहं' ध्यान से, सकार (सो-वह) त्याग से बनूँ 'अहं' (मैं) भाव।।
कुज्ञानी मोही न जानते हैं, यह परम आध्यात्मिक रहस्य।
'अहंकार' 'ममकार' रूपी 'अहं' (मैं) करते, न जानते शुद्ध 'अहं' (मैं) भाव।।(7)...

इसीलिए तो अनादिकाल से जीव, कर रहे हैं संसार भ्रमण।
संसार भ्रमण नाश करने हेतु, 'सोऽहं' से 'अहं' (मैं) चाहे 'कनकश्रमण'।।(8)....

नन्दौड़, दि. 7.9.2019, रात्रि 9.22

मैं हूँ धन्यः स्व आत्म तत्त्व ज्ञान के लाभ से

(चालः 1.रातकली... 2.आत्मशक्ति...)

-आचार्य कनकनन्दी

धन्य हे! मुझे लाभ हुआ है, आत्मतत्त्व का ज्ञान हुआ।
मैं हूँ स्वयंभू अनादि अनिधन, अनन्तज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय।। (ध्रुव)
तन मन इन्द्रिय राग द्वेष परे, अमूर्तिक शुद्ध बुद्ध आनन्द हूँ।
जन्म जरा मरण से परे अमृतमय, शत्रु मित्र परे सत्य साम्यमय।।
अकृत्रिम अविनाशी अभौतिकमय, द्रव्य भाव नोकर्म चैतन्यमय।
सप्त धातु परे मेरा स्वरूप, D.N.A R.N.A परे मेरा स्वरूप।। (1)
स्पर्श रस गन्ध वर्ण रहित हूँ, जाति वर्ण पंथ मत रहित हूँ।
भाषा भाषी राष्ट्र सीमा रहित हूँ, छोटा बड़ा भेदभाव रहित हूँ।।
चौरासी लक्ष-योनि गति रहित हूँ, मन मस्तिष्क से रहित आत्मा हूँ।
स्वतंत्र मौलिक स्वयंपूर्ण हूँ, सच्चिदानन्द मैं शिव रूप हूँ।। (2)

किन्तु अनादि काल से कर्मबन्ध से, बना हूँ संसारी अशुद्ध दशा से/(में)।
यथा अमूर्तिक अनन्त आकाश होता, (किन्तु) पुद्गल के कारण दिखे वर्णादि दशा।
मेरे शुद्ध स्वरूप को न जानते मूढ़, जो रागद्वेष मोहादि से विमूढ़।
वे भले हो दार्शनिक वैज्ञानिक सन्त, न्यूटन आइन्स्टीन हॉकिंग तक।
नेता अभिनेता कवि लेखक तक, आत्म विशुद्धि बिन अज्ञात सत्य।। (3)
पूर्व जन्मों के दृढ़ आत्म संस्कार, बाल्यकाल से मेरी जिज्ञासा प्रबल।
देव शास्त्र गुरु जनों के कारण से, आत्म ज्ञान का लाभ हुआ मुझमें।।
इस लाभ से मैं हुआ महान् से महान्, राजा महाराजा चक्री से भी महान्।
सेठ साहुकार नेता मंत्री से भी महान्, मेरा लाभ तो आत्मिक गुण महान्।। (4)
इस लाभ से मैं बनूँगा परमात्मा, सत्य शिव सुन्दर शुद्धात्मा।
इस लक्ष्य हेतु मैं कर रहा हूँ साधना, ख्याति पूजा लाभादि की नहीं कामना।।
निस्पृह निराडम्बर मैं करूँ साधना, एकान्त मौन में आत्माराधना।
समता शान्ति से करूँ आत्मानुभव, आत्मविशुद्धि से करूँ आत्मविकास।। (5)
आत्म वैभव का कर रहा हूँ गौरव, दीन हीन अहंकार विरक्त भाव।
शरीर माध्यम से आत्म साधना करूँ, इस हेतु शरीर की करूँ सुरक्षा।।।
आत्मज्ञान करूँ (मैं) आगम अनुभव से, अलौकिक गणित व कर्म सिद्धान्त से।
आधुनिक विज्ञान व मनोविज्ञान से, स्वप्न शकुन अंग स्फुरण से।। (6)
अन्ध विश्वास रूढ़ि दिखावा परे, देखा देखी भौतिक लाभ से परे।
श्रद्धा-प्रज्ञा आत्मानुभव से युक्त, 'कनक सूरी' धन्य आत्मज्ञान संयुक्त।। (7)

नन्दौड़ 6-9-2019 रात्रि 11.43

मोसे नैना मिलाय के

मोहे तोरा रंग मन भायो निजामुद्दीन औलिया
मोहे अपने ही रंग में रंग दे ख़्वाजा जी
मोहे रंग बसंती रंग दे, ख़्वाजा जी
निजामुद्दीन औलिया, निजामुद्दीन औलिया
मैं तो जब देखूं मोरे संग है री
आज रंग है री, हे मां रंग है री

यह जो है कोई कलाम नहीं, कोई क़व्वाली नहीं सरापा जादू है। गुनाहों से निजात दिलाने वाला जादू। ख़ुदी को ख़ाक़ करके ख़ुदाई की तरफ़ बढ़ता कदम है। 'हम' से उठाकर 'सोहम'-जो तुम सो हम-के मुक़ाम पर पहुंचाने वाला जादू। इस वक़्त मैं हज़रत निज़ामुद्दीन और अमीर खुसरो के रिश्तों की कहानी नहीं कह रहा कि वो एक तव्वील और नायाब कहानी है। सो उस पर पूरी तफ़्सील से बात होगी। इसी कड़ी में, अलग से।

एक और मारूफ़ कलाम है जिसे मैंने बहुत से लड़कपन में रेडियों पर हबीब पेंटर की आवाज में सुना था। तब सिर्फ़ 'बहुत कठिन है डगर पनघट की' भर ही मन को भाया था। उम्र बड़ी, अच्छे लोगों की संगत मिली तो अगला मिसरा भी समझ आया-'कैसे मैं भर लाऊ मधवा से मटकी।' अब जो उम्र के इस पढ़ाव पर हूं तो ज़बान पर बार-बार आता है-'अब लाज राख मोरे घूंघट पट की।' यहाँ तक आते-आते सांसे इस क़दर फूल चुकी हैं कि जी चाहता है अमीर खुसरों के इस क़ौल को हर ख़ास-ओ-आम के लिए आसमान पर लिखवा डालूं-'बहुत कठिन है डगर पनघट की।' राह आसान हो न हो, शायद राहगीर हुशियार हो जाए।

सूफ़ी की सिफ़त, सूफ़ी का किरदार-प्रेम, महुब्बत, प्यार। इस बात को अमीर खुसरो कैसे कहते हैं।

खुसरो बाज़ी प्रेम की, जो मैं खेली पी के संग
जीत गए तो पीउ मेरे, जो मैं हारी, पी के संग
खुसरो रैन सुहाग की, जागी पी के संग
तन मेरो मन पीउ को, दोऊ भए इक रंग

खुसरो की इस बात को उन्हीं से एक और तरह से भी सुन लीजिए।

खुसरों दरिया प्रेम का, उल्टी वा की धार
जो उतरा सो डूब गया, जो डूबा सो पार

फिर वही बात-'हम' से 'सोहम'।

रैनी चढ़ी रसूल की, रंग मौला के हाथ
जिसकी चुनरी रंग गई, धन-धन उसके भाग

सूफ़िया रंगों की इस रंगीन महफ़िल में अमीर खुसरो के धनक रंगों में से कुछ रंग तो हो ही गए, सो दिल चाहता है कि जाते-जाते एक रंग और हो जाए।

हज़रत ख़ाजा संग खेलिए धमाल
बाइस ख़ाजा मिल बन-बन जाए
हज़रत ख़्वाजा संग खेलिये धमाल
अरब यार तेरो बसंत बनायो
सदा रखिए लाल गुलाल
हज़रत ख़्वाजा संग खेलिए धमाल।
और...

अमीर खुसरो की प्रतिभा बेजोड़-बेमिसाल थी। संगीत में कविता और कविता में संगीत का दरिया था जो किनारे छोड़-छोड़ जीवन धारों में प्रवाहित होने लगता था। ऐसी अनेक मिसाले हैं। एक आप भी सुन लें। बाज़ार से गुज़रते हुए अमीर खुसरो के कानों में रूई धुनने वाले धुनिए की धुनकी की तांत से उठती एक ताल भरी आवाज़ को पहले सुना और फिर गुना। खुसरो के होंठों पर आकर धुनकी की धुन राग बन गई।

'दर पये जाना जां',
हम रफ़्त, जां हम हम रफ़्त
जां हम रफ़्त-आं, हम रफ़्तो आं,
ई हम रफ्तो-आं, हम रफ्तो आं,
आं हम रफ़्त, आं हम रफ़्त
ई हम आं हम, ई हम आं, हम रफ़्त,
रफ़्तन रफ़्तन रफ़्तन देह देह रफ़्तन
देह, रफ़-रफ़ रफ़्तन देह, रफ़्तन देह।

इस धुनकी की धुन ज़िंदगी की धुन है। जिस तरह धुनकी रुई को कूट-कूट कर उसके बिनोले बाहर निकाल फेंकती हैं, उसी तरह ज़िंदगी की गर्दिशें इंसान को उलट-पुलट कर, कूट-काट कर उसके अहंकार को निकाल बाहर करती है। अमीर खुसरो की लय-ताल में रची-बसी कविता में वह जादू है कि इस धुनकी से गुज़रते वक़्त भी शूल की जगह फूल का अहसास होता है।

जय-जय।

(राजकुमार केसवानी)
(दैनिक भास्कर)

मैं क्या हूँ

कः काल कानि मित्राणि को देशः को व्ययाऽऽगमौ।
कश्चाहं का च मे शक्तिरितिचिन्त्यं मुहुर्मुहुः।।-चाणक्य

''कौन-सा समय है, मेरे मित्र कौन हैं, शत्रु कौन हैं, कौन-सा देश (स्थान) है, मेरी आय-व्यय क्या है, मैं कौन हूँ, मेरी शक्ति कितनी है? इत्यादि बातों का बराबर विचार करते रहो।'' सभी विचारकों ने ज्ञान का एक ही स्वरूप बताया है, वह है-'आत्मबोध!' अपने संबंध में पूरी जानकारी प्राप्त कर लेने के बाद कुछ जानना शेष नहीं रह जाता। जीव असल में ईश्वर ही है। विकारों में बँधकर वह बुरे रूप में दिखाई देता है, परंतु उसके भीतर अमूल्य निधि भरी हुई। शक्ति का वह केंद्र है और इतनी शक्ति है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। सारी कठिनाइयाँ, सारे दुःख इसी बात के हैं कि हम अपने को नहीं जानते। जब आत्मस्वरूप को समझ जाते हैं, तब किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं रहता। आत्मस्वरूप का अनुभव करने पर वह कहता है-

''नाहं जातो जन्म मृत्युः कुतो मे, नाहं प्राणः क्षुत्पिपासा कुतो मे।
नाहं चित्तं शोकमोहौ कुतो मे, नाहं कर्त्ता बंधमोक्षौ कुतो मे।।''

मैं उत्पन्न नहीं हुआ हूँ, फिर मेरा जन्म-मृत्यु कैसे? मैं प्राण नहीं हूँ, फिर भूख-प्यास मुझे कैसी? मैं चित्त नहीं हूँ, फिर मुझे शोक-मोह कैसे? मैं कर्त्ता नहीं हूँ फिर मेरा बंध मोक्ष कैसे?

जब वह समझ जाता है कि मैं क्या हूँ? तब उसे वास्तविक ज्ञान हो जाता है और सब पदार्थों का रूप ठीक से देखकर उसका उचित उपयोग कर सकता है। चाहे किसी दृष्टि से देखा जाए, आत्मज्ञान ही सर्वसुलभ और सर्वोच्च ज्ञान ठहरता है।

किसी व्यक्ति से पूछा जाए कि आप कौन है? तो वह अपने वर्ण, कुल, व्यवसाय, पद या संप्रदाय का परिचय देगा। ब्राह्मण हूँ, अग्रवाल हूँ, बजाज हूँ, तहसीलदार हूँ, वैष्णव हूँ आदि उत्तर होंगे। अधिक पूछने पर अपने निवास स्थान, वंश, व्यवसाय आदि का अधिकाधिक विस्तृत परिचय देगा। प्रश्न के उत्तर के लिए ही यह सब वर्णन हो, सो नहीं, उत्तर देने वाला यथार्थ में अपने को वैसा ही मानता है। शरीर भाव में मनुष्य इतना तल्लीन हो गया है कि अपने आपको वह शरीर ही समझने लगा है।

वंश, वर्ण, व्यवसाय या पद शरीर का होता है। शरीर मनुष्य का एक परिधान है, औजार है, परंतु भ्रम और अज्ञान के कारण मनुष्य अपने आपको शरीर ही मान बैठता है और शरीर के स्वार्थ तथा अपने स्वार्थ को एक कर लेता है। इसी गड़बड़ी में जीवन अनेक अशांतियों, चिंताओं और व्यथाओं का घर बन जाता है।

मनुष्य शरीर में रहता है, यह ठीक है, पर यह भी ठीक है कि वह शरीर नहीं है। जब प्राण निकल जाते हैं, तो शरीर ज्यों-का-त्यों बना रहता है, उसमें से कोई वस्तु घटती नहीं, तो भी वह मृत शरीर बेकाम हो जाता है। उसे थोड़ी देर रखा रहने दिया जाए, तो लाश सड़ने लगती है, दुर्गन्ध उत्पन्न होती है और कृमि पड़ जाते हैं। देह वही है, ज्यों की त्यों, पर प्राण निकलते ही उसकी दुर्दशा होने लगती है। इससे प्रकट है कि मनुष्य शरीर में निवास तो करता है, पर वस्तुतः वह शरीर से भिन्न है। इस भिन्न सत्ता को आत्मा कहते हैं। वास्तव में यही मनुष्य है। मैं क्या हूँ? इसका सही उत्तर यह है कि, 'मैं आत्मा हूँ।'

शरीर और आत्मा की पृथकता की बात हम सब लोगों ने सुन रखी है। सिद्धांततः हम सब उसे मानते भी हैं। शायद कोई ऐसा विरोध करे कि देह से जीव पृथक् नहीं है, इस पृथकता की मान्यता सिद्धांत रूप से जैसे सर्व साधारण को स्वीकार है, वैसे ही व्यवहार में सभी लोग उसे अस्वीकार करते हैं। लोगों के व्यवहार ऐसे होते हैं, मानो वे वस्तुतः शरीर ही हैं। शरीर के हानि-लाभ ही उनके हानि-लाभ हैं। किसी व्यक्ति को बारीकी के साथ निरीक्षण किया जाए और देखा जाए कि वह क्या सोचता है? क्या कहता है? और क्या कहता है? तो पता चलेगा कि वह शरीर के बारे में सोचता है, उसी के संबंध में संभाषण करता है और जो कुछ करता है, शरीर के लिए करता है। शरीर को ही उसने 'मैं' मान रखा है।

शरीर आत्मा का मंदिर है। उसकी स्वस्थता, स्वच्छता और सुविधा के लिए कार्य करना उचित एवं आवश्यक है, परंतु यह अहितकर है कि केवल मात्र शरीर के ही बारे में सोचा जाए, उसे अपना स्वरूप मान लिया जाए और अपने वास्तविक स्वरूप को भुला दिया जाए। अपने आपको शरीर मान लेने के कारण शरीर के हानि-लाभों को भी अपने हानि-लाभ मान लेता है और अपने वास्तविक हितों को भूल जाता है। यह भूल-भुलैया का खेल जीवन को बड़ा कर्कश और

नीरस बना देता है।

आत्मा शरीर से पृथक् है। शरीर और आत्मा के स्वार्थ भी पृथक् है। शरीर के स्वार्थों का प्रतिनिधित्व इंद्रियाँ करती है। दस इंद्रियाँ और ग्याहरवाँ मन यह सदा ही शारीरिक दृष्टिकोण से सोचते और कार्य करते हैं। स्वादिष्ट भोजन, बढ़िया वस्त्र, सुंदर-सुंदर मनोहर दृश्य, मधुर श्रवण, रूपवती स्त्री, नानाप्रकार के भोग-विलास यह इंद्रिय की आकांक्षा है। ऊँचा पद, विपुल धन, दूर-दूर तक यश, रौब-दाब, यह सब मन की आकाक्षाएँ हैं। इन्हीं इच्छाओं को तृप्त करने में प्रायः सारा जीवन लगता है। जब ये इच्छाएँ अधिक उग्र हो जाती हैं, तो मनुष्य उनकी किसी भी प्रकार की पूर्ति के हेतु हर पाप करने लगता है। **-श्रीराम शर्मा आचार्य**

वर्तमान में जैन धर्म की समस्याओं से निर्लिप्त होने हेतु-
मेरा बाह्य आडम्बर त्याग के कारण

(मैं बहिरात्मा व बाह्य आडम्बर से परे अन्तरात्मा से परमात्मा बनूँ!)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : 1. मन रे!... 2. सायोनारा....)

आत्मन्! (कनक) तू स्वस्वरूप भजो ऽऽऽ

बहिरात्मा व बाह्य आडम्बर परे...अन्तरात्मा से परमात्मा बनो ऽऽऽ...(स्थायी)...

तन मन धन (बोली) ख्याति लाभ पूजा...राग-द्वेष काम क्रोध तृष्णा ऽऽऽ

शत्रु मित्र भाई बन्धु अपना पराया...ये सभी तेरे अनात्मा ऽऽऽ

इन्हें स्व मानना है बहिरात्मा ऽऽऽ (1)...

देह कलत्तं पुत्तं मित्ताइ विहाव चेदणा सरूवं।

अप्पा सरूवं भावइ सो चेव हवेई बहिरप्पा।। (134) रयण.

साधु बनकर यदि चाहो ख्याति पूजा...लाभ सत्कार पुरस्कार नाम ऽऽऽ

माईक मञ्च पाण्डाल होर्डिंग सज्जा...निमन्त्रण कार्ड पत्रिका गाजा बाजा ऽऽऽ

ये है बाह्य आडम्बर बहिरात्मा ऽऽऽ (2)...

खाई पूया लाहं सक्काराइं किमिच्छसे जोई।

इच्छेइ जइ परलोयं तेहि किं तव परलोयं।। (128) रयण.

इससे परे स्व स्वभाव प्राप्ति हेतु...अन्तरात्मा से बनो परमात्मा ऽऽऽ
इस हेतु त्यागो बहिरात्मा बाह्यडम्बर...स्व-आत्मा का ही करो पूजा सत्कार ऽऽऽ
स्वाध्याय-ध्यान में हो तत्पर ऽऽऽ (3)...

किं बहुणा हो तजि बहिरप्प सरूवाणी सयल भावाणी।

भजि मझम परमप्पा वत्थु सरूवाणी भावाणि।। (141) रयण.

अन्यथा यदि न त्याग किया तुमने...बहिरात्मापना व बाह्य आडम्बर ऽऽऽ
श्रमण बनकर भी बनोगे पापश्रमण...लौकिकाचार में होकर तू प्रवीण ऽऽऽ
संसार चक्र में होगा तेरा भ्रमण ऽऽऽ
(अतः) भजो तू! अलौकिक श्रमणाचार ऽऽऽ (4)...
अलौकिक श्रमणाचार पालन से...कर्म निर्जरा व सातिशय पुण्य बन्ध ऽऽऽ
जिससे इह परलोक सुधरेगा...परम्परा से पाओगे शिवसुख ऽऽऽ
बनोगे शुद्ध बुद्ध आनन्द ऽऽऽ (5)...

मोक्खगइ गमण कारण भूयाणि पसत्थ पुण्णहेऊणि।

ताणि हवे दुवियप्पा वत्थुसरूवाणी भावाणि।। (143) रयण.

मोक्षगति के गमन कारणभूत होता प्रशस्त पुण्यकारक।
वे होते अन्तरात्मा-परमात्मा वस्तु स्वरूप भाव से।।
अन्तरात्मा से परमात्मा बनने हेतु...करो हे! ध्यान व अध्ययन ऽऽऽ
स्व-पर-विश्व कल्याण भावना भाओ...अनात्म काम भाव से विरक्त ऽऽऽ
आत्मोपलब्धि ही 'कनक' का लक्ष्य ऽऽऽ (6)...

नन्दौड़, दि-9/9/2019, रात्रि 10.36

जैन गजट/2 सितम्बर, 2019

समाज के लिए गंभीर चिन्तन का विषय

चातुर्मासों की विपुल धनराशि समाज कल्याण में क्यों नहीं लग रही?

-घीसालाल गंगवाल 'जैनी', नागौर (राज.) मो.8104235289

पिछले 2 लेखों मैं जैन गजट ने मेरे फोन नम्बर छापकर मेरे प्रशंसकों से रूबरू

होने का शानदार अवसर प्रदान किया है। लेख मेरे पास डाक से पहुंचता नहीं, उसके पहले तो न जाने कितने सज्जनों के फोन आ जाते हैं। देश के हर कोने से नये-नये लोगों से जुड़ने का अवसर मिला तथा मुझे ये भी ध्यान पड़ गया कि कितने लोग मेरे लेखों को ध्यान से पढ़ते हैं। इतने दिन फोन नंबर न होने से लोग जुड़ नहीं रहे थे। अपना लेख शुरू करने से पहले मैंने ये भूमिका इसलिए बनाई है कि ये विषय चुनने में समाज के अनेको लोगों ने मुझे सलाह दी है। उन्होंने कहा है कि आप इस विषय पर लिखें। मैंने कहा कि हमारे समाज के अधिकांश लोगों के मन में भी ये तकलीफ है कि चातुर्मासों में संग्रह होने वाला धन समाज के कल्याण में न लगकर पंडितों, पंडालों, संगीतकारों में ही बंट जाता है। पता नहीं संतो के लिए ही जो संन्यासी बन चुके हैं। घर बार, धन-दौलत सब कुछ त्याग चुके है, भव्यतम पंडालों की परिपाटी क्यों चल पड़ी है। साधु-साध्वियों के निर्वाण महोत्सवों पर भी करोड़ों का धन केवल दिखावे के लिए खर्च होना क्या तर्क संगत है? हर धार्मिक आयोजनों में संगीतकारों द्वारा फिल्मी धुनों पर भजन गाये या बजाये जाते हैं और उन पर हम सभी झूमते हुए नजर आते हैं। क्या ये जैन धर्म का आधुनिकीकरण नहीं है? क्या इससे हमारा समाज कुछ संस्कार या धर्म की गहराई में उन्नति कर रहा है?

मेरे विचार से शायद इस नृत्य संगीत की होड़ के पीछे युवाओं को जोड़ने का आकर्षण होगा। ऐसा मैं सुनता आ रहा हूं कि इस जमाने में यह सब चाहिए वर्ना भीड़ जोड़ना मुमकिन नहीं। चलिए मैं मान लेता हूँ कि जमाने के हिसाब से कुछ बदलाव आयेगा।

इसमें मैं एतराज नहीं कर रहा। मेरी तकलीफ ये है कि इतने धन में कुछ धन समाज के उत्थान के लिए क्यों नहीं बचाया जाता? सभी जगह के चातुर्मासों में जहां कलश स्थापना की बोलियों से तथा अन्य प्रकार की बोलियों से जो भी धन एकत्रित होता है वहां की कमेटियों को सोच-समझकर कुछ धन समाज कल्याण के लिए बचा कर रखना चाहिए। सारा धन ऐसे कार्यों में खर्च होना सही नहीं जिसमें किसी का भी भला या कल्याण न हो।

अब मैं यहां अपनी तकलीफ का खुलासा करता हूं। मेरा आशय समाज कल्याण से क्या है? एक बार प्रमाण सागर जी महाराज ने शंका समाधान कार्यक्रम के दौरान

पूरे देश में जैन भिखारियों की संख्या का आंकड़ा बताया था। क्या हम सभी के लिए ये शर्म की बात नहीं कि हम देश में सबसे ज्यादा आयकर देने वाले तथा समृद्ध समझे जाने वाले लोग हैं।

फिर भी हमारे ही भाई भीख मांगकर गुजारा करते हैं। कई परिवार तो कर्ज के कारण आत्महत्या कर चुके हैं। कुछ दिन पूर्व ये घटना कोटा में हुई थी और मैंने जैन गजट में प्रकाशित भी कराई थी। अभी कुछ दिन पूर्व जोधपुर मैं जैन परिवार का मकान गिर गया और एक महिला की मौत हो गई। उसके आस-पास ही हो रहे चातुर्मास में करोड़ों खर्च हो रहे हैं। ये खबर एक सम्मानित पत्रिका में छपी है। मुझे खुद शर्म आ रही है कि आखिर हमारी सोच किस ओर घूम रही है? क्या कुछ गिने चुने लोगों के द्वारा धन खर्च के अपनी जय-जयकार करा लेने का ही नाम धर्म या पुण्य है? वो भी सही, मगर क्या हमारे समाज के दीन-दुखी लोगों के लिए हमारे पास कोई मद नहीं? ऐसा कौन सा महान अस्पताल है जहां जैन परिवार अपने असाध्य रोगों का निःशुल्क ईलाज करा सके? ऐसा कौन सा विश्वविद्यालय है, जहां गरीब जैनी अपने परिवार होनहार बचों को निःशुल्क दिला सके? ऐसा कौन सा फंड है जहां से कोई गरीब बाप अपनी सुन्दर कन्या के लिए सुयोग्य वर प्राप्त करने के लिए कुछ मदद प्राप्त कर सके।

ऐसे अनेक प्रश्न हैं जो हवा में तैर रहे हैं, इनका उत्तर कहीं नहीं। जब कुंए में ही भांग पड़ी हो तो नशा सबको आना ही है। क्या मेरे जैसे गांव में रहने वाले एक अति साधारण आदमी की करूण आवाज से समाज बदलाव करने के लिए आगे आयेगी और समाज कल्याण के लिए कुछ सोचा जायेगा, ये मेरी अकेले की आवाज नहीं, अनेक लोगों ने मुझे सुझाव दिया है।

विश्वसनीय व्यक्ति ही बन पाता है ब्राण्ड (प्रामाणिकता)

अगर आप खुद को एक ब्राण्ड बनाना चाहते हैं तो लोगों की निगाह में विश्वसनीय व्यक्ति के रूप में अपनी पहचान बनाएं।

हम देखते हैं कि कुछ व्यक्ति अपने जीवन में ही ब्राण्ड बन जाते हैं यानी उसका नाम जेहन में आते ही एक विशिष्ट विचार हमारे दिमाग में आते हैं। अपने कभी सोचा

है कि कोई व्यक्ति कैसे ब्राण्ड बनता है। उत्तर है-जुनून, मौलिकता, प्रतिबद्धता और विश्वसनीयता। बदलाव दुनिया का स्थाई नियम है। परिस्थिति, प्रकृति, समय, विचार और व्यक्ति इस परिवर्तन के वाहक होते हैं। प्राकृतिक परिवर्तनों को छोड़ दिया जाए तो सभी सामाजिक परिवर्तन वैचारिक परिवर्तन से ही संभव होते हैं और यह विचार प्रारम्भिक रूप में अनिवार्य रूप से व्यक्तिगत ही होता है। इसलिए विचारों के प्रति सजगता जरूरी है।

कभी समझौता नहीं किया

चाहे भगवान बुद्ध हों, ईसा मसीह हों, हजरत मोहम्मद हो, गुरुनानक हों, सुकरात हों या गांधीजी, इन सबने अपने विचारों का प्रचार स्वयं किया और इसके लिए जो भी विरोध, जिस भी स्तर का रहा हो, इन्होंने स्वयं सहन किया। वे अपने विचारों से डिगे नहीं और उनके साथ कभी समझौता नहीं किया।

विश्वास न खोने पाए

धीरूभाई अम्बानी भारत ही नहीं, विश्व में अपने निवेशकों के बीच विश्वसनीयता में प्रतीक माने जाते रहे। कई बार उन्होंने बिल्कुल विपरीत परिस्थितियों में भी विश्वास नहीं खोया। यह उसी विश्वास का नतीजा था कि नब्बे का दशक तक आते-आते उनके साथ 24 लाख निवेशक जुड़ चुके थे।

ब्राण्ड के लिए मेहनत जरूरी

कोई संगठन किसी एक व्यक्ति की विश्वसनीयता और विवेक से संचालित होता है। इसी कारण वह समाज में स्वीकार किया जाता है। महेन्द्र सिंह धोनी जब तक मैदान में चौके-छक्के मार रहे हैं, जब तक वह हर ब्राण्ड के एम्बेसेडर हैं। वह क्रिकेट से संन्यास ले लें तो ब्राण्ड उतना पॉपुलर नहीं रहेगा।

भरोसा भी आवश्यक

जब भी कोई व्यक्ति खुद को एक ब्राण्ड बनाना चाहता है तो उसे अपने मन, वचन और कर्म की शुद्धि पर ध्यान देना चाहिए। ब्राण्ड का अर्थ विश्वसनीयता है। हर बड़े व्यक्तित्व की विशेषता होती है कि वह अकेले निर्णय लेता है, पर वह सबको साथ लेकर चलता है।

-स्वप्निल कोठारी, मोटिवेशनल स्पीकर

लेसन्स फ्रॉम ग्रेट थिंकर्स

विलियम शेक्सपियर जन्म-अप्रैल 1564। निधन-23 अप्रैल 1616

अंग्रेजी कवि, नाटककार और अभिनेता थे। इन्हें दुनियाभर में अंग्रेजी के महान लेखक और महान् नाटककार के रूप में जाना जाता है।

1. मूर्ख व्यक्ति खुद को बुद्धिमान समझता है, लेकिन बुद्धिमान व्यक्ति खुद को मूर्ख मानता है।

2. कुछ लोग महान पैदा होते हैं, कुछ महानता हासिल करते हैं और कुछ लोगों के ऊपर महानता थोप दी जाती है।

3. एक मिनट देर से आने से अच्छा है तीन घंटे पहले आ जाएं।

4. अपेक्षा सभी हृदय-पीड़ा की जड़ है।

5. सभी लोगों की सुनें पर कुछ ही लोगों से कहें।

6. एक छोटी-सी मोमबत्ती का प्रकाश कितनी दूर तक जाता है! इसी तरह इस दुनिया में एक अच्छा काम चमचमाता है।

7. मैंने समय नष्ट किया, अब समय मुझे नष्ट कर रहा है।

8. ना उधार लो, ना ऋण दो।

9. एक महान काम करने के लिए थोड़ी गलतियां भी कीजिए।

10.हम जानते हैं की हम क्या हैं, पर हम ये नहीं जानते की हम क्या हो सकते हैं।

आत्मार्थी ही होते हैं यथार्थ से लक्ष्यनिष्ठ

(मोक्ष लक्ष्य ही परम यथार्थ लक्ष्य, अन्य सभी कामना युक्त)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1.छोटी-छोटी गैया... 2.आत्मशक्ति...)

आत्मार्थी ही होते लक्ष्यनिष्ठ, जिनका लक्ष्य होता मोक्ष।
अन्य सभी होते कामना युक्त, मोही राजा से लेकर रंक।।
अनादिकाल से मोह के कारण, हर जीव होते कामना-युक्त।
सांसारिक सुख प्राप्ति निमित्त, होते संकल्प-विकल्प-युक्त।। (1)

राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध-मद, ईर्ष्या-तृष्णा-घृणादि से युक्त।
आहार-भय-मैथुन-परिग्रह हेतु, करते हैं कामना हो मोह-युक्त।।
इस हेतु करते पढ़ाई, नौकरी, व्यापार-कृषि-शिल्प-राजनीति।
यदि इस हेतु करते हैं धर्म, वह भी कामना नहीं लक्ष्यनिष्ठ।। (2)
गृहस्थावस्था में आदिनाथ राजा, जीविका, निर्वाह हेतु कहा षटकर्म।
वे नहीं हैं जीवों के परम-लक्ष्य, मोक्षमार्ग आत्मार्थी के परम-लक्ष्य।।
जीविका हेतु जो भाव-व्यवहार, वे सभी ही पापारम्भ परिग्रह।
इससे जीवों को न मिलता मोक्ष, इससे चलता है संसारचक्र।। (3)
इसलिए मुमुक्षु हेतु होता उपेदश, आरम्भ परिग्रह त्याग से बनो श्रमण।
अक्रम कथन से उपदेशी दोषी, श्रावक-धर्म में भी आरम्भ-परिग्रह।।
शन्ति-कुन्थु-अहरनाथ स्वामी, तीन-तीन पदवी के धारी।
(तो भी) त्याग किये सत्ता-सम्पत्ति सारी, तब ही प्राप्त हुआ मोक्षपुरी।। (4)
तीर्थेश-कामदेव-चक्रीपदवी, इसके त्याग से (बने) पूर्ण आत्मार्थी।
मोक्षपदवी ही है परमलक्ष्य, क्षुद्र-सांसारिक लाभ कैसे हो लक्ष्य।।
सांसारिक लाभ है निकृष्ट लाभ, पापकारक अशाश्वतिक अनिष्ट।
ऐसे लाभ तो मिले अनन्तबार, जन्म-मरण-सुख-दुःखरूपी संसार।। (5)
वह लक्ष्य ही यथार्थ से लक्ष्य जिसके लाभ से पूर्ण सम्पूर्ण लक्ष्य।
वह सुख ही परम यथार्थ सुख, जिसके लाभ से पूर्ण सकल सुख।।
अतएव मोक्ष ही परम लक्ष्य, सत्य-शिव-सुन्दर-शाश्वतसुख।
इसका लक्ष्य ही सदा करणीय, शुद्ध-बुद्ध-आनन्द ही 'कनक' का लक्ष्य।। (6)

नन्दौड़, दि.12-9-2019, मध्याह्न-2.03

हूँ मैं आत्मा बनूँ परमात्मा! (आत्म कीर्तन)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1.निर्बल से लड़ाई बलवान् की...(तूफान और दिया)... 2. हूँ छु आत्मा सम परमात्मा...(गुजराती)...

हूँ मैं आत्मा...बनूँ...परमात्मा...मैं हूँ आत्मा...भावी परमात्मा...
मैं हूँ आनन्द का...आनन्द का...आनन्द का धाम...

/(हूँ मैं सत् चित् आनन्द का धाम)...

/(मैं हूँ सत्य शिव सुन्दर अभिराम)...(ध्रुव)...

देह मेरा नहीं...मैं भी देह का नहीं...अशरीरी आनन्द घन आत्मा...हूँ मैं...(1)
मेरा जन्म नही...मेरी मृत्यु नहीं...अजन्मा शाश्वत सुखी आत्मा...मैं हूँ...(2)
देह कर्मजन्य...मृत्यु देह जन्य...देह-कर्म से परे अमृत आत्मा...हूँ मैं...(3)...
देह कर्मजन्य...कर्म अणु जन्य...दोनों से परे मैं चेतन आत्मा...मैं हूँ...(4)...
ऐसी श्रद्धा-प्रज्ञा...उभय से चर्या...यह है मोक्षमार्ग पूर्णता से मोक्ष...हूँ मैं...(5)...
इस हेतु ही धर्म...इस हेतु ही कर्म...इस हेतु राग-द्वेष मोह विसर्जन...मैं हूँ...(6)...
ख्याति पूजा लाभ...दीन हीन दम्भ त्याग...इस हेतु ही निर्ग्रन्थ श्रमण दीक्षा...हूँ मैं...(7)...
ज्ञान ध्यान तप...दया दान व्रत...मौन एकान्त निस्पृह आत्म साधना...मैं हूँ...(8)...
साम्य-सुख मिले...द्वन्द्व क्लेश मिटे...'कनकसूरी' का यही परम लक्ष्य...हूँ मैं...(9)..

संदर्भ-

समस्त वस्तु के परिज्ञान के आधार आत्मा ही है। कहा भी है-पहले श्रुतज्ञान द्वारा आत्मा को जानकर पश्चात् स्व संवेदन प्रत्यक्ष से उसका अनुभव करना चाहिये। जो श्रुतज्ञान का आवलम्बन नहीं लेता है वह आत्मा स्वभाव में मोहित हो जाता है तथा मैं विषयों से निवृत्त होकर मेरे द्वारा ही मेरे में स्थित होता हूँ। इसे मैं बोधात्मक परमानन्द स्वरूप मेरे स्व स्वरूप को प्राप्त करता हूँ।

''दूसरो से दुःख तो स्वयं से सुख''

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम्।
अत एव महात्मनास्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः।। (45)

पर देह धनादि पर ही है। उसे कभी भी आत्मा का, स्वयं का नहीं कर सकते हैं। इसलिये उसमें आत्मा का आरोपण करना दुःखों को निमंत्रण देना है। क्योंकि वे पर द्रव्य दुःखों के द्वार हैं दुःखों के निमित्त हैं। उसी प्रकार आत्मा आत्मा का ही है। उसे कभी भी देहादि रूप में परिणमन नहीं कर सकते हैं अथवा आत्मा देहादि का उपादान नहीं है। इसलिये आत्मा से सुख है, दुःख के निमित्त उसके अविषय हैं। इसके लिए तीर्थंकरादि महात्मा के निमित्त तपानुष्ठान रूपी उद्योग किया है।

समीक्षा-आचार्य श्री ने इस श्लोक में सुख का आधार तथा उसे प्राप्त करने का संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित उपाय बताया है। उन्होंने यह बताया कि दुःख आत्मा का स्वरूप नहीं है तथा सुख दूसरों से प्राप्त नहीं होता है वरन् दुःख पर का स्वभाव है तथा सुख स्व-स्वभाव है। जो सुख के लिए दूसरों को/अनात्म स्वरूप को अपनाता है और वह सुख के परिवर्तन में दुखों को गले लगाता है। इससे जो पर का संयोग करके आत्मा का ही आश्रय लेता है/आलम्बन लेता है वह सुख को प्राप्त करता है। इसका रहस्य यह है कि शुद्ध, स्वतंत्र आत्मा का स्वरूप ही अक्षय अनन्त सुख स्वरूप है तथा शरीरादि पौद्गलिक द्रव्य है, जिसमें सुख का अभाव है। उसको स्वीकार रूप में जो मोह, राग है वह दुःख के निमित्त है। क्योंकि उसके कारण जो कर्म बन्ध होता है, उससे आत्मा परतंत्र हो जाता है और सुखादि गुण भी दुःख रूप परिणमन कर लेते हैं परन्तु भेद विज्ञान तथा भेद क्रिया रूप वीतराग चारित्र से पर सम्बन्ध रूप बंधन कट जाता है। तब आत्मा के सुखादि गुण प्रगट हो जाते हैं। इसे ही स्वतंत्रता/निःसंगत्व/स्वाधीन/मोक्ष कहते हैं। कहा भी है-

पक्खीणघादिकम्मो अणंतबरवीरिओ अधिकतेजो।
जादो अणिंदिओ सो णाणं सोक्खं च परिणमदि।। (19)

He develops knowledge and happiness after hering erdusted the destructive karmas, being endowed with excellent infinte strength and excessive lustre and after vecoming supersensous.

इस व्याख्यान में यह कहा है कि आत्मा यद्यपि निश्चय से अनंतज्ञान और अनंतसुख के स्वभाव को रखने वाला है तो भी व्यवहार से संसार की अवस्थान में पड़ा हुआ है, जब तक इसका केवलज्ञान और अनंतसुख स्वभाव कर्मों से ढँका हुआ है, तब तक पांच इन्द्रियों के आधार से कुछ अल्पज्ञान व कुछ अल्पसुख में परिणमन करता है। फिर जब कभी विकल्प रहित स्वसंवेदन या निश्चल आत्मानुभव के बल से कर्मों का अभाव होता है, तब क्षयोपशम ज्ञान के अभाव होने पर इन्द्रियों के व्यापार नहीं होते हैं, उस समय अपने ही अतीन्द्रिय ज्ञान और सुख को अनुभव करता है, क्योंकि स्वभाव के प्रगट होने में पर की अपेक्षा नहीं है ऐसा अभिप्राय है।

स्वभावतः प्रत्येक जीव अनन्तज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्यादि अनंत गुणों का अखण्ड पिण्ड है तथापि कर्मों के आवरण के कारण वे गुण आत्मा में ही सुप्त रूप में

छिपे हुए हैं। कुन्दकुन्द देव ने समयसार में कहा भी है-

सो सव्वणाणदरसी कम्मरयेण णियेणवच्छण्णो।

संसार समावण्णो णवि जाणदि सव्वदो सव्वं।। (67)

वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जीव कर्मरज से आवृत्त होकर संसार में पतित हुआ है और सर्वदा सबको नहीं जानता है परन्तु जब वही कर्मरज रूपी आवरण हट जाता है तब वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनंतसुख एवं अनंतवीर्य सम्पन्न बन जाता है। इसलिए वस्तुतः ज्ञान या सुख पर से प्राप्त नहीं होता है परन्तु सहज आत्मोत्थ है।

प्रशान्तमनसं ध्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।

उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतकल्मषम्।। (27 गीता)

जिसका मन भलीभाँति शांत हुआ है, जिसके विकार शांत हो गये हैं, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युञ्जत्रेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।

सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते।। (28)

आत्मा के साथ निरन्तर अनुसंधान करते हुए-पाप रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्मप्राप्ति-रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

साम्रगी विशेष विश्लेषिताखिलावरण मतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम्।

साम्रगी की विशेषता से दूर हो गये हैं समस्त आवरण जिसके ऐसे अतीन्द्रिय और पूर्णतया विशद्ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।

ऐश्वर्यमप्रतिहतं सहजो विरागस्तृप्तिर्निसर्गजनिता वशतेन्द्रियेषु।

आत्यान्तिकं सुखमनावरणा च शक्तिर्ज्ञानं च सर्व विषय भगवस्तथैवा।।

तथा संन्यासियों के गुरु अवधूत के भी वचन उसके विषय में इस प्रकार हैं-

''भगवान्! आपका ऐश्वर्य अप्रतिहत (अखण्ड) है, वैराग्य स्वाभाविक है, तृप्ति नैसर्गिक है, इन्द्रियों में वशिता है अर्थात् आप जितेन्द्रिय हैं, आपका सुख आत्यन्तिक अर्थात् चरम सीमा को प्राप्त है, शक्ति आवरण रहित हैं और सर्व विषयों को साक्षात् करने वाला ज्ञान भी आपका ही है।

क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरमृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः (पातञ्जली यो.द.)

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश रूप क्लेशों से शुभाशुभ

कृतियों से जन्य पुण्य पाप रूप कर्मों से, पुण्य-पाप के फल-जाति, आयु तथा भोग प्रतिनिधि सुख-दुःख रूप विपाक से और सुख-दुःखात्मक भोग से जन्य विविध वासनाओं से अस्पृष्ट जीवरूप अन्य पुरुषों से विशिष्ट चेतन ईश्वर है।

सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च। (49)

पुरुष (आत्मा) एवं प्रकृति (कर्म) के भेदज्ञान से सम्पन्न योगी को सम्पूर्ण पदार्थों के अधिष्ठातृत्व का (अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थों को नियन्त्रित करने के सामर्थ्य का) और समस्त पदार्थों के ज्ञातृत्व का (अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थों को ठीक-ठीक जान लेने की शक्ति का) लाभ होता है।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्।। (50)

विवेक ख्याति की निष्ठा द्वारा, विवेकख्यातिजन्य सिद्धिविषयक परम वैराग्य की प्राप्ति हो जाने से, पर वैराग्य जन्य असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा, रागादि दोषों के मूल कारण अविद्या के समाप्त हो जाने पर योगी पुरुष को कैवल्य भी प्राप्त हो जाता है।

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्।। (55)

बुद्धि एवं पुरुष की शुद्धि के समान रूप हो जाने पर मोक्ष हो जाता है।

जिघच्छापरमारोगा, संखारा परमा दुखा।

एवं ञत्वा यथाभूतं निब्बानं परमं सुखं।। (धम्मपद)

भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़ा दुःख है, इसे यथार्थ (रूप से) जानकर निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।

आत्मा ही ज्ञान सुखादिमय हैं

णाणं अप्पत्ति मदं वट्ठदि णाणं विणा ण अप्पाणं।

तम्हा णाणं अप्पा अप्पा णाणं वा अण्णं वा।। (27) प्र.सा.

The doctrine of Jina is that knowledge is the self and its absence of the self there cannot be (any) knowledge, therefore, knowledge is the self while the self is knowledge or anything else.

आत्मा के अन्दर पाये जाने वाले सुख वीर्य आदि स्वभावों की अपेक्षा विचारा जाता है-यह नियम नहीं है कि मात्र ज्ञानरूप ही आत्मा है। यदि एकान्त से ज्ञान ही

आत्मा है, ऐसा कहा जाये तब ज्ञान गुण मात्र ही आत्मा को प्राप्त हो गया फिर सुख आदि स्वभावों का अवकाश नहीं रहा। तथा सुख, वीर्य आदि स्वभावों के समुदाय का अभाव होने से आत्मा का अभाव हो जायेगा। जब आधारभूत आत्मा का अभाव हो गया तब उसका आधेयभूत ज्ञानगुण का भी अभाव हो गया इस तरह एकान्त मत में ज्ञान और आत्मा दोनों का ही अभाव हो जायेगा। इसलिये किसी अपेक्षा से ज्ञान स्वरूप भी आत्मा है सर्वथा ज्ञानस्वरूप ही नहीं है। यहाँ यह अभिप्राय है कि आत्मा व्यापक है और ज्ञान व्याप्य है। इसलिये ज्ञान-स्वरूप आत्मा हो जाता है तथा आत्मा ज्ञानरूप भी है और अन्य स्वभावरूप भी है। तैसा ही कहा है ''व्यापक तदतनिष्ठं व्याप्यं तन्निष्ठमेव च'' व्यापक में व्याप्त एक और दूसरे अनेक रह सकते हैं जबकि व्याप्य व्यापक में ही रहता है।

समीक्षाः-वस्तु अनेकान्तात्मक है अर्थात् प्रत्येक द्रव्य में अनेक गुण एक साथ अविरोध रूप में रहते हैं जैसे अग्नि में दाहकत्व, प्रकाशत्व, पाचकत्व आदि अनेक गुण एक साथ रहते हैं। तो भी एक गुण दूसरे गुण रूप परिणमन नहीं करता है, अग्नि दाहकत्व गुण के कारण दहन करती है पाचकत्व गुण के कारण पचाती है और प्रकाशत्व गुण के कारण प्रकाश करती है। इसलिए अग्नि एक होते हुए भी तीनों गुण के कारण अलग-अलग है। अग्नि तो तीनों रूप है परन्तु एक-एक गुण पूर्ण अग्नि रूप नहीं है। इसलिए प्रकाशकत्व आदि गुण कथंचित् अग्नि रूप हैं कथंचित् नहीं है। इसी प्रकार आत्मा एवं आत्मा के गुणों के बारे में जानना चाहिए। आत्मा में ज्ञान, दर्शन, वीर्य आदि अनंतगुण है। आत्मा का ज्ञान गुण आत्मा में ही है अन्य द्रव्य में नहीं है तथापि आत्मा में ज्ञानगुण के अतिरिक्त अन्य गुण भी हैं। इसीलिये आत्मा ज्ञान गुण स्वरूप व अन्य गुणरूप भी है। यदि आत्मा को केवल ज्ञान-स्वरूप स्वीकार किया जावे एवं अन्य स्वरूप स्वीकार नहीं किया जावे तो अन्य गुणों का अभाव हो जायेगा एवं अन्य गुणों के अभाव से आत्मा का भी अभाव हो जायेगा क्योंकि गुण का भी अभाव हो जायेगा। इसलिए कथंचित् गुण गुणी में भेद एवं अभेद है। इस सूक्ष्म सैद्धांतिक विषय को सरलीकरण करने के लिए और एक-दो उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ। जैसे कोई कहता है, एक मीठा आम ले आओ, कोई कहता है कि एक पीला आम ले जाओ, कोई कहता है, एक किलो आम ले आओ, कोई कहता है, सुगन्धित

आम ले आओ। वे अलग-अलग विशेषण से सुगन्धित आम प्राप्त करने के लिये ही बोल रहे हैं। मीठा आम लाना कहने पर आम का मीठा गुण क्या अन्य गुण से अलग करके लाया जा सकता है? कदापि नहीं, क्योंकि मीठा गुण आम के अन्य गुण के साथ एक क्षेत्रावगाही होकर रहता है। इसी प्रकार अन्य गुणों को पृथक् करके नहीं लाया जा सकता है। इसलिये आम का मीठा गुण आम में होते हुये भी आम केवल मीठा गुण स्वरूप नहीं है अन्य गुण स्वरूप भी है। केवल गुण गुणी संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजन की अपेक्षा भेद होते हुये भी प्रदेश अपेक्षा भेद नहीं होता है। उपरोक्त सिद्धान्त का प्ररूपण तार्किक चूड़ामणि अकलंक स्वामी ने स्वरूप संबोधन में किया है।

प्रमेयत्वादिभिर्धर्मैरचिदात्मा चिदात्मकः।
ज्ञानदर्शनतस्तमाच्चेतना चेतनात्मकः।। (3)

वह आत्मा प्रमेयत्व आदि धर्मों द्वारा अचित्तरूप है, ज्ञान और दर्शन गुण से चेतनरूप है। इस कारण चेतन अचेतन रूप है।

ज्ञानाद्भिन्नो न चाभिन्नो भिन्नाभिन्नः कथंचन।
ज्ञानं पूर्वापराभूतं, सोऽयमात्मेति कीर्तितः।। (4)

आत्मा का ज्ञान गुण भूतकाल और भविष्यत्काल के पदार्थों को जानने रूप पर्यायों वाला है। वह प्रसिद्ध यह आत्मा उस ज्ञानगुण से सर्वथा भिन्न नहीं है और सर्वथा अभिन्न-यानि एक रूप भी नहीं है। किसी अपेक्षा से अभिन्न और भिन्न इस प्रकार कहा गया है।

स्वदेहप्रमितिश्चाय, ज्ञानमात्रोऽपि नैव सः।
चेतनैकस्वभावत्त्वादेकानेकात्मको भवेत्।

वह आत्मा अनेक प्रकार के ज्ञानस्वरूप होने से अनेक होते हुये भी एक चेतना-स्वभाव होने से एक होता हुआ भी सर्वथा एक ही नहीं है। किंतु एक तथा अनेकात्मक होता है।

स्वपूर्णता ही दिव्य है अन्य सब याचनाः-

पूर्णता या परोपाधेः, सा याचिंतकमण्डलम्।
या तु स्वभाविकी सैव, जात्यरत्नविभानिभा।। (2) (ज्ञानसार)

पर वस्तुओं से बनी जो पूर्णता है वह मांगकर लाये गये आभूषणों की तरह अनित्य है। जो स्वभावजन्य पूर्णता है, वह उत्तम रत्नों की दिव्य कांति जैसी है।

अवास्तवी विकल्पैः स्यात्-पूर्णताऽब्धेरिवोर्मिभिः।
पूर्णानन्दस्तु भगवान्, स्तिमितोदधिसन्निभः।। (3)

समुद्री तंरगों से जो ज्वाररूप पूर्णता होती है, वह अवास्तविकी अर्थात् झूठी है। उसी प्रकार आत्मा में भी विकल्प जन्य जो पूर्णता का आभास होता है, वह अस्थिर है। शुद्ध स्वभावयुक्त पूर्णानन्दमय भगवान् अर्थात् शुद्ध आत्मा तो स्थिर समुद्र के समान शांत होता है।

जागर्ति ज्ञान दृष्टिश्चेत्, तृष्णाकृष्णाहिजाङ्गुली।
पूर्णानन्दस्य तत्किं स्याद्, दैव्यवृश्चिक वेदना।। (4)

तृष्णारूप काले नाग के जहर का नाश करने वाले गारुडी के मंत्र समान तत्त्व ज्ञान रूपी दृष्टि जिसकी जाग्रत है, उस पूर्णता का आनन्द का उपभोग करने वाले ज्ञानी को दीनतारूप बिच्छु के डंक की वेदना क्यों हो सकती है?

पूर्यन्ते येन कृपणा-स्तदुपेक्षैव पूर्णता।
पूर्णानन्दसुधास्निग्धा, दृष्टिरेषा मनीषिणाम्।। (5)

जिन धन-धान्य को पाकर कृपण लोग पूर्णता का अनुभव करते हैं, उन्हीं बाह्य पदार्थों की उपेक्षा करके ज्ञानी पुरुष पूर्णता का अनुभव करते हैं। ऐसी पूर्णता के आनंद रूप अमृत से स्निग्ध दृष्टि तत्त्व ज्ञानियों की होती है।

अपूर्णः पूर्णतामेति, पूर्यमाणस्तु हीयते।
पूर्णानन्दस्वभावोऽयं, जगदभूतदायक।। (6)

जो धन-धान्य आदि बाह्य भावों से अपूर्ण है, वही वास्तव में पूर्ण है। और जो बाह्य पदार्थों से अपने को पूर्ण करता है, वह वास्तव में अपूर्ण है। पूर्णता में आनंद का अनुभव करने वाली आत्मा का स्वभाव जगत् को आश्चर्य चकित कर देता है।

परस्वत्वकृतोन्माथा, भूनाथा न्यूनतेक्षिणः।
स्वस्वत्वसुखपूर्णस्य, न्यूनता न हरेरपि।। (7)

पर पदार्थों में स्वत्व की कल्पना में उन्मत्त बनते राजा भी सदैव अपनी न्यूनता

को ही देखते हैं। जबकि स्व अर्थात् आत्मा को ही स्व मानने से पूर्ण सुख का अनुभव करने वाली आत्मा को इन्द्र से भी कुछ भी न्यूनता का अभास नहीं होता।

कृष्णपक्षे परिक्षीणे, शुक्लेच समुदयति।

द्योतन्ते सकलाध्यक्षा, पूर्णानंदविधोः कलाः।। (8)

कृष्णपक्ष की समाप्ति पर शुक्ल पक्ष का उदय होता है, तब चन्द्रमा की कलाएँ प्रकाशित होती हैं। उसी प्रकार आत्मा का कृष्णपक्ष अर्थात् अज्ञान, माया आदि का नाश होने पर पूर्ण आनन्द रूप कलाएँ प्रकट होती हैं।

आत्मलीनता से आनन्दानुभव

प्रत्याहृत्येन्द्रियव्यूहं, समाधाय मनोनिजम्।

दधच्चिन्मात्रविश्रान्तिं, मग्न इत्यभिधीयते।। (1) (ज्ञानसार)

विषयों की ओर आकृष्ट बनती इन्द्रियों को उनसे विमुख कर तथा अपने मन को स्थिरकर चैतन्य मात्र में विश्राम प्राप्त आत्मा मग्न कहलाता है।

यस्य ज्ञानसुधासिन्धौ, पर ब्रह्माणि मग्नता।

विषयान्तरसञ्चार-स्तस्य हलाहलोपमः।। (2)

जिसे ज्ञान स्वरूप अमृत सागर ऐसे पर ब्रह्म अर्थात् परमात्मा में लीनता होती है उसे अन्य विषयों में हो रही प्रवृत्ति जहर के समान अनिष्ट लगती है।

स्वभावसुखमग्नस्य, जगत्तत्त्वावलोकिनः।

कर्तृत्वं नान्यभावानां, साक्षित्वमवशिष्यते।। (3)

सहज स्वभाव के आनंद में मग्न तथा जगत् के स्वरूप का यथार्थ दृष्टा आत्मा को अन्य पदार्थों का कर्त्ता भाव नहीं रहता, मात्र साक्षी भाव रहता है।

परब्रह्मणि मग्नस्य, श्लघा पौद्गलिकी कथा।

क्वामी चामीकरोन्मादाः, स्फारा दारादरा क्व च।। (4)

परब्रह्म अर्थात् परमात्म स्वरूप में लीन आत्मा को पुद्गल की बातें भी नीरस लगती हैं। तो उसे सुवर्ण का अभिमान और स्त्रियों में (भोग में) आदर कहाँ से होगा?

ज्ञानमग्नस्य यच्छर्म, तद्वक्तुं नैव शक्यते।

नोपमेयं प्रियाश्लेषै-नापि तच्चन्दनद्रवैः।। (6)

ज्ञान में मग्न-आत्माओं के आनंद का वर्णन कदापि शक्य नहीं है। स्त्री सुख अथवा चंदन लेपन से प्राप्त सुख के साथ ही उस सुख की तुलना संभव नहीं है।

शमशैत्यपुषो, यस्य, विप्रुषोऽपि महाकथा।

किं स्तुमो ज्ञानपियूषे, तत्र सर्वांग मग्नता।। (7)

उपशम की शीतलता को पुष्ट करने वाली ज्ञान-मग्नता के आनंद के एक बिंदु मात्र की भी कथा महान् है। तो उस ज्ञानानंद रूप अमृत से सम्पूर्ण मग्न आत्माओं के आनंद की क्या प्रशंसा करूँ?

यस्य दृष्टि कृपावृष्टि-र्गिरः शमसुधाकिरः।

तस्मै नमः शुभज्ञान-ध्यानमग्नाय योगिने।। (8)

जिनकी दृष्टि करुणा की वृष्टि करती है। जिनकी वाणी उपशम रूप अमृत का छिड़काव करती है। उस सम्यक् ज्ञान तथा ध्यान मग्न योगियों को नमस्कार हो।

स्वात्मा में स्थिरता से स्व वैभव दर्शन

वत्स! किं चञ्चलस्वान्तो भ्रान्त्वा भ्रान्त्वा विषीदसि।

निधि स्वसन्निधावेव, स्थिरता दर्शयिष्यति।। (1) ज्ञानसार

हे वत्स! मन को चंचल बनाकर भटक-भटककर क्यों दुःखी होता है? तेरा खजाना तेरे पास ही है! तेरी स्थिरता ही उस निधान को दिखायेगी।

ज्ञानदग्धं विनश्येत, लोभविक्षोभकूर्चकैः।

अम्ल द्रव्यादिवाऽस्थैर्या-दिति मत्वा स्थिरो भव।। (2)

खट्टे पदार्थों के स्पर्श से दूध बिगड़ जाता है, उसी प्रकार लोभ के विकार रूप कूर्चकों से ज्ञानरूप दूध बिगड़ जाता है, ऐसा समझकर स्थिर बन!

अन्तर्गतं महाशल्य-मस्थैर्यं यदि नोध्दतम्।

क्रियौषधस्य को दोष-स्तदा गुणमयच्छतः।। (4)

यदि अस्थिरता रूप अंदर के महाशल्य को दूर न किया जाय तो क्रिया रूप औषधि लाभ नहीं करती। तो इसमें क्रिया का कोई दोष नहीं है।

चारित्रं स्थिरतारूप-मतः सिद्धेष्वपीष्यते।

यतन्तां यतयोऽवश्य-मस्या एव प्रसिद्धये।। (8)

चारित्र स्थिरता रूप है, इस कारण सिद्धों में भी चारित्र माना गया है। अतः इस स्थिरता की सम्पूर्ण सिद्धि के लिए अवश्य पुरुषार्थ करो।

अज्ञानी अज्ञान में मग्न तो ज्ञानी ज्ञान में-

मज्जत्यज्ञः किलाऽज्ञाने, विष्ठायामिव शूकरः।

ज्ञानी निमज्जति ज्ञाने, मराल इव मानसे।। (1)

जिस प्रकार शूकर विष्ठा में मग्न होता है वैसे ही अज्ञानी अज्ञान में ही मग्न हो जाता है। जिस प्रकार हंस मानसरोवर में निमग्न होता है, उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष ज्ञान में ही निमग्न होते हैं।

मोक्ष साधक ज्ञान ही उत्कृष्ट ज्ञान-

निर्वाणपदप्येकं, भाव्यते यन्मुहुर्मुहुः।

तदेव ज्ञानमुत्कृष्टं, निर्बन्धो नास्ति भूयसा।। (2)

एक मात्र मोक्ष साधक पद बारम्बार आत्मा द्वारा भावित होता है अर्थात् बार-बार चिन्तन किया जाता है वही ज्ञान परिपूर्ण है। ज्यादा ज्ञान का आग्रह नहीं है।

आत्मज्ञान से भिन्न ज्ञान बुद्धि का अन्धत्व-

स्वभावलाभसंस्कार-कारणं ज्ञानमिष्यते।

ध्यान्ध्यमात्रमस्त्वन्यत्, तथा चोक्तं महात्मना।। (3)

जो ज्ञान आत्म स्वभाव की प्राप्ति के संस्कार का कारणभूत है, वही ज्ञान इच्छनीय है इसके अलावा जो भी पढ़ा जाता है वह तो बुद्धि का अन्धत्व है। इसी प्रकार महात्मा पतञ्जलि ने भी कहा है।

ज्ञानानन्दानुभव उपाय-

मिथ्यात्वशैलपक्षच्छिद्, ज्ञानदम्भोलिशोभितः।

निर्भयः शर्कवद्योगी, नन्दत्यानन्दनन्दने।। (7)

मिथ्यात्व रूप पर्वत के पक्ष का छेद करने वाला और ज्ञानरूप वज्र से सुशोभित और इन्द्र के समान निर्भय योगी आनन्द रूप नंदनवन में क्रीड़ा करता है, सुख अनुभव करता है।

पियूषमसमुद्रोत्थं, रसायनमनौषधम्।

अनन्याऽपेक्षमैश्वर्य, ज्ञानमाहुर्मनीषिणः।। (8)

ज्ञान अमृत है लेकिन समुद्र से उत्पन्न नहीं है। ज्ञान रसायन है पर औषधि नहीं है। ज्ञान ऐश्वर्य है, पर किसी अन्य की अपेक्षा नहीं है, ऐसा ज्ञानी कहते हैं।

शमभाव से प्राप्त वैभव

विकल्पविषयोत्तीर्णः स्वभावाऽऽलम्बनः सदा।

ज्ञानस्य परपाको यः, स शमः परिकीर्तितः।। (1)

विकल्प रूप विषयों से निवृत्त बना, निरन्तर आत्मा के शुद्ध स्वभाव का आलंबन जिसे है, ऐसा ज्ञान का परिणाम समभाव कहलाता है।

ध्यानवृष्टेर्दयानद्याः शमपूरे प्रसर्पति।

विकारतीरवृक्षाणं, मूलादुन्मूलनं भवेत्।। (4)

ध्यानरूप वर्षा से दयारूप नदी का उपशम रूप पूर बढ़ने से किनारे पर स्थित विकार रूप वृक्ष जड़-मूल से उखड़ जाते हैं।

ज्ञानध्यानतपःशील-सम्यक्त्वसहितोऽप्यहो।

तं नाप्नोति गुणं साधुर्यं प्राप्नोति शमाऽन्वितः।। (5)

समयुक्त साधु जिस गुण को प्राप्त करता है। अहो! ज्ञान-ध्यान-तप-शील और सम्यक्त्व सहित साधु भी उस गुण को प्राप्त नहीं कर सकता।

शमसूक्तसुधासिक्तं, येषां नक्तंदिनं मनः।

कदापि ते न दह्यन्ते, रागोरगविषोर्मिभि।। (7)

जिसका मन रात और दिन सम से सुभाषित अमृत द्वारा सिंचित है, वे कभी भी राग रूप सर्प के जहर की उर्मियों द्वारा नहीं जलते हैं।

गर्जज्ज्ञानगजोत्तुङ्गा, रङ्गद्ध्यानतुरङ्गमाः।

जयन्ति मुनिराजस्य, शमसाम्राज्य सम्पदः।। (8)

जिनके पास गर्जना करते ज्ञानरूप हाथी और खेलते हुए ध्यानरूप घोड़े हैं, ऐसे मुनिराज रूप राजा के शम रूप साम्राज्य की सम्पत्ति सदा जयवन्त रहती है।

इन्द्रियासक्त ज्ञानधन को नहीं देखता-

गिरिमृत्स्नां धनं पश्यन्, धावतीन्द्रियमोहितः।

अनादिनिधनं ज्ञानं, धनं पार्श्वे न पश्यन्ति।। (5)

इन्द्रियों के विषय में मूढ़ बना जीव पर्वत की मिट्टी में भी धन देखकर दौड़ता रहता है लेकिन अपने भीतर भरे अनादि अनंत ज्ञान रूप धन को नहीं देखता।

पुरः पुरः स्फुरतृष्णामृगतृष्णाऽनुकारिषु।

इन्द्रियार्थेषु धावन्ति, त्यक्त्वा ज्ञानऽमृतंजडाः।। (6)

जिनकी तृष्णा उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है, ऐसे मूर्ख पुरुष ज्ञान रूप अमृत को छोड़कर मृगतृष्णा रूप इन्द्रियों के विषयों में दौड़ता रहता है।

पतङ्ग-भृङ्ग मीनेभसारङ्गायान्ति दुर्दशाम्।

एकैकेन्द्रियदोषाच्चेद्, दुष्टैस्तैः किंन पञ्चभिः।। (7)

पतंगिया, भ्रमर, मत्स्य, हाथी और हिरण ये एक-एक इन्द्रिय में आसक्त होकर जब दुर्दशा को प्राप्त करते हैं तो दुष्ट पाँचों इन्द्रियों द्वारा क्या नहीं हो सकता है।

ज्ञानामृत पान से अत्यन्त तृप्ति-

पीत्वा ज्ञानाऽमृतं भुक्त्वा क्रियासुरलताफलम्।

साम्याताम्बूलमास्वाद्य, तृप्ति यति परां मुनिः।। (1)

ज्ञानरूप अमृत पीकर, क्रियारूप कल्पलता के फल को खाकर, समभाव रूप ताम्बूल का आस्वादन लेकर साधु अत्यन्त तृप्ति को प्राप्त करता है।

स्वगुणैरेव तृप्तिश्चेदाकालमविनश्वरी।

ज्ञानिनो विषयैः किं तैर्यैभवेत् तृप्तिरित्वरी।। (2)

यदि ज्ञानी को अपने ज्ञानादि गुणों द्वारा ही कभी कष्ट न हो तो ऐसी तृप्ति होती है तो फिर जिन विषयों के द्वारा स्वल्पकाल की ही तृप्ति होती है, उन विषयों का क्या प्रयोजन है।

या शान्तैकरसास्वादाद्भवेत् तृप्तिरतीन्द्रिया।

सा न जिह्वेन्द्रियद्वारा, षड्रसास्वादनादपि।। (3)

शांत रस रूप अद्वितीय रस के अनुभव से जो अतीन्द्रिय तृप्ति होती है वह जिह्वेन्द्रिय द्वारा षट् रस के भोजन से भी नहीं हो सकती।

संसारे स्वप्नवन्मिथ्या, तृप्तिः स्यादाभिमानिकी।

तथ्या तु भ्रान्तिशून्यस्य, सात्मवीर्यविपाककृत्।। (4)

संसार में अभिमान मान्यता से प्राप्त हुई तृप्ति स्वप्न की तरह (मिथ्या) होती है। सच्ची तृप्ति तो मिथ्या ज्ञान रहित को ही होती है और वह आत्मा के वीर्य को पुष्ट करने वाली होती है।

पुद्गलैः पुद्गलास्तृप्तिं, यान्त्यात्मा पुनरात्मना।

परतृप्तिसमारोपो, ज्ञानिनस्तन्न युंज्यते।। (5)

पुद्गलों के द्वारा पुद्गल तृप्ति प्राप्त करते हैं और आत्मागुणों के द्वारा आत्मा तृप्त होती है। इसी कारण से पुद्गल तृप्ति में आत्मतृप्ति घटित नहीं होती ऐसा ज्ञानियों का अनुभव है।

मधुराज्यामहाशाकाऽग्राह्ये बाह्ये च गोरसात्।

परब्रह्माणि तृप्तिर्या जनास्तां जानतेऽपि न ।। (6)

सुन्दर राज्य में बड़ी आशा जिनको है ऐसे पुरुषों द्वारा प्राप्त न हो सके ऐसे वाणी से अगोचर परमात्मा के विषय में जो तृप्ति होती है उसे लोग जानते भी नहीं हैं।

विषयोर्मिविषाद्गारः स्यादतृप्तस्य पुद्गलैः।

ज्ञानतृप्तस्य तु ध्यानसुधोद्गारपरम्पराः।। (7)

पुद्गलों के परिभोग से अतृप्त ऐसे (मनुष्यों को) विषय के तरंग रूप जहर का उद्गार (डकार) प्रकट होता है। ज्ञान से तृप्त साधकों को तो ध्यान रूप अमृत के उद्गार (डकार) की परम्परा होती है।

सुखिनो विषयातृप्ता, नेन्द्रोपेन्द्रादयोऽप्यहो।

भिक्षुरेकः सुखी लोके, ज्ञानतृप्तो निरंजनः।। (8)

विषयों से अतृप्त इन्द्र उपेन्द्र आदि भी सुखी नहीं है, यह आश्चर्य है। जगत् में ज्ञान से तृप्त कर्ममल रहित ऐसा एक साधु ही सुखी है।

सर्व समृद्धि का शोध-बोध-

बाह्यदृष्टिप्रचारेषु मुदितेषु महात्मनः।

अन्तरेवावभासन्ते, स्फुटाः सर्वाः समृद्धयः।।(1)

बाह्य दृष्टि की प्रवृत्ति बंद होने पर महापुरुष अपने अन्तर में रम रही ही सर्व समृद्धियों का आभास यानि बोध करते हैं।

समाधिर्नन्दनं धैर्यं, दम्भोलिः समता शची।

ज्ञानं महाविमानं च, वासवश्रीरियं मुनेः।। (2)

'मुनि' इन्द्र के समान समृद्धि वाले हैं। समाधि रूप नन्दन वन, धैर्य रूप वज्र, समता रूप इन्द्राणी और ज्ञानरूप महाविमान मुनि के पास है।

या सृष्टिर्ब्रह्मणो बाह्या, बाह्यापेक्षावलम्बिनी।

मुनैः परानपेक्षाऽन्तर्गुणसृष्टिस्ततोऽधिका।। (7)

ब्रह्मा की सृष्टि तो बाह्य जगत् रूप है और बाह्य की अपेक्षा पर अवलम्बित है। जबकि मुनि की अन्तरंग गुणसृष्टि तो अन्यों की अपेक्षा रहित है, अतः यह अधिक अर्थात् उत्कृष्ट है।

समभाव से ज्ञानानन्द-भोग-

साम्यं बिभर्ति यः कर्मविपाकं हृदि चिन्तयन्।

स एव स्याच्चिदानन्द-मकरन्दमधुव्रतः।। (8)

हृदय में कर्म विपाक का चिन्तन करता हुआ जो समभाव धारण कर लेता है, वही योगी ज्ञानानन्द रूप पराग को भ्रमरवत् भोग करता है।

स्वानुभव से परमात्मानुभव-

अतीन्द्रिय परं ब्रह्म, विशुद्धाऽनुभवं बिना।

शास्त्रयुक्तिशतेनाऽपि नगम्यं यद् बुधा जगुः।। (3)

इन्द्रियों द्वारा अगोचर ऐसा परमात्मा का स्वरूप शास्त्रों की सैकड़ों युक्तियों द्वारा भी नहीं जाना जा सकता, उसे मात्र अनुभव से ही जाना जा सकता है ऐसा पंडित कहते हैं।

ज्ञायेरन् हेतुवादेन, पदार्थ यद्यतीन्द्रियाः।

कालेनैतावला प्राज्ञैः, कृत, स्यात्तेषु निश्चयः।। (4)

यदि युक्तियों द्वारा अतीन्द्रिय पदार्थों का बोध संभव होता तो इतने समय में पंडितों ने उन अतीन्द्रिय पदार्थों के विषय में निश्चय कर लिया होता।

केषां न कल्पनादर्वी, शास्त्रक्षीरान्नगाहिनी।

विरलास्तद्रसास्वादविदोऽनुभवजिह्वया।। (5)

किसका कल्पनारूप चम्मच शास्त्र रूपी खीर में प्रविष्ट नहीं होता? लेकिन अनुभव रूप जिह्वा के द्वारा शास्त्र के आस्वाद को जानने वाले तो विरले ही होते हैं।

पश्यतु ब्रह्म निर्द्वन्द्वं, निर्द्वन्द्वानुभवं बिना।

कथं लिपिमयी दृष्टिर्वाङ्मयी वा मनोमयी।। (6)

राग-द्वेषादि क्लेश रहित शुद्ध अनुभव ज्ञान के बिना मात्र शास्त्र दृष्टि, वाणीरूप दृष्टि अथवा मनन रूप दृष्टि निर्द्वन्द्व राग-द्वेष रहित आत्मा को कैसे देख सकती है।

न सुषुप्तिमोहत्वान्नापि च स्वापजागरौ।

कल्पनाशिल्पविश्रान्तेस्तुर्यैवानुभवो दशा।। (7)

यह अनुभव मोह रहित होने से निद्रा रूप सुषुप्ति दशा नहीं है, कल्पना रूप कला का भी इसमें अभाव होने से स्वप्न अथवा जागृत दशा भी नहीं है। यह तो चौथी दशा ही है।

अधिगत्याखिलं शब्दब्रह्म शास्त्रदशा मुनिः।

स्वसंवेद्यं परं ब्रह्मानुभवेनाधिगच्छति।। (8)

मुनिशास्त्र दृष्टि से सकल शब्द ब्रह्म को जानकर अनुभव के द्वारा स्वयं प्रकाश ऐसे परम ब्रह्म अर्थात् परमात्मा स्वरूप को जानता है।

आत्मध्यान से दुःखों से मुक्ति-

ध्याता ध्येयं तथा ध्यानं, त्रयं यस्यैकतां गतम्।

मुनेरनन्यचित्तस्य, तस्य दुःख न विद्यते।। (1)

ध्याता ध्येय और ध्यान इन तीनों की एकरूपता को जिसने प्राप्त कर लिया है

ऐसे एकाग्रचित्त मुनि को कोई दुःख नहीं होता।

ध्याताऽन्तरात्मा ध्येयस्तु परमात्मा प्रकीर्तितः।

ध्यानं चैकाग्रय संवित्तिः, समापत्तिस्तदेकता।। (2)

ध्यान करने वाला अन्तरात्मा है ध्येय परमात्मा को कहा गया है और ध्यान एकाग्रता की बुद्धि है। इन तीनों की एकता को समापत्ति कहा जाता है।

मणाविव प्रतिच्छाया, समापत्तिः परात्मनः।

क्षीणवृत्तो भवेद् ध्यानादन्तरात्मनि निर्मले।। (3)

जिस प्रकार मणि में अन्य वस्तु का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है उसी प्रकार क्षीण वृत्ति वाले शुद्ध-निर्मल अन्तरात्मा में ध्यान द्वारा परमात्मा का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है, इसी को समापत्ति कहते हैं।

आपत्तिश्च ततः पुण्यतीर्थकृत्कर्मबन्धतः।

तद्भावाभिमुखत्वेन, सम्पत्तिश्चक्रमाद भवेत।। (4)

उस समापत्ति से पुण्य प्रकृतिरूप तीर्थकर नाम कर्म के बन्ध स्वरूप फल की प्राप्ति होती है और तीर्थंकर नाम कर्म की अभिमुक्ता से कृमशः आत्मिक संपत्ति रूप फल होता है।

इत्थं ध्यानफलाद्युक्त, विंशतिस्थानकाद्यपि।

कष्टमात्रं त्वभव्यानामति नो दुर्लभं भवेत्।। (5)

इस प्रकार के ध्यान फल से ही वीशस्थानक आदि तप भी योग्य हैं। कष्ट मात्र रूप तप तो इस संसार में अभव्यों को भी दुर्लभ नहीं है।

जितेन्द्रियस्य धीरस्य प्रशान्तस्य स्थिरात्मनः।

सुखासनस्थस्य नासाग्रन्यस्तनेत्रस्य योगिनः।। (6)

जो जितेन्द्रिय है, धैर्यशाली हैं, प्रशान्त हैं, जिसकी आत्मा स्थिर है, सुखासन पर स्थित है जिसने नासिका के अग्रभाग पर अपनी दृष्टि का स्थापन किया है, जो योग सहित है।

ज्ञानानन्दरूप अमृतपान के कर्त्ता-

रूद्धब्राह्यमनोवृत्तेर्धारणाधारया रयात्।

प्रसन्नस्याऽप्रमत्तस्य, चिदानन्दसुधालिहः।। (7)

ध्येय में मन की स्थिरता रूप धारण की सतत धारा के वेग से जिसने बाह्य इन्द्रियों का अनुसरण करने वाली मन की वृत्ति को रोका है, जो प्रसन्न मन वाला, प्रमाद रहित है, ज्ञानानन्द रूप अमृत का आस्वादन करने वाला है।

साम्राज्यमप्रतिद्वन्द्वमन्तरेव वितन्वतः।

ध्यानिनो नोपमा लोके, सदेवमनुजेऽपि हि।। (8)

अपनी अन्तरात्मा में ही विपक्ष रहित अपने साम्राज्य का विस्तार करता हुआ ऐसे ध्यानवंत साधकों की देवलोक और मनुष्य लोक में भी वास्तव में कोई उपमा नहीं है।

मन अज्ञान के अभ्यास के संस्कारों द्वारा अपने वश में न रहकर इन्द्रियों के विषय-भोगों में फँस जाता है, वही मन आत्मा और शरीर के भेद-विज्ञान के संस्कारों से अपने आत्म स्वरूप में ठहर जाता है।

अपमानादयस्तस्य विक्षेपो यस्य चेतसः।

नापमानादयस्यतस्य न क्षेपो यस्य चेतसः।। (38)

जिस मनुष्य के मन में मोह-राग-द्वेष का विकार है उस मनुष्य के अपमान या अवज्ञा करना, अहंकार करना, ईर्ष्या करना, क्रोध करना इत्यादिक भाव होते हैं और जिस मनुष्य के मन में विक्षेप द्वेषादि नहीं है, उसके अपमान, अहंकार, ईर्ष्या लोभादिक दुर्भाव नहीं होते हैं।

जैसे एक तीव्र गतिशील यान (गाड़ी) को हठात् संयमित नहीं किया जा सकता है। हठात् संयमित करने पर यान के गिरने की सम्भावना अधिक रहती है परन्तु यान को धीरे-धीरे संयमित करके पर यान कुछ समय में स्थिर हो जाता है। जिस प्रकार यान की गति रूप संस्कार से प्रेरित होकर यान संयमित (ब्रेक) करने के बाद भी कुछ संयम, कुछ दूरी तक गमन करता रहता है, उसी प्रकार ध्यान साधना करने पर भी मन चञ्चल एवं चलायमान हो जाता है।

यदा मोहात्प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः।

तदैव भावयेत्स्वस्थमात्मानं शाम्यतः क्षणात्।। (39) समाधि तंत्र

जिस समय तपस्या करने वाले साधु के शारीरिक शिष्य परिवार के या संसार के मोह से राग, प्रेम, द्वेष-अप्रेम या वैरभाव उत्पन्न हो, उस ही समय अपने आत्मा को

अपने स्वरूप में स्थित करके भावना करें, तो क्षण भर में वे राग और द्वेष भाव शान्त हो जाते हैं।

आत्म विभ्रमजं दुःखमात्मज्ञानात्प्रशाम्यति।

नायतास्तत्र निर्वान्ति कृत्वापि परमं तपः।। (41)

आत्मा के विभ्रम से उत्पन्न हुआ दुःख आत्मा के भेद-ज्ञान से शान्त हो जाता है, मिट जाता है। उस भेद ज्ञान को प्राप्त करने के विषय में तत्पर न रहने वाले मुनि उत्कृष्ट घोर तपस्या करके भी निर्वाण प्राप्त नहीं कर पाते।

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।

युक्त स्वप्नावबोधस्य योगी भवति दुःखहा।। (7) गीता

जिसका आहार-विहार नियमित है, कर्मों का आचरण नपा-तुला है और सोना जागना परिमित है, उसको यह योग दुःख घातक अर्थात् सुखावह होता है।

सुखमात्यंतिकं यतदबुद्धि ग्राह्यमतीन्द्रियम्।

वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः।। (21)

जहाँ केवल बुद्धिगम्य और इन्द्रियों को अगोचर अत्यन्त सुख का उसे अनुभव होता है और जहाँ वह एक बार स्थिर हुआ तो तत्त्व से कभी भी नहीं डिगता।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।

यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।। (22)

ऐसी ही जिस स्थिति के पान से उसकी अपेक्षा दूसरा कोई भी लाभ उसे अधिक नहीं जँचता और जहाँ स्थिर होने से कोई भी बड़ा भारी दुःख (उसको) वहाँ से विचलित नहीं कर सकता।

आध्यात्मिक ही परम धर्म, सर्वोदयी शिक्षा, शाश्वतिक विज्ञान, अन्तिम न्याय, सर्वोच्च शाश्वतिक लक्ष्य-सुख-शान्ति-ज्ञान-आनन्द-विकास है। आध्यात्मिक बिना किसी भी प्रकार के धर्म, शिक्षा, विज्ञान, न्याय, लक्ष्य-सुख-शान्ति-ज्ञान-आनन्द-विकास प्राण बिना शरीर के समान है अर्थात् आध्यात्मिक ही सच्चिदानन्द, सत्यं-शिवं-सुन्दरम्, शिव मंगल, पवित्र है तथा आध्यात्मिक बिना सब कुछ शव, जड़, भौतिक, निर्जीव, अज्ञान, असुख-अशान्ति है।

(''स्वार्थ'' सम्बन्धी शोधपूर्ण कविता)

मोही-निर्मोही के भाव-लक्ष्य-स्वार्थ-काम

(सभी जीव होते हैं स्वार्थी (मोही भौतिक-सांसारिक तो निर्मोही ही आध्यात्मिक मोक्ष)

(सभी कोई मोही या निर्मोही स्व-स्व भाव स्वार्थादि अनुसार जानते-मानते-चाहते करते।)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1.आत्मशक्ति...2.क्या मिलिये...)

कौन है किसको जाने व माने? कौन है किसको चाहे/(भाये)?
स्व-स्वभाव-लक्ष्य स्वार्थानुसार सभी ही जाने माने व चाहे।।
मोक्ष के इच्छुक जो चाहते हैं, वे सभी मोही न चाहते।
गुणस्थानानुसार भी मुमुक्षु जीवों के व्यवहार में भी अन्तर होता।। (1)
मोही के भाव होते विपरीत, तदनुसार होते व्यवहार भी।
मोही के भी होते अनन्त भाव, निगोद से ले द्रव्यलिंगी मुनि के।
चतुर्गति व चौरासी लक्ष्य योनि के, होते हैं अनन्तानंत जीव।
इन्द्रिय काय मन क्षयोपशमादि से, करते अनन्तानंत भाव-काम।। (2)
एकेन्द्रिय मोही से ले देव मोही तक, भले गुणस्थान एक है मिथ्यात्व।
तो भी सभी के भोजन से ले आवश्यकता, होते भिन्न मार्गणानुसार भी।।
यथा मिथ्यादृष्टि वृक्ष व मानवों में, गुणस्थान भले ही एक समान।
किन्तु दोनों प्रजाति में न सभी समान, शिक्षा से ले धार्मिक बाह्य काम।। (3)
मिथ्यादृष्टि मनुष्य देव तक भी, न जानते आत्मा से ले परमात्मा।
भले वे शिक्षित से अशिक्षित हो, व्यवहार से पाले किसी भी धर्म तक।।
मोही स्वार्थी होते कषाय युक्त, निर्मोही स्वार्थी होते इससे रिक्त।
ख्याति पूजा लाभ वर्चस्व युक्त, मोही में ये भाव निर्मोही में ये रिक्त।। (4)
मोह के कारण होते वे मिथ्यादृष्टि, सत्यासत्य हिताहित से अनभिज्ञ।
उनके भाव-व्यवहार-लक्ष्य भी होते, सांसारिक सुख इह परलोक तक।।

आत्मश्रद्धान ज्ञान-चारित्र रिक्त, समता शान्ति आत्मविशुद्धि रिक्त।
आत्मानुभव आत्मविकास शून्य, करते अनात्म प्रयोजन के भाव काम।। (5)
इस योग्य ही जानते मानते, चाहते व भाव-काम करते।
भले बाह्य में अन्तर हो अनन्त, लक्ष्य व श्रद्धा में मोही ही होते।।
इन से विपरीत होते हैं मुमुक्षु/(निर्मोही) परम लक्ष्य एक ही होता मोक्ष।
भले शरीर व गुणस्थानानुसार, बाहर से आचरण में हो अन्तर।। (6)
इनके होते आत्म श्रद्धान ज्ञानाचार, समता शान्ति आत्मविशुद्धि सह।
आत्मानुभव आत्मविकास सह, करते आत्म प्रयोजन के भाव काम।।
यथा विद्युत् यंत्रादि के अनुसार, करता काम भी विभिन्न प्रकार।
किन्तु विद्युत् इलेक्ट्रोन कण ही होता, तथाहि मोही निर्मोही के ज्ञेय।। (7)
मोही के संसार में ही भ्रमण होता, निर्मोही पाते हैं परिनिर्वाण।
यह है परम आध्यात्मिक रहस्य, 'सूरी कनक' का लक्ष्य परिनिर्माण।। (8)
स्व आत्मा के प्रयोजन ही होता स्वार्थ, जो होता आध्यात्मिक परमार्थ।
इससे जीव बने शुद्ध बुद्ध आनन्द, इससे विपरीत मोही के स्वार्थ।।
परमार्थ स्वार्थ से न होता पर अपकार, प्रत्यक्ष परोक्ष में होता परोपकार।
मोही के स्वार्थ से होता पर अपकार, प्रत्यक्ष परोक्ष में होता पर अपकार।। (9)

दि. 10-9-2019 नन्दौड़

संदर्भ-

जीव के वैभाविक परिणाम का निमित्त प्राप्त करके पुद्गल कार्य रूप में स्वयं ही परिणमन करता है उसी प्रकार आचार्य श्री वर्णन कर रहे हैं कि पूर्वबद्ध पौद्गलिक कर्म के उदय को निमित्त मात्र प्राप्तकर जीव भी स्वयं ही ज्ञानावरणादि रूप वैभाविक भाव रूप में परिणमन करता है। जीव स्वयं जब चैतन्य रूप में परिणमन करता है तब पौद्गलिक कर्म उस परिणमन के लिए निमित्त मात्र बनते हैं। जिस प्रकार योग्य मिट्टी स्वयं घड़ा रूप में परिणमन करती है तब चक्र, कुम्हार, डण्डा, चीवर आदि के निमित्त की आवश्यकता होती है परन्तु चक्र आदि घड़ा रूप में परिणमन नहीं करते हैं तथापि चक्र आदि के निमित्त के बिना मिट्टी घड़ा रूप में परिणमन नहीं कर सकती है।

मिथ्याज्ञानः संसार का बीज

अयमेव कर्मकृतैः, भावैरसमाहितोपि युक्तः इव।

प्रमिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्।। (14) पुरु.

इसी प्रकार पौद्गलिक कर्म के भावों से जीवों के भाव मिले हुए नहीं होने पर भी अज्ञानी को मिले हुए लगते हैं। इसी प्रकार प्रत्यक्षीभूत चैतन्य स्वरूप आत्मा कर्मकृत भाव से, पर्यायों से, नर, देव आदि रूपी पर्यायों से निश्चयनय से अयुक्त होने पर भी, असम्बन्ध होने पर भी अज्ञानी के लिये, मूर्खों के लिए परमार्थ से तृण अग्नि से अलग होने पर भी अग्नि को तथा तृण को एक समान मान लेता है। उसी प्रकार अज्ञानी जीव को एवं कर्म को एक मान लेता है भले दोनों अलग-अलग हैं। जिस प्रकार अग्नि से तपायमान लौह पिण्ड को दृष्टि से भ्रम से अग्नि मान लेता है परन्तु अग्नि तथा लौह पिण्ड पृथक्-पृथक् हैं। इसी प्रकार नर, अमर आदि पर्याय आत्मा से भिन्न होते हुए भी मोहान्धकार से कलुषित चेतना वाले मनुष्य को अभिन्न दिखाई देती हैं। यही प्रतिभास/अभिन्नता भव के लिये बीज स्वरूप बन जाती है। उसी प्रकार निश्चय से पूर्वोक्त प्रतिभास स्वरूप जीव कर्म बन्ध रूप भव बीज होता है। संसार का कारण होता है।

ज्ञानार्जन के विविध महान् उद्देश्य-

बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः-स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः।

चिन्तामणिं चिन्तितवस्तुदाने-त्वां वन्द्यमानस्य ममास्तु देवि।। (11) द्वात्रिं.

O Goddness, thou art like the jewel Chintamani is granting all desired objects. May I, by worshipping the obtain wisdom, control, control of mind, purity of thought, realization of my own self and perfect happiness ever-lasting.

माँ देवी सरस्वती! आप चिन्तित वस्तु को देने में चिन्तामणि के समान आपको वन्दन करने वाले मुझे बोधि, समाधि, परिणाम-विशुद्धि, स्वात्मा की उपलब्धि, मोक्ष सुख की सिद्धि होवे।

प्राप्त शिक्षाएँ-ज्ञानार्जन/स्वाध्याय के प्रमुख उद्देश्य जानकारी के संग्रह, ख्याति, पूजा, लाभ, धनार्जन, परीक्षा में उत्तीर्ण, प्रसिद्धि, अहंवृत्ति, दिखावा, भाषण देना आदि

नहीं है अपितु इससे विपरीत सत्य-तथ्य का परिज्ञान, आत्मलीनता रूपी समाधि, भाव की परिशुद्धता, समता निस्पृहता, निर्लोभता, संतोष, सहिष्णुता, वीतरागता, मोक्ष ही ज्ञानार्जन/स्वाध्याय के यथार्थ फल है।

अविद्याभिदुरं ज्योतिः, परं ज्ञानमयं महत्।

तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् दृष्टव्यं मुमुक्षुभिः।। (49)

अविद्या को दूर करने वाली महान् उत्कृष्ट ज्ञान ज्योति है। सो मुमुक्षुओं (मोक्षभिलाषियों) को उसी विषय में पूछना चाहिए और उसी की वांछा करनी चाहिए और उसे ही अनुभव में लाना चाहिए।

प्रकृष्ट सिद्धि=प्रसिद्धि=सिद्धि स्वात्मोपलब्धिः अर्थात् स्व आत्मा की पूर्ण उपलब्धि ही प्रसिद्धि/सिद्धि/मोक्ष है। इस परमोत्कर्ष अवस्था/पूर्ण अवस्था में आध्यात्मिक अनन्त गुणों के साथ-साथ ईश्वरत्व/प्रभुत्व आदि गुण शुद्ध रूप में, सहज रूप में, स्वभाव रूप में प्रगट होते हैं, और उसका अनुभव शुद्ध जीव करते हैं।

पूजनीय परमात्मा का चिन्तन-

यः स्मर्यते सुर्वमुनीन्द्रवृन्दैः, यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः।

यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।। (12)

May that Lord of Lords be enshrined in my heart. who is an object of contemplation for groups of ascetic saints, to whom all monarchs and archangels sing hallelujahs and who is praised in Vedas, Puranas and Shastras.

जो सम्पूर्ण मुनियों के समूह के द्वारा स्मरण किये जाते हैं, जो सर्व नरेन्द्र, देवेन्द्र के द्वारा स्तुति किये जाते हैं, जो वेद, पुराण, शास्त्रों के द्वारा गाये जाते हैं, वे देवों के भी देव मेरे हृदय में विराजमान रहें। ऐसे देवाधिदेव महादेव भगवान् का स्वरूप अग्र श्लोकों में वर्णित है।

ज्ञानानन्द-परमात्मा का चिन्तन-

यो दर्शनज्ञान सुखस्वभावः-समस्त संसार विकारबाह्यः।

समाधिगम्यं परमात्मसंज्ञः-से देवदेवा हृदये ममास्ताम्।। (13)

May that Lord of Lords be enshrined in my heart, whose

nature, is knowledge, wisdom and happiness, is free from all imperfections pervading the world, who is accessible in contemplation and who is called the highest self.

जो अनन्त अक्षय दर्शन-ज्ञान-सुख स्वभावी हैं; संसार के समस्त विकारों से परे हैं, जिसे परमात्मा रूप में सम्बोधित किया जाता है, जो समाधि (परम आत्म-ध्यान) के द्वारा जाने जाते हैं, वे देवाधिदेव मेरे हृदय में विराजमान रहें।

प्राप्त शिक्षाएँ-जो अक्षय अनन्त सुख-शान्ति, ज्ञान, वीर्य आदि को देवे/प्रदान करें वे ही यथार्थ से देव हैं। जो भग+वान् (भग=ज्ञान, वान=सम्पन्न, युक्त) अर्थात् अनन्त ज्ञानवान् हैं वे ही यथार्थ से भगवान् हैं। ऐसे महान् परम अवस्था-उपलब्धियों से युक्त वे ही होते हैं, जो सांसारिक समस्त विकारों (मोह, माया, अज्ञान, क्रोध, मद, काम, ईर्ष्या, द्वेष, भौतिक शरीर, जन्म, मरण, क्षुधा-प्यास, वृद्धत्व आदि) से रहित होते हैं, अमूर्तिक आध्यात्मिक स्वरूप होने से केवल परम आत्म ध्यान के द्वारा ही परिज्ञान/अनुभव/अधिगम होते हैं ऐसे परमात्म स्वरूप महादेव मेरे हृदय में विराजमान रहें।

विश्वज्ञ-परमात्मा का चिन्तन-

निषूदते यो भवदुःखजालं-निरीक्षते यो जगदन्तरालं।
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः-स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।। (14)

May that Lord of Lords be enshrined in my heart, who destroys the trammels of the world who sees all that is inner most in universe, who, can be realised by the inner-self and who is seen by devotees.

जो संसार के दुःखों के समूह को नष्ट करते हैं, जो ब्रह्माण्ड के अन्तराल को (सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड) देखते हैं, जो योगियों के अन्तर्मन (अन्तः करण, ध्यान) के द्वारा देखे जाते हैं/अनुभव किये जाते हैं, ऐसे देवों के देव मेरे हृदय में विराजमान रहें।

प्राप्त शिक्षाएँ-जो सांसारिक दुःख (शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक रोग/समस्या) को पूर्णतः नष्ट कर देते हैं, अनन्तज्ञानी होने से अणु से लेकर ब्रह्माण्ड (लोक+अलोक=विश्व+प्रतिविश्व), मूर्तिक-अमूर्तिक, चेतन-अचेतन सूक्ष्म-स्थूल, दृश्य-अदृश्य पदार्थों को जानते हैं वे ही देव के देव (महादेव, भगवान्, ईश्वर, परमात्मा,

God सर्वव्यापी) हैं। ऐसे भगवान् अमूर्तिक, सच्चिदानंद, सत्यं शिवं सुन्दरम्, ज्ञानघन स्वरूप होने से इन्द्रियगम्य-यन्त्रगम्य नहीं हैं, परन्तु ज्ञानगम्य/ध्यानगम्य हैं। अतः वे योगीगम्य/ध्यानीगम्य हैं।

मुक्ति मार्ग प्रतिपादक-परमात्मा का चिन्तन-

विमुक्ति मार्ग प्रतिपादको यो-योग जन्ममृत्यु व्यसनाद्यतीतः।
त्रिलोक लोकी विकलोऽकलंकः-स देवदेवो हृदये ममास्ताम्।। (15)

May that Lord of Lords be enshrined in my heart, who has exhibited, the path O! Salvation who has passed beyond birth and death (which proceed sin), who sees the worlds and is body less and faultless.

जो विमुक्तिमार्ग के प्रतिपादन करने वाले हैं, जो जन्म-मृत्यु-दुःख से परे हैं, जो तीन लोकों को देखनेवाले हैं, शरीर से रहित हैं, दोषों से रहित हैं वे देवाधिदेव मेरे हृदय में विद्यमान रहें।

प्राप्त शिक्षाएँ-भगवान् मुक्तिमार्ग के उपदेशक होते हैं, भौतिक शरीर (पौद्गलिक-जैविक-रासायनिक, हड्डी-मांस-रक्त, स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-वजन) से रहित चेतनात्मक-अमूर्तिक स्वरूप वाला होने से जन्म-जरा-मृत्यु से रहित अमृत स्वरूप होते हैं, बिना इन्द्रिय-मन-यन्त्र के किन्तु अनन्तज्ञान से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को केवल साक्षी रूप में जानते हैं, सम्पूर्ण दोषों (पशु-मानव-स्वर्ग के देव-नारकी सम्बन्धी सम्पूर्ण दोषों) से रहित होते हैं। ऐसे भगवान् के ध्यान से स्व में निहित आध्यात्मिक-शक्तियाँ/भगवत्-शक्तियाँ जागृत होती है।

''मैं गुणों से मंडित पञ्चपरमेष्ठी भगवन्तों की पूजा, अर्चा, वन्दना करता हूँ।'' मेरे दुखों का, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति, उत्तम गति की प्राप्ति हो, समाधि की प्राप्ति हो तथा जिनेन्द्र देव के गुणों की प्राप्ति हो।

न स्नेहाच्छरणं प्रयान्ति भगवन्! पादद्वयं ते प्रज्ञाः,
हेतुस्तत्र विचित्र दुःख निचयः संसार घोरार्णवः।
अत्यन्त स्फुरदुग्र रश्मि निकर व्याकीर्ण भूमण्डलो,
ग्रैष्मः कारयतीन्दु पाद सलिल-च्छायानुरागं रविः।। (1) शान्तिभक्ति

हे वीतराग प्रभो! संसारी भव्यजीव आपके चरण-कमलों की शरण में मात्र स्नेह से नहीं आते हैं, किन्तु जिस प्रकार ज्येष्ठ मास में सूर्य की तप्तायमान प्रचण्ड किरणों से जहाँ भूमण्डल तपित हुआ है वहाँ उस स्थिति में मानव चन्द्रमा की शीलत चाँदनी/किरणों, शीतल जल व वृक्षों की सघन छाया से स्वयं ही स्वाभाविक रूप से अनुराग करने लगता है; ठीक उसी प्रकार संसाररूपी भयानक समुद्र में निधत्ति, निकाचित आदि विविध कर्मों से पीड़ित, संतप्त ऐसे भव्य जीव शान्ति की प्राप्ति के लिये स्वयं ही आपके पुनीत शान्तिप्रदायक दोनों चरण-कमलों की शरण को प्राप्त होते हैं। अर्थात् जैसे संसारी जीवों का गर्मी का संताप शीतल चन्द्र किरण, जल आदि के द्वारा शान्त होता है वैसे ही भव्यजीवों का कर्मों का भयानक, दुख आपके चरण-शरण में आने से दूर होता है।

प्रणाम करने का ऐहिक फल

क्रुद्धाशार्विष दष्ट दुर्जय विषय ज्वालावली विक्रमो,
विद्या भेषज मन्त्र तोय हवनै र्याति प्रशान्तिं यथा।
तद्वत्ते चरणारुणाम्बुज युग स्तोत्रोन्मुखानां नृणाम्,
विघ्नाः कायविनायकाश्च सहसा शाम्यन्त्यहो विस्मयः।। (2)

लोक में जिस प्रकार प्रचण्ड क्रोध को प्राप्त ऐसे सर्प से डसे गये मनुष्य का असह्य, भयानक विष भी गारुड़ी विद्या या गारुड़ी मुद्रा के दिखाने से, विषानाशक नागदमनी आदि औषधियों के सेवन से, मन्त्रित किये गये जल या जिनाभिषेक के जल को लगाने से व हवन आदि उचित अनुष्ठानों के करने से दूर हो जाता है, उसी प्रकार वीतराग प्रभो! आपके चरण-कमलों की स्तुति, भक्ति, आराधना करने से जीवों के समस्त विघ्न, बाधाएँ, शारीरिक कष्ट-वेदनाएँ शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाती हैं, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। अर्थात् वीतराग जिनेन्द्रदेव की स्तुति करने से समस्त शारिरिक-मानसिक बाधाएँ क्षणमात्र में दूर हो जाती हैं।

प्रणाम करने का फल

सन्तप्तोत्तम काञ्चन क्षितिधर श्री स्पर्द्धि गौरद्युते,
पुंसां त्वच्चरणप्रणाम करणात्पीडाः प्रयान्तिक्षयं।

उद्यद्भास्कर विस्फुरत्कर शतव्याघात निष्कासिता,
नाना देहि विलोचन-द्युतिहरा शीघ्रं यथा शर्वरी।। (3)

तपाये हुए उत्तम स्वर्ण की कान्ति के सम दीप्तिमान तेज के धारक जिनके शरीर की पीत कान्ति सुमेरु पर्वत की कान्ति को भी फीका कर रही है ऐसे हे शान्तिनाथ जिनेन्द्र! जिस प्रकार उगते हुए सूर्य की तेजोमयी किरणों के आघात से भयानक रात्रि शीघ्र नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार आपके श्रीचरणों में प्रणाम, वन्दन, नमन, स्तवन करने वाले मनुष्यों की समस्त पीड़ाएँ क्षणमात्र में क्षय को प्राप्त हो जाती हैं।

मुक्ति का कारण जिन-स्तुति

त्रैलोक्येश्वर भंग लब्ध विजयादत्यन्त रौद्रात्मकान्,
नाना जन्म शतान्तरेषु पुरतो जीवस्य संसारिणः।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना कालोग्र दावानलान्,
न स्याच्चेत्तव पाद पद्म युगल स्तुत्यापगा वारणम्।। (4)

हे भगवन्! अधोलोक के स्वामी धरणेन्द्र, मध्यलोक के स्वामी चक्रवर्ती व ऊर्ध्वलोक के स्वामी इन्द्र इनके विनाश से प्राप्त विजय से जो अत्यन्त भयानक रूप को प्राप्त कर चुका है, ऐसे मृत्युरूपी विकराल काल से कौन कैसे बच सकता है? यदि आपके पावन चरण-कमल युगल की स्तुतिरूपी नदी संसारी जीवों के आगे उसकी रक्षक न हो। अर्थात् भयानक दावानल की नदी गति सामने आने पर रुक जाती है या दावानल नदी का सम्पर्क पा बुझ जाता है उसी प्रकार मृत्युरूपी दावानल भी आपकी स्तुति करने से मन्दगति वाला हो, शान्त हो जाता है। भावार्थ यह है कि जो भव्य जीव आपकी स्तुति करते हैं, वे काल याने मृत्यु को सदा-सदा के लिये जीतकर मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

स्तुति से असाध्य रोगों का नाश

लोकालोक निरन्तर प्रवितत् ज्ञानैक मूर्त्ते विभो!
नाना रत्न पिनद्ध दण्ड रुचिर श्वेतातपत्रत्रय।
त्वत्पाद द्वय पूत गीत रवतः शीघ्रं द्रवन्त्यामया,
दर्पाध्मातमृगेन्द्रभीम निनदाद् वन्था यथा कुञ्जराः।। (5)

हे लोकोलोक के ज्ञाता, केवलज्ञानमयी अनुपम मूर्ते! हे रत्नों जड़ित तीन छत्रों से शोभायमान शान्ति जिनेन्द्र! आपके पावन चरण-युगल की स्तुति के पावन निर्मल शब्दों की आवाज मात्र से भव्यजीवों के असाध्य रोग भी तत्काल उसी प्रकार भाग जाते है; जिस प्रकार भयानक जंगल में मदमस्त सिंह की भयंकर गर्जना सुनकर वन के जंगली हाथी तितर-बितर हो जाते हैं।

स्तुति से अनन्त सुख

दिव्य स्त्री नयनाभिराम विपुल श्री मेरु चूडामणे,
भास्वद् बाल दिवाकर-द्युतिहर प्राणीष्ट भामण्डल।
अव्याबाध मचिन्त्यसार मतुलं त्यक्तोपमं शाश्वतम्,
सौख्यं त्वच्चरणारविन्द युगल स्तुत्यैव सम्प्राप्यते।। (6)

हे शान्ति जिनेन्द्र! आपका नयनाभिराम, सौम्य, जगत् प्रिय रूप देवाङ्नाओं को भी प्रिय लगने वाला है अतः हे देवाङ्गनाओं के नयनवल्लभ! हे अन्तरङ्ग अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी के स्वामी तथा बहिरंग समवसरण प्रातिहार्य आदि श्रेष्ठ लक्ष्मी के चूडामणि! उगते हुए, प्रातः कालीन, बाल सूर्य के समान कान्तियुक्त ऐसे भामण्डल से युक्त हे भगवन्! आपकी स्तुति की महिमा अपरम्पार है। निर्बाध, अचिन्तनीय, सारभूत, तुलनारहित, उपमाओं से रहित अक्षय, अविनश्वर, अतीन्द्रिय सुख आपके पावन परम वन्दनीय श्रीचरण-कमलों की स्तुति से ही प्राप्त हो सकता है। अर्थात् आत्मा का सच्चा सुख वीतराग जिनेन्द्रदेव की आराधना से ही प्राप्त होता है।

भगवान् के चरण-कमल प्रसाद से पापों का नाश

यावन्नोदयते प्रभा परिकरः श्रीभास्करो भासयंस्,
तावद् धारयतीह पंकज वनं निद्रातिभार श्रमम्।
यावत्त्वच्चरणद्वयस्य भगवन्! नस्यात् प्रसादोदय-
स्तावज्जीव निकाय एष वहति प्रायेण पापं महत्।। (7)

जिस प्रकार इस लोक में सर्व दिशाओं को प्रकाशित करने वाला शोभायमान ऐसा सूर्य जब तक उदय को प्राप्त नहीं होता है तब तक ही कमलों का समूह

''मुकुलित, अविकसित'' अवस्था के भार को वहन कर खेद को प्राप्त होता है, ठीक उसी प्रकार, हे भगवन्! आपके चरण-कमलों का कृपा प्रसाद जब तक इस जीव समूह को प्राप्त नहीं होता तब तक ही वह मिथ्यात्व, कषाय, अज्ञान आदि पापों के महाभार को धारण करता है। अर्थात् जैसे सूर्य की किरणों का सम्पर्क पाते ही कमल विकसित हो जाता है, वैसे ही जिनसूर्य के चरण-कमलरूपी किरणों का सम्पर्क पाते ही भव्यप्राणियों का समूह मिथ्यात्व का वमन कर सम्यक्त्व को प्राप्त कर अनन्त संसार के कारण महापापों से बचकर मुक्ति को प्राप्त करता है।

स्तुति का फल याचना

शान्तिं शान्ति जिनेन्द्र शान्त, मनसस्त्वत्पाद पद्माश्रयात्।
संप्राप्ताः पृथिवी तलेषु बहवः, शान्त्यर्थिनः प्राणिनः।।
कारुण्यान् मम भाक्तिकस्य च विभो! दृष्टिं प्रसन्नां कुरु।
त्वत्पादद्वय दैवतस्य गदतः, शान्त्यष्टकं भक्तितः।। (8)

हे शान्तिनाथ भगवन्! इस पृथ्वी तल पर शान्ति के इच्छुक, समता भावी अनेकों प्राणी आपके चरण-कमलों के स्मरण, स्तवन, वन्दन से ही पूर्ण शान्ति, मुक्ति-सुख को प्राप्त हुए हैं। हे भगवन्! मैं आपका भक्त, आप ही मेरे एकमात्र आराध्य देवता हैं। मैं भक्तिपूर्वक इस ''शान्त्यष्टक'' शान्तिभक्ति के माध्यम से आपके महागुणों का स्पष्ट उच्चारण कर रहा हूँ। आप करुणा करके मेरे सम्यक्त्व को निर्मल कीजिये। आप अनुकम्पा कर मेरी दृष्टि को पवित्र कीजिये।

जिनके चरण-कमल सौ इन्द्रों से वन्दनीय है, पञ्चकल्याणक की मंगल बेला में जो विविध आभूषणों के धारक देवों, इन्द्रों आदि के द्वारा पूजित हुए हैं, वे उत्तम वंश में उत्पन्न त्रिजगत् को प्रकाशित करने वाले ऐसे तीर्थंकर शान्तिनाथ भगवान मेरे लिये निरन्तर शान्ति प्रदान करें।

सम्पूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शान्तिं भगवन्-जिनेन्द्रः।। (14)

हे जिनेन्द्रदेव! श्रद्धा से आपकी आराधना करने वाले आराधकों को, धर्म के आयतन-देव, शास्त्र, गुरु और तीर्थों की रक्षा करने वालों को, आचार्यों, सामान्य तपस्वियों,

मुनियों आदि सर्व संयमियों को, देश, राष्ट्र, नगर, प्रजा सभी को शान्ति प्रदान कीजिये।

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु, बलवान् धार्मिको भूमिपालः।
काले काले च सम्यग्वितरतु मघवा, व्याधयो यान्तु नाशम्।।
दुर्भिक्षं चौरमारिः क्षणमपि जगतां, मास्मभूज्जीव-लोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं, सर्व-सौख्य-प्रदायि।। (15)

हे प्रभो! लोक में समस्त प्रजा का कल्याण हो, राजा बलवान् और धार्मिक हो, सर्व दिग्दिगन्त में समय-समय पर मेघ यथायोग्य जलवृष्टि करते रहें, कहीं भी, कभी भी अतिवृष्टि रूप प्रकोप न हो, मानसिक-शारीरिक बीमारियों का नाश हो, तथा लोक में जीवों को कभी भी क्षण-मात्र के लिये भी दुष्काल, चोरी, मारी रोग, हैजा, मिरगी आदि न हो। वीतराग जिनेन्द्रदेव का धर्मचक्र जो प्राणीमात्र के लिये सुखप्रदायक है, सदा प्रभावशाली बना रहे। हे विभो! आपका जिनशासन सर्वलोक में विस्तृत हो, लोकव्यापी जिनधर्म कल्याणकारी हो।

तद् द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः स देशः,
संतन्यतां प्रतपतां सततं सकालः।
भावः स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण,
रत्नत्रयं प्रतपतीह मुमुक्षवर्गे।। (16)

जिनके अनुग्रह से मोक्ष के इच्छुक मुनिजनों का निर्दोष रत्नत्रय प्रकाशमान हो वह द्रव्य उत्पन्न हो। अर्थात् निर्दोष आहार, औषध आदि व संयम के उपकरण पिच्छी-कमंडलु आदि ऐसा वह शुभ द्रव्य है तथा मुनियों को यह निर्दोष रत्नत्रय की वृद्धि करने वाला द्रव्य जिस क्षेत्र में प्राप्त हो वह शुभ/देश/क्षेत्र हैं। दिगम्बर मुनियों के सदा उत्तम रत्नत्रय की वृद्धि जिस काल में हो वह शुभ काल है तथा उन मुनियों के सदा आत्मानन्द की प्राप्ति से प्राप्त निर्मल परिणाम का होना शुभ भाव है। अर्थात् जिनके योग से मुनियों का रत्नत्रय उन्नतिशील बने वही शुभद्रव्य, शुभक्षेत्र, शुभकाल व शुभभाव है ऐसा जानना चाहिये।

प्रध्वस्त धाति कर्माणः, केवलज्ञान भास्कराः।
कुर्वन्तु जगतां शान्तिं, वृषभाद्या जिनेश्वराः।। (17)

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अन्तराय इन चार घातिया कर्मों का जिन्होंने समूल क्षय कर दिया है तथा जो केवलज्ञानरूपी सूर्य से सर्वजगत् को प्रकाशित करते हुए शोभा को प्राप्त हैं ऐसे वृषभनाथ को आदि तीर्थंकर महावीर पर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थंकर जगत् के समस्त प्राणियों को शान्ति, सुख, क्षेम, कुशल प्रदान करें।

शांति शिरोधृत जिनेश्वर शासनानां,
शान्तिः निरन्तर तपोभव भावितानां।
शान्तिः कषाय जय जृम्भित वैभावानां,
शान्तिः स्वभाव महिमानमुपागतानाम्।। (1)

हे शान्तिनाथ भगवान्! जिनशासन की आज्ञा को शिरोधार्य करने वाले भव्यजीवों को शान्ति/सुख की प्राप्ति हो। अखंडरूप से तप में लीन मोक्ष के इच्छुक मुनियों को शान्तरस रूप शुक्लध्यान की प्राप्ति हो। कषायों को जीतकर आत्मानन्द को प्राप्त करने वालों को समतारसरूप शान्ति प्राप्त हो तथा जो आत्मस्वभाव की महिमा को प्राप्त कर चुके हैं ऐसे यतियों को शाश्वतशान्तिरूप सिद्धपद की प्राप्ति हो।

जीवन्तु संयम सुधारस पान तृप्ता,
नंदंतु शुद्धं सहसोदय सुप्रसन्नाः।
सिद्ध्यंतु सिद्धि सुख संगकृताभियोगाः,
तीव्र तपन्तु जगतां त्रितयेऽर्हदाज्ञा।। (2)

हे शान्तिनाथ भगवन्! संयमरूपी अमृत का पान करने से पूर्ण तृप्त ऐसा मुनिसमूह सदा जीवन्त रहे अर्थात् पृथ्वी पर सदा मुनिजनों का विचरण होता रहे। आत्मानन्द के उदय से सदा सर्वत्र प्रसन्न रहने वाले यतिगण शाश्वत आनन्द को प्राप्त हों। मुक्ति लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये उपसर्ग, परिषहों को सहनकर घोर तपश्चरण का उद्योग करने में तत्पर मुनिराज सिद्धिसुख को प्राप्त हो, तथा अर्हन्त देव का शासन तीन लोक से सम्पूर्ण पृथ्वीमंडल पर विशेष प्रभावना को प्राप्त हो।

शान्तिः शंतनुतां समस्त जगतः, संगच्छतां धार्मिकैः।
श्रेयः श्री परिवर्धतां नयधरा, धुर्यो धरित्रीपतिः।।
सद्विद्यारसमुद्गिरन्तु कवयो, नामाप्यघस्यास्तु मां।
प्रार्थ्यं वा कियदेक एव, शिवकृद्धर्मो जयत्वर्हताम्।। (3)

हे शान्तिनाथ प्रभो! तीन लोक के समस्त प्राणी सुखी हों, धर्मात्मा जीवों को कल्याणकारी स्वर्ग-मुक्त लक्ष्मी प्राप्त हो, नीति न्याय का घर-घर में प्रचार हो, पृथ्वी का राजा शूर-वीर हो। विद्वान् लोग उत्तम शिक्षा का प्रसार करें जिससे कोष में पाप का नाम भी न रहे/पृथ्वी पर पाप का नाम भी न रहे और अन्त में क्या माँगूँ, बस एक ही माँगता हूँ, वह यह कि ''वीतराग जिनदेव/अर्हन्त भगवन्त का मोक्षदायक ''जिनधर्म'' सदा पृथ्वी-मंडल पर जयवन्त रहे।

इच्छामि भंते! संतिभत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, पञ्च-महा-कल्लाण-संपण्णाणं, अट्ठमहापाडिहेर-सहियाणं, चउतीसातिसय-विसेस-संजुत्ताणं, बत्तीस-देवेंद-मणिमय मउड मत्थय महियाणं बलदेव वासुदेव चक्कहर रिसि-मुणि-जदि-अणगारोव गूढ़ाणं, थुइ-सय-सहस्स-णिलयाणं, उसहाइ-वीर-पच्छिम-मंगल-महापुरिसाणं णिच्चकालं, अंचेमि पूजेमि, वंदामि णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइमगणं, समाहि-मरणं जिण-गुण सम्पत्ति होदु मज्झं।

हे शान्तिनाथ भगवन्! मैंने शान्तिभक्ति का कायोत्सर्ग पूर्ण किया अब मैं उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। जो गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान व मोक्ष कल्याणक के स्वामी हैं, आठ प्रतिहार्यों व चौंतीस अतिशयों से शोभायमान हैं, भवनवासी के 10, व्यन्तरों के 8, वैमानिक देवों के 12, ज्योतिषी देवों के सूर्य-चन्द्र 2, इन 32 देवों से वन्दनीय हैं, बलदेव, नारायण, चक्रवर्ती, ऋषि, यति, मुनि और अनगारों से परिवृत हैं और लाखों स्तुतियों से स्तुत्य हैं, एक वृषभदेव से महावीर-पर्यन्त 24 तीर्थंकरों की जो मंगलरूप हैं, मैं सदा उनकी अर्चा, पूजा, वन्दना, नमस्कार करता हूँ। मेरे दुखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, उत्तम गति प्राप्त हो, समाधिमरण हो तथा जिनेन्द्रदेव के गुण रूप अनन्त गुणों की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

मैं आचार्यभक्ति सम्बन्धी कार्यात्सर्ग के बाद उसकी आलोचना करता हूँ। रत्नत्रयधारक, पञ्चाचारपालक आचार्य परमेष्ठी, द्वादशांग श्रुत के उपदेशक उपाध्याय परमेष्ठी तथा रत्नत्रयरूप गुणों से मण्डित साधु परमेष्ठी की मैं सदा काल अर्चा, पूजा, वन्दना, आराधना करता हूँ, इनके फलस्वरूप मेरे दुखों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो,

रत्नत्रय की प्राप्ति हो, उत्तमगति की प्राप्ति हो, समाधिपूर्वक मरण हो तथा जिनेन्द्रदेव के गुणों की प्राप्ति हो।

अष्टगुणैः समुपेतान्, प्रणष्ट-दुष्टाष्ट-कर्मरिपु-समितीन्।
सिद्धान् सतत-मनन्तान्-नमस्कारो-मीष्ट तुष्टि संसिद्ध्यै।। (1) पं.भक्ति.

जिन्होंने ज्ञानावरण आदि आठ दुष्ट कर्मों के समूह का पूर्ण क्षय कर दिया जो आठ कर्मों के अभाव में सम्यक्त्व आदि आठ महागुणों से शोभायान हैं ऐसे अनन्त सिद्धों को मैं इच्छित, तुष्टिकारक, समीचीन सिद्धि की प्राप्ति के लिये सदा नमस्कार करता हूँ।

मिथ्या-वादि-मद्रोग्र-ध्वान्त-प्रध्वन्सि-वचन-संदर्भान्।
उपदेशकान् प्रपद्ये मम दुरितारि प्रणाशाय।। (4)

उपाध्याय परमेष्ठी स्वसमय-पर समय के ज्ञाता, नित्य धर्मोपदेश में निरत रहते हैं उनके हित-मित-प्रिय प्रवचनों के प्रकरण को सुनते ही मिथ्यावादियों का मान गलित हो जाता है, अज्ञान, अंधकार विलीन हो जाता है। ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी की शरण में मैं भी जाता हूँ। आपके चरण-कमलों के सम्पर्क से, शरणार्थी के पापों का क्षय हो।

सम्यग्दर्शन-दीप-प्रकाशका-मेय-बोध-सम्भूताः।
भूरि-चरित्र-पताकास्ते साधु-गणास्तु मां पान्तु।। (5)

''दिगम्बर साधुओं का शरीर चैत्यगृह है''। जो सम्यग्दर्शनरूपी दीपक को प्रकाशित कर भव्य जीवों के अनादि-कालीन मिथ्यात्व के अन्धकार को नष्ट करने वाले हैं। जो साधुगण जीवादि नौ पदार्थों के ज्ञान से सम्पन्न हैं, जिनकी उत्कृष्ट चारित्र-रूपी ध्वजा लोक में फहरा रही है, उन साधुगण/महासाधुओं की शरण में मैं जाता हूँ, ये साधुसमूह मेरी रक्षा करें।

जिन-सिद्ध-सूरि-देशक-साधु-वरानमल गुण गणोपेतान्।
पञ्चनमस्कार-पदै-स्त्रि-सन्ध्य-मभिनौभि मोक्ष-लाभाय।। (6)

जो अनन्त निर्मल गुणों से शोभायमान हैं ऐसे अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय तथा उत्तम साधु इन पञ्च परमेष्ठियों को मैं मोक्ष की प्राप्ति के लिये णमोकार मन्त्र रूप पाँच पदों के द्वारा तीनों सन्ध्याओं में नमस्कार करता हूँ। अर्थात् अनन्त गुणों के समुद्र

पञ्चपरमेष्ठी की आराधना मुक्ति की प्राप्ति के लिये एकमात्र अमोघ कारण है।

एषः पञ्चनमस्कारः, सर्वपापप्रणाशनः।

मंगलानां च सर्वेषां, प्रथमं मंगलं भवेत्।। (7)

परमेष्ठी वाचक, अनादि निधन यह पञ्च नमस्कार मन्त्र सब पापों को नाश करने वाला, लोक में सब मंगलों में श्रेष्ठ प्रथम मंगल है।

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायाः सर्वसाधवः।

कुर्वन्तु मंगलाः सर्वे, निर्वाण परमश्रियम्।। (8)

तीनों लोकों में मङ्गलरूप-पापों के नाशक, सुख के प्रदायक, अर्हन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधु ये पञ्चपरमेष्ठी मेरे लिये उत्कृष्ट मुक्ति लक्ष्मी प्रदान करें।

सर्वान् जिनेन्द्र चंद्रान्, सिद्धानाचार्य पाठकान् साधून्।

रत्नत्रयं च वंदे, रत्नत्रयसिद्धये भक्त्या।। (9)

मैं भक्तिपूर्वक समस्त अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय व साधुओं की तथा रत्नत्रय की वन्दना करता हूँ, मुझे रत्नत्रय की सिद्धि हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो।

पांतु श्रीपादपद्मानि, पञ्चानां परमेष्ठिनां।

लालितानि सुराधीश, चूडामणि मरीचिभिः।। (10)

देवों के अधिपति इन्द्र भी जिनके चरण-कमलों की सेवा में नतमस्तक रहता है, ऐसे पञ्चपरमेष्ठी भगवान् के पावन चरण-कमल मेरी रक्षा करें।

जो पूजादि करके उसके फलस्वरूप धन, वैभव, पूजादि की कामना करते हैं वो मानो राख के लिये चंदन की लकड़ी को जलाते हैं, धागे के लिये रत्नों का हार तोड़ धागा निकालते हैं, चिंतामणि प्राप्त करके कौआ उड़ाने में फेंक देते हैं, चक्रवर्ती बनकर भिक्षा माँगते हैं, अमृत को त्यागकर विषपान करते हैं क्योंकि लौकिक कामना करना निदान है। इस निदान से सम्यग्दर्शन ही नष्ट हो जाता है। सम्यग्दर्शन नष्ट होने से वह धार्मिक ही नहीं रहता, उसकी पूजा यथार्थ नहीं होती। पूजा यथार्थ न होने से सातिशय पुण्य बंध नहीं होता, जो पुण्य भी बँधता है वह थोड़ा होता है और वह पापानुबंधी पुण्य होता है।

उस पुण्य के उदय से जो कुछ थोड़ा धन वैभव मिलता है, उसमें भोगासक्त हो जाता है, मदान्ध हो जाता है इसलिये वह पुण्य उसके लिए पतन

का कारण बन जाता है, संसार का कारण बन जाता है। निष्काम कर्म करने से मानसिक शांति मिलती है, सातिशय पुण्यानुबंधी पुण्य बँधता है। उस पुण्य के उदय से उत्तम शरीर, उत्तम गति, वैभव प्राप्त करता हुआ उसमें भोगासक्त नहीं होता है जिसके कारण वह आगे जाकर मुनि बनकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इसीलिये धर्म करता हुआ लौकिक कामना, लौकिक माँग नहीं करना चाहिये। एक कवि ने कहा है।

माँगन मरण समान है, मत माँगो कोई भीख।
माँगन से मरना भला यह सद्गुरु की सीख।
बिन माँगे मोती मिले माँगे मिले न भीख।।
बिन माँगे दूध बराबर माँगे मिले तो पानी।
कबीर वह है खून बराबर जामें खेंचातानी।

याचना करने वाला दीन, हीन भिखारी होता है या माँगने से वह दीन हीन भिखारी बन जाता है, परन्तु जो कर्त्तव्य करता हुआ नहीं माँगता है वह महान् प्रभु बन जाता है क्योंकि उसका कर्त्तव्य ही उसे समुचित फल दे देता है, जिस प्रकार दूर से वृक्ष की पूजा करने से वृक्ष की छाया नहीं मिल सकती है किन्तु वृक्षे के नीचे छाया में बैठने से छाया मिल सकती है। कहा भी है-

इति स्तुति देव! विधाय द्वैन्याद्वरं न याचे त्वमुपेक्षकोऽसि
छायातरूंसंश्रयतः स्वतः स्यात्कश्छायया याचितयात्मलाभः।। (38 विषापहार)

हे देव! इस प्रकार स्तुति करके मैं दीन भाव से वरदान नहीं माँगता। क्योंकि आप उपेक्षक है रागद्वेष से रहित हैं अथवा वृक्ष का आश्रय करने वाले पुरुष को छाया स्वयं प्राप्त हो जाती है। छाया की याचना से क्या लाभ है?

देहीति वचनं श्रुत्वा देहस्थाः पंचदेवताः।
मुखान्निर्गत्य गच्छन्ति श्री ही-धी-धृति कीर्तयः।।

अर्थात् देहि इस वचन को सुनकर शोभा, लज्जा, बुद्ध, धैर्य और कीर्ति ये शरीर रूप भवन में रहने वाले पाँच देवता देहि इस वचन के साथ ही मुख से निकलकर चले जाते हैं। अतएव ऐसी याचना का परित्याग करना ही योग्य है।

परमाणोः परं नाल्पं नभसो न महात्परम्।

इति ब्रुवन् किमद्राक्षीन्नमौ दीनाभिमानिनौ।। (152) आत्मानुशासनम्

परमाणु से दूसरा कोई छोटा नहीं है और आकाश से दूसरा कोई बड़ा नहीं है, ऐसा कहलाने वाले क्या दीन और अभिमानी मनुष्यों को नहीं देखा है?

याचितुगौरवं दातुर्मन्ये संक्रान्तमन्यथा।

तदवस्थौ कथं स्यातामेतौ गुरुलघू तदा।। (153)

याचक पुरुष का गौरव दाता के पास चला जाता है, ऐसा मैं मानता हूँ। यदि ऐसा न होता तो फिर उस समय देने रूप अवस्था से संयुक्त दाता तो गुरु और ग्रहण करने रूप अवस्था से सयुंक्त याचक लघु (क्षुद्र) कैसे दिखता? अर्थात् ऐसे नहीं दिखने चाहिए थे।

अधो जिघृक्षवो यान्ति यान्त्यूर्ध्वमजिघृक्षवः।

इति स्पष्टं वदन्तौ वा नामोन्नामौ तुलान्तयोः।। (154)

तराजू के दोनों ओर क्रम से होने वाले नीचापन और ऊँचापन स्पष्टतया यह प्रगट करता है कि लेने की इच्छा करने वाले प्राणी नीचे और न लेने की इच्छा करने वाले प्राणी ऊपर जाते हैं।

निर्विकल्प मेरा स्वरूप है, सुनना-सुनाना अतः दोनों से परे।
सुनना व सुनाना दोनों उन्मत्त चेष्टित है मैं तो इन दोनों से परे।
समीक्षाः
अन्तरात्मा विचार करता है, मैं तो शुद्ध-बुद्ध अमूर्तिक हूँ।
अतएव वार्तालाप मेरा नहीं है स्वभाव, क्योंकि मैं निर्विकल्प हूँ।। (2)
वार्तालाप में होता है विकल्प, विकल्प से होता है चित्त चंचल।
जिससे होता है कर्मबन्ध जिससे, मेरा स्वरूप न होता निर्मल।। (3)
शुद्ध रूप से मैं हूँ निर्विकल्प, राजा-प्रजा, छोटा-बड़ा से परे।
अपना-पराया-गुरु-शिष्य परे, समस्त विभाव भाव-व्यवहार परे।। (4)
ऐसा लक्ष्यनिष्ठ होता अन्तरात्मा, जिससे उनमें आती समता।
जिससे वे ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि परे, बनना चाहते हैं परमात्मा।। (5)
माइक-मंच व पाण्डाल होर्डिंग, विज्ञापन से ले T.V. प्रयोग।
धन-जन-मान-भीड़ प्रदर्शन, बोली आदि सभी का कैसे काम।। (6)

मोही जीव के भवतीर नहीं

मोह ण च्छिज्जइ अप्पा दारुण कम्मं करेइ बहुवारं।
णहु पावइ भवतीरं किं बहु दुक्खं वहेइ मुढमइ।। (67.रयण.)

पद्य- **हे मूढात्मा! मोह त्यागे बिन बहुत किया तू दारुण भाव।**
किन्तु न पाया तू संसार पार क्यों सह रहा है बहु दुःख।।

समीक्षा-मोह त्याग बिन दारुण तप-त्याग से भी नहीं मिलता है मोक्ष।
किन्तु कठोर तप-त्याग से केवल मिलते इह-पर-लोक में दुःख।।
अतएव आत्मश्रद्धा प्रज्ञा सहित यथा शक्ति तप-त्याग श्रेष्ठ।
अन्यथा आत्मश्रद्धा प्रज्ञा रहित कठोर तप-त्याग से मिले दुःख।।

सन्दर्भः

बंध के हेतु मिथ्यादर्शन आदि

स्युर्मिथ्यादर्शन ज्ञान-चारित्राणि समासतः।
बन्धस्य हेतवोऽन्यस्तु त्रयाणामेव विस्तरः।। (8) तत्वानु.

मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र ये तीनों संक्षेपरूप से बंध के कारण है। बंध के कारणरूप में अन्य जो कुछ कथन (कहीं उपलब्ध होता) है वह सब इन तीनों का विस्ताररूप है।

व्याख्या-यहाँ बंध के हेतु रूप में जिन मिथ्यादर्शनादिका का निर्देश किया गया है वे वे ही है जिनको स्वामी समन्तभद्र ने अपने समीचीन धर्मशास्त्र (रत्नकरंड) के सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि नामक तृतीय पद्य में प्रयुक्त यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः इस वाक्य के द्वारा बंध के कार्यरूप संसार का हेतु (मार्ग) बतलाया है। बंध का हेतु कहो चाहे संसार का हेतु कहो, दोनों का आशय एक ही है। प्रस्तुत पद्य में अन्यस्तु त्रयाणामेव विस्तरः यह वाक्य विशेषतः ध्यान में लेने योग्य है। इसके द्वारा यह सूचित किया गया है कि समयसार, तत्त्वार्थ सूत्रादि ग्रंथो में बंधहेतुविषयक जो कथन कुछ भिन्न तथा विस्तृत रूप में पाया जाता है वह सब इन तीनों हेतुओं के अन्तर्गत इनमें समाविष्ट-अथवा इन्हीं मूल हेतुओं के विस्तार को लिये हुए हैं। जैसे समयसार में एक स्थान पर मिथ्यात्व, अविरमण (अविरत), कषाय योग इन चारको बंध का कारण

बतलाया है; दूसरे स्थान पर चारों का उल्लेख करते हुए इनमें से प्रत्येक के संज्ञ-असंज्ञ (चेतन-अचेतन) ऐसे दो दो भेद करते हुए बहुविहभेया पद के द्वारा बहुत भेदों की भी सूचना की है; तीसरे स्थान पर राग, द्वेष तथा मोह को आस्रव रूप बन्ध का कारण निर्दिष्ट किया गया है और चौथे स्थान पर मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरत भाव और योगरूप अध्यवसानों को बंध के कारण ठहराया है। तत्त्वार्थ सूत्र में मिथ्यादर्शन, अवरति, प्रमाद, कषाय और योग इन पाँच को बंध के हेतु लिखा है। गोम्मटसार (कर्मकांड) में मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग नाम के वे ही चार बंध के कारण दिये हैं जिनका उल्लेख समयसार की 109 वीं गाथा में पाया जाता है। अंतर केवल इतना ही है कि समयसार में जिन्हें बंधकर्त्तार लिखा है उन्हीं को गोम्मटसार में आस्रवरूप निर्दिष्ट किया है। यह कोई वास्तविक अंतर नहीं है; क्योंकि मिथ्यात्वादि चारों प्रत्ययों में बंधत्व और आस्रवत्व की दोनों शक्तियाँ उसी प्रकार विद्यमान हैं जिस प्रकार अग्नि में दाहकत्व और पाचकत्व की दोनों शक्तियाँ पाई जाती हैं। मिथ्यात्वादि प्रत्यय प्रथम समय में ही आस्रव के हेतु है, द्वितीय समय में उन्हीं से बंध होता है और फिर आस्रव-बंध परंपरा कथंचित् चलती रहती है।

मिथ्यादर्शन का लक्षण

अन्यथाऽवस्थितेष्वर्थेष्वन्यथैव रुचिर्नृणाम्।
दृष्टिमोहोदयान्मोहो मिथ्यादर्शनमुच्यते।। (9)

मनुष्यों अथवा जीवों के दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से अन्यरूप से अवस्थित (यथावस्थित) पदार्थों में जो तद्भिन्नरूप से रुचि प्रतीत होती है वह मोह है और उसी को मिथ्यादर्शन कहा जाता है।

व्याख्या-यहाँ **'दृष्टिमोहोदयात्'** पद अपनी खास विशेषता रखता है और इस बात को सूचित करता है यदि दर्शन मोहनीय कर्म का उदय न हो तो अन्यथावस्थित पदार्थों में अन्यथा रूचि-प्रतीति के होने पर भी मिथ्यादर्शन नहीं होता। जैसे की श्रेणिक राजा को क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होने से उसके दर्शन मोहनीय कर्म का उदय नहीं बनता, फिर भी अपने पुत्र कुणिक (अजातशत्रु) के भाव को उसने अन्यथारूप में समझकर अन्यथा प्रवृत्ति कर डाली। इतने मात्र से वह मिथ्यादृष्टि अथवा मिथ्यादर्शन को प्राप्त नहीं कहा जाता; क्योंकि दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाले सम्यग्दर्शन का कभी अभाव नहीं होता।

(कुज्ञान V/S अज्ञान)

मिथ्यादर्शन का लक्षण और भेद

ज्ञानावृत्युदयादर्थेष्वन्यथाऽधिगमो भ्रमः।
अज्ञानं संशयश्चेति मिथ्याज्ञानमिदं त्रिधा।। (10)

व्याख्या-ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से अज्ञानभाव होता है और यहाँ अन्यथाज्ञान की बात कही गयी है, वह इस बात को सूचित करती है कि ज्ञानावरणीय कर्म के उदय के साथ दर्शन मोहनीय कर्म का उदय भी लगा हुआ है अथवा उसके संस्कारों को साथ में लिये हुए हैं। मिथ्याज्ञान दर्शन मोहरूप चक्रवर्ती राजा का आश्रित मंत्री है, यह बात आगे 12 वें पद्य में स्पष्ट की गयी है और इसलिए उसे मोह के संस्कारों से विहीन ग्रहण नहीं किया जा सकता और यही कारण है कि उसके भ्रम तथा संशय को साथ लेकर तीन भेद किये गये हैं, अन्यथा वह भेद अज्ञानरूप ही रहता। परस्पर विरुद्ध नाना कोटियों का स्पर्श करने वाले ज्ञान को संशय, विपरीत एक कोटि का निश्चय करने वाले ज्ञान को भ्रम (विपर्यय) और क्या है इस आलोचन मात्र ज्ञान को अज्ञान (अनध्यवसाय) कहते हैं। यथार्थ ज्ञान में ये तीनों दोष नहीं होते।

मिथ्याचारित्र का लक्षण

वृत्तमोहोदयाज्जन्तोः कषाय-वश-वर्तिनः।
योगप्रवृत्तिशुभा मिथ्याचारित्रमूचिरे।। (11)

व्याख्या-मोह के मुख्य दो भेद हैं-एक दर्शनमोहनीय और दूसरा चारित्रमोह। दर्शन मोह के उदय से जिस प्रकार मिथ्यादर्शन की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार चारित्र मोह के उदय से मिथ्याचारित्र की सृष्टि बनती है। उस मिथ्याचारित्र का स्वरूप यहाँ मन-वचन-काय में किसी योग अथवा योगों की अशुभ प्रवृत्ति को बतलाया है और उसका स्वामी उस जीव को निर्दिष्ट किया है जो चारित्रमोह के उदयवश उस समय किसी भी कषाय अथवा नोकषाय के वशवर्ती होता है। काय, वचन तथा मन की क्रिया रूप जो योग यहाँ विवक्षित है उसके दो भेद हैं-एक शुभयोग और दूसरा अशुभोपयोग। शुभपरिणामों के निमित्त से होने वाला योग शुभ और अशुभ परिणामों के निमित्त से होने वाला योग अशुभ कहलाता है। अशुभ योग की प्रवृत्ति अशुभ होती

है और उसी अशुभ प्रवृत्ति को यहाँ मिथ्याचारित्र कहा गया है। हिंसा, चोरी और मैथुनादि में प्रवृत्त हुआ शरीर अशुभ काययोग है। असत्य, कटुक तथा असभ्य भाषणादि के रूप में प्रवृत्त हुआ वचन अशुभ वाग्योग है। हिंसादिक की चिंता तथा ईर्ष्या-असूयादि के रूप में प्रवृत्त हुआ मन अशुभ-मनोयोग है। इसी प्रकार योगों की यह अशुभ प्रवृत्ति, जो कृत-कारित-अनुमोदन के रूप में होती है, पापास्रव की हेतुभूत और इसी से मिथ्याचारित्र कहलाती है। दूसरे शब्दों में मन, वचन, काय से, करने-कराने तथा अनुमोदना के द्वारा जो हिंसादिक पापक्रियाओं का आचरण अथवा अनुष्ठान है वह मिथ्याचारित्र है, जो सम्यग्चारित्र के उस लक्षण के विपरीत है। यह सर्व कथन व्यवहारनय की दृष्टि से है। निश्चयनय की दृष्टि से तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान से रहित और चारित्र मोह से अभिभूत योगों की शुभ प्रवृत्ति भी शुभ कर्मबंध के हेतु मिथ्याचारित्र में परिगणित है; क्योंकि सम्यक्चारित्र कर्मादान निमित्त-क्रिया के त्याग रूप होता है।

बंध हेतुओं में चक्री और मंत्री

बन्धहेतुषु सर्वेषु मोहश्चक्रीति कीर्तितः।
मिथ्याज्ञानं तु तस्यैव सचिवत्वमशिश्रियत्।। (12)

बंध के संपूर्ण हेतुओं में मोह चक्रवर्ती (राजा) **कहा गया है और मिथ्याज्ञान इसी के मंत्रित्व को आश्रय किये हुए है**–मोहराजा का आश्रित मंत्री है।

व्याख्या–यहाँ मिथ्यादर्शन रूप मोह को चक्रवर्ती बतलाकर बंध के हेतुओं में उसकी सर्वोपरि प्रधानता का निर्देश किया गया है और वह ठीक ही है; क्योंकि दर्शनमोह दृष्टिविकार को उत्पन्न करता है और यह दृष्टिविकार ही ज्ञान को मिथ्याज्ञान और चारित्र को मिथ्याचारित्र बनाता है। मोहाश्रित होने से स्वतंत्रतापूर्वक मंत्री पद का कोई काम करने अथवा मोहराजा को उसकी कुप्रवृत्तियों के विरुद्ध प्रतिकूल अच्छी सलाह देने में समर्थ नहीं होता।

सदा उसके अनुकूल ही बना रहता है और इसी से मिथ्याज्ञान नाम पाता है। मिथ्याज्ञान मोह चक्रीका ही मंत्री है-अन्यका नहीं, यह बात तस्य पद के साथ एव शब्द के प्रयोग द्वारा सूचित की गयी है।

मोहचक्री के सेनापतिः ममकार-अहंकार

ममाऽहङ्कारमानामानौ सेनान्यौ तौ च तत्सुतौ।
यदायत्तः सुदुर्भेदः मोह-व्यूहः प्रवर्तते।। (13)

'उस मोह के जो दो पुत्र ममकार और अहंकार नाम के हैं वे दोनों उस मोह के सेनानायक है, जिनके अधीन मोहव्यूह-मोहचक्रीका सैन्यसंनिवेश-बहुत ही दुर्भेद बना हुआ है।'

व्याख्या-मोह के गढ़ को यदि जीतना है तो ममकार और अहंकार को पहले जीतना परमावश्यक है। इनके कारण ही मोहशत्रु दुर्जेय बना हुआ है और वह संसारी प्राणियों को अपने चक्कर में फँसाता, बाँधता और दुःख देता रहता है।

ममकार और अहंकार दोनों भाई एक दूसरे के पोषक है। इनका स्वरूप अगले पद्यों में बतलाया गया है और साथ ही यह भी दर्शाया गया है कि कैसे इनके चक्रव्यूह में फँसकर यह जीव संसार-परिभ्रमण करता रहता है।

ममकार का लक्षण

शश्वदनात्मीयेषु स्वतनु-प्रमुखेषु कर्मजनितेषु।
आत्मीयाऽभिनिवेशो ममकारो मम यथा देहः।। (14)

सदा अनात्मीय-आत्मा रूप से बहिर्भूत-**ऐसे कर्मजनित स्वशरीरादिक में जो आत्मीय अभिनिवेश है** उन्हें अपने आत्मजन्य समझने रूप जो अज्ञानभाव है **उसका नाम ममकार है; जैसे मेरा शरीर।**

व्याख्या-जो कभी आत्मीय नहीं, आत्मद्रव्य से जिनकी उत्पत्ति नहीं और न आत्मा के साथ जिनका अविनाभाव-जैसे कोई गाढ़ संबंध है; प्रत्युत इसके जो कर्मनिमित्त है, आत्मा से भिन्न स्वभाव रखने वाले पुद्गल परमाणुओं द्वारा रचे गये है; ऐसे पर पदार्थों को जो अपना मान लेता है उसका नाम ममकार है; जैसे मेरा यह शरीर, यह मेरा घर है, यह मेरा पुत्र, यह मेरी स्त्री और यह मेरा धन इत्यादि। क्योंकि ये सब वस्तुएँ वस्तुतः आत्मीय नहीं है, आत्माधीन नहीं है, अपने-अपने कारण-कलाप के अधीन हैं, अपने आत्मद्रव्य से भिन्न हैं और स्पष्ट भिन्न होती हुई दिखाई पड़ती है। शरीर आदि से भिन्न होते समय आत्मा का उन पर कोई वश नहीं चलता;

जबकि वस्तुतः आत्मीय होने पर उन्हें आत्माधीन होना और सदा आत्मा के साथ रहना चाहिए था।

यह सब कथन अगले पद्य में प्रयुक्त हुए **'परमार्थनयेन'** पद की अपेक्षा रखता हुआ निश्चय की दृष्टि से है। व्यवहारनय की दृष्टि से मेरा शरीरादि कहने में अवश्य आता है, परंतु जो व्यवहार निश्चयनय के ज्ञान से बहिर्भूत है, निश्चय की अपेक्षा न रखता हुआ कोरा व्यवहार है अथवा व्यवहार को ही निश्चय समझ लेने के रूप में है वह भारी भूल भरा तथा वस्तुतत्त्व के विपर्यासको लिये हुए है। प्रायः ऐसा ही हो रहा है और इसीलिए निश्चय की दृष्टि को स्पष्ट करने की जरूरत होती है। इस व्यावहारिक ममतारूपी घोर अंधकार के वश जिसके ज्ञान की स्थिति अस्तव्यस्त हो रही है ऐसा प्राणी सच्चे सुखस्वरूप अपने हित-साधन से दूर भागता रहता है; जैसे कि श्री अमितगति आचार्य ने अपने निम्न वाक्य में व्यक्त किया है-

माता में मम गेहिनी मम गृहं मे बान्धवा मेऽङ्गजाः
तातो मे मम सम्पदो मम सुखं में सज्जना में जनाः।
इत्थं घोरममत्व-तामस-वश-व्यस्ताऽस्तबोधस्थितिः
शर्माधानविधानतः स्वहिततः प्राणी सनीस्रस्यते।। तत्त्वभावना (24)

अहंकार का लक्षण

ये कर्मकृता भावाः परमार्थनयेन चात्मनो भिन्नाः।
तत्राऽऽत्माभिनिवेशोऽहंकारोऽहं यथा नृपतिः।। (15)

'कर्मों के द्वारा निर्मित जो पर्यायें है और निश्चयनय से आत्मा से भिन्न हैं उनमें भी आत्मा का जो मिथ्या आरोप है-उन्हें आत्मा समझने रूप अज्ञानभाव है-**उसका नाम अहंकार है; जैसे मैं राजा हूँ।'**

व्याख्या-यहाँ परमार्थनय का अर्थ निश्चय नय से है, जिसे द्रव्यार्थिकनय भी कहा गया है, उसकी दृष्टि से जितनी भी कर्मकृत पर्यायें वे सब आत्मा से भिन्न हैं-आत्मरूप नहीं है-उन्हें आत्मरूप समझ लेना ही अहंकार है; जैसे मैं राजा, मैं रंक, मैं गोरा, मैं काला, मैं पुरुष, मैं स्त्री, मैं उच्च, मैं नीच, मैं सुरूप, मैं कुरूप, मैं पंडित, मैं मूर्ख, मैं रोगी, मैं निरोगी, मैं सुखी, मैं दुःखी, मैं मनुष्य, मैं पशु, मैं निर्बल, मैं सबल, मैं बालक, मैं युवा, मैं वृद्ध इत्यादि। ये सब निश्चयनय से आत्मा के रूप नहीं, इन्हें

दृष्टिविकार के वश आत्मरूप मान लेना अहंकार है। यह कर्मकृत पर्याय को आत्मा मान लेने रूप अहंकार की एक व्यापक परिभाषा है। इसमें किसी पर्याय विशेष को लेकर गर्व अथवा मदरूप जो अहंभाव है वह सब सम्मिलित है। निश्चय-सापेक्ष्य व्यवहारनय की दृष्टि से अपने को राजादिक कहा जा सकता है; परंतु व्यवहार निरपेक्ष निश्चय की दृष्टि से आत्मा को राजादिक मानना अहंकार है। इसी तरह देह को आत्मा मान लेना भी अहंकार है।

ममकार और अहंकार में मोह-व्यूह का सृष्टिक्रम

मिथ्याज्ञानान्वितान्मोहान्ममाहङ्कारसम्भवः।
इमकाभ्यां तु जीवस्य रागो द्वेषस्तु जायते।। (16)

'मिथ्याज्ञानयुक्त मोह से जीव के ममकार और अहंकार का जन्म होता है और इन दोनों से (ममकार-अहंकार से) राग तथा द्वेष उत्पन्न होता है।'

व्याख्या-यहाँ ममकार और अहंकार को राग-द्वेष का जनक बतलाया है उसका यह आशय नहीं कि दोनों मिलकर राग-द्वेष उत्पन्न करते हैं या एक राग को तथा दूसरा द्वेष को उत्पन्न करता है; बल्कि यह आशय है कि दोनों अलग-अलग राग-द्वेष के उत्पादक है-ममकार से जिस प्रकार राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार अहंकार से भी होती है।

ताभ्यां पुनः कषायाः स्यूर्नोकषायाश्च तन्मयाः।
तेभ्यो योगा प्रवर्तन्ते ततः प्राणिवधादयः।। (17)

फिर उन (राग-द्वेष) दोनों से कषायें-क्रोध, मान, माया, लोभ और नोकषायों हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, तथा कामवासनाएँ **उत्पन्न होती हैं, जो कि राग-द्वेषरूप हैं। उन कषायों तथा नोकषायों से योग प्रवृत्त होते हैं**-मन, वचन, तथा काय की क्रियाएँ बनती हैं **और उन योगों के प्रवर्तन से प्राणिवधादिरूप हिंसादिक कार्य होते हैं।'**

व्याख्या-माया, लोभ, हास्य, रति और स्त्री-पुरुषादि वेदरूप कामवासनाएँ ये पाँच (दो कषायें तथा तीन नोकषाएँ) राग-द्वेषरूप हैं। क्रोध, मान, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा (ग्लानि) ये छह (दो कषायें तथा चार नोकषायें) द्वेषरूप हैं। मन-वचन-काय की क्रियारूप योगों की प्रवृत्ति शुभ और अशुभ ऐसे दो प्रकार की होती है। शुभ

योगप्रवृत्ति के द्वारा अच्छे-पुण्यकार्य और अशुभ योग प्रवृत्ति के द्वारा बुरे-पापकार्य होते हैं और इसलिए प्राणिवधादयः पद में प्रयुक्त हुआ बहुवचनांत आदि शब्द यहाँ झूठ, चोरी, मैथुन, कुशील और परिग्रह जैसे पापकार्यों का वाचक है, वहाँ अहिंसा-दया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे पुण्यकार्य का भी वाचक है।

तेभ्यःकर्माणि बध्यन्ते ततः सुगति-दुर्गति।

तत्र कायाः प्रजायन्ते सहजानीन्द्रियाणि च।। (18)

उन प्राणिवधादिक कार्यों से कर्म बँधते हैं-जिनके शुभ तथा अशुभ ऐसे दो भेद हैं। **कर्मों के बंधन से सुगति तथा दुर्गति की प्राप्ति होती है,** अच्छे शुभ कर्मों के बंधन से (देव तथा मनुष्य भव की प्राप्ति रूप) सुगति और बुरे अशुभ कर्मों के बंधन से (नरक तथा तिर्यंच योनिरूप) दुर्गति मिलती है। **कर्मों के वश उस सुगति या दुर्गति में जहाँ भी जीव को जाना होता है वहाँ शरीर उत्पन्न होते हैं और शरीरों के साथ सहज ही इंद्रियाँ भी उत्पन्न होती हैं**-चाहे उनकी संख्या शरीर में कम से कम एक ही क्यों न हो। यहाँ जिन कर्मों के बंधन का उल्लेख है, उनकी ज्ञानावरणादिरूप मूलप्रकृतियाँ आठ, मतिज्ञानावरणादिरूप उत्तरप्रकृतियाँ एक सौ अड़तालीस और फिर मतिज्ञानावरणादि के भेद-प्रभेद होकर उत्तरोत्तर प्रकृतियाँ असंख्य हैं। इन सब कर्म प्रकृतियों में कुछ शुभरूप हैं, जिन्हें पुण्य प्रकृतियाँ कहते हैं और शेष अशुभरूप हैं ,जिन्हें पापप्रकृतियाँ कहते हैं। इन सब कर्मों का, कर्मों से होने वाली चार प्रकार की गतियों का, गतियों में प्राप्त होने वाले औदारिक वैक्रियिकादि पाँच प्रकार के शरीरों का और शरीरों के साथ संबद्ध स्पर्शन-रसनादि पाँच प्रकार की इंद्रियों का स्वरूपादिविषयक विस्तृत वर्णन तत्त्वार्थसूत्र, उसके टीकाग्रंथ, षट्खंडागम कर्मप्रकृति, पंचसंग्रह और गोम्मटसारादि सिद्धांत ग्रंथों से जानना चाहिए।

मात्र भेष/लिंग से कल्याण नहीं

धरियउ बाहिरलिंगं परिहरियउ बाहिरक्खसोक्ख हि।

करियउ किरियाकम्म मरिउ जमिउ बहिरप्पुजिउ।। (68) रयण.

पद्य- बहिरात्मा (जीव) केवल बाह्य लिंग धारण कर, बाह्य इन्द्रिय सुख ही त्यागे

बाह्य क्रिया कर्म ही करके जन्म-मरण को ही भोगते।।

समीक्षा- आत्मा श्रद्धान व समता-शान्ति बिन जो करते हैं बाह्य त्याग
उनके बाह्य क्रियाकर्म केवल बनते जन्म-मृत्यु के कारक।।
इससे शिक्षा मिले भले शक्ति अनुसार हो बाह्य त्याग।
किन्तु आत्म श्रद्धान-प्रज्ञा सहित-शान्ति से होता आत्मकल्याण।।

न लोकाः पारमार्थिक

(लौकिक से परे आध्यात्मिक)

(चालः-दुनिया में रहना है तो..., सायोनारा....तुम दिल की...)
लोकानुगतिक से चलते लोग...नहीं चलते पारमार्थिक...
भेड़-भेड़िया चाल चलते लोग...नहीं चलते गौ-हंस के सम...(ध्रुव)...
गर्व तो करते, न गौरव करते...गौरव योग्य भाव न काम करते...
दिखावा करते...दर्शन नहीं करते...आत्मदर्शन न सत्यदर्शन करते...
पर दोष देखते निन्दा करते...स्व-पर दोषों से शिक्षा न गहते...
प्रशंसा चाहते प्रशंसा न करते...प्रशंसनीय भाव-काम न करते...(1)
ख्याति-पूजा-लाभ सदा चाहते...समता शान्ति संतुष्टि नहीं सेवते...
सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि चाहते...दया-दान सेवादि नहीं करते...
अहंकार ममकार सदा करते...स्वाभिमान-सोऽहं भाव नहीं जानते...
उदार-सहिष्णु न पावन होते...अष्ट मद से स्वयं को श्रेष्ठ बताते...(2)
दिखावा-आडम्बर का धर्म करते...संकीर्ण-कट्टर व स्वार्थी होते...
सत्यनिष्ठा-शुचिता रहित होते...श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-धार्मिक स्वयं को जताते...
परस्पर भेद-भाव वैरत्व करते...विश्व शांति का नारा लगाते...
गोमुख व्याघ्र सम काम करते...बगुला भगत सम भाव रखते...(3)
आधुनिक भाव व्यवहार न करते...आधुनिक ज्ञान-विज्ञान रहित होते...
फैशन-व्यसनों में भेड़चाल चलते...विदूषक समान स्वांग रचते...
संस्कार-सदाचार रहित होते...साक्षर-राक्षस सम चाल चलते...
सदाचारी शालीन सौम्य न होते...नीली लोमड़ी सम व्यवहार करते...(4)

मृगमरीचिका व गपोडशंख सम...दूर से ही लगे अविचारित रम्य...
इससे परे बने परमार्थिक लोग...इसी हेतु काव्य बनाये 'कनक'...(5)

धम्मेण होइ लिंग, ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ति।
जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो।। (2) लिंगपा.

धर्म से लिंग होता है, लिंगमात्र धारण करने से धर्म की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए भावको धर्म जानो, भावरहित लिंग से तुझे क्या कार्य है?

भावार्थ-लिंग अर्थात् शरीर का वेष धर्म से होता है। जिसने भाव के बिना मात्र शरीर का वेष धारण किया है उसके धर्म की प्राप्ति नहीं होती, इसलिए भाव ही कर्म है। भाव के बिना मात्र वेष कार्यकारी नहीं है।

जो पावमोहिदमदी, लिंग घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
उवहसइ लिंगि भावं, लिंगं णासेदि लिंगीणं।। (3)

जिसकी बुद्धि पाप से मोहित हो रही है ऐसा जो पुरुष जिनेन्द्र देव के लिंग को नग्न दिगंबर वेष को ग्रहण कर लिंगी के यथार्थ भावकी हँसी करता है वह सच्चे वेषधारियों के वेष को नष्ट करता है अर्थात् लजाता है।

णच्चदि गायदि तावं, वायं वाएदि लिंगरूवेण।
सो पावमोहिदमदी, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। (4)

जो मुनि लिंग धारण कर नाचता है, गाता है अथवा बाजा बजाता है वह पाप से मोहितबुद्धि पशु है मुनि नहीं।

सम्मुहदि रक्खेदि य, अट्टं झाएदि बहुपयत्तेण।
सो पावमोहिदमदी, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। (5)

जो बहुत प्रकार के प्रयत्नों से परिग्रह को इकट्ठा करता है, उसकी रक्षा करता है तथा आर्तध्यान करता है वह पाप से मोहितबुद्धि पशु हैं, मुनि नहीं।

कलह वाद जूवां णिच्चं बहुमाणगव्विओ लिंगी।
वच्चदि णरयं पावो, करमाणो लिंगिरूवेण।। (6)

जो पुरुष मुनिलिंग का धारक होकर भी निरंतर अत्यधिक गर्व से युक्त होता हुआ कलह करता है, वादविवाद करता है अथवा जुवा खेलता है वह

चूँकि मुनिलिंग से ऐसे कुकृत्य करता है अतः पापी है और नरक जाता है।

पावोपहदिभावो, सेवदि य अबंभु लिंगिरूवेण।

सो पावमोहिदमदी, हिंडदि संसारकांतारे।। (7)

पाप से जिसका यथार्थभाव नष्ट हो गया है ऐसा जो साधु मुनिलिंग धारण कर अब्रह्मका सेवन करता है वह पाप से मोहितबुद्धि होता हुआ संसार रूप अटवी में भ्रमण रहता है।

दंसणणाणचरित्ते, उवहाणे जइ ण लिंगरूवेण।

अट्ट झायदि झाणं, अणंतसंसारिओ होदि।। (8)

जो मुनिलिंग धारण कर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र को उपधान अर्थात् आश्रय नहीं बनाता है तथा आर्तध्यान करता है वह अनंतसंसारी होता है।

जो जोडदि विव्वाहं, किसिकम्मवणिज्जजीवघादं च।

वच्चदि णरयं पावो, करमाणो लिंगिरूवेण।। (9)

जो मुनिका लिंग रखकर भी दूसरों के विवाहसंबंध जोड़ता है तथा खेती और व्यापार के द्वारा जीवों का घात करता है वह चूँकि मुनिलिंग के द्वारा इस कुकृत्य को करता है अतः पापी है और नरक जाता है।

चोराण मिच्छवाण य, जुद्ध विवादं च तिव्वकम्मेहिं।

जंतेण दिव्वमाणो, गच्छदि लिंगी णरयवासं।। (10)

जो लिंगी चोरों तथा झूठ बोलने वालों से युद्ध और विवाद कराता है तथा तीव्रकर्म खरकर्म अर्थात् हिंसावाले कार्यों से यंत्र अर्थात् चौपड़ आदि से क्रीड़ा करता है वह नरकवास को प्राप्त होता है।

दंसणणाणचरित्ते, तवसंजमणियमणिच्चकम्मम्मि।

पीडयदि वट्टमाणो, पावदि लिंगी णरयवासं।। (11)

जो मुनिवेषी दर्शन, ज्ञान, चारित्र तप तथा संयम नियम और नित्य कार्यों में प्रवृत्त होता हुआ दूसरे जीवों को पीड़ा पहुँचाता है वह नरकवास को प्राप्त होता है।

गिण्हदि अदत्तदाणं, परणिंदा वि य परोक्खदूसेहिं।

जिणलिंगं धारंतो, चोरेण व होइ सो समणो।। (14)

जो मनुष्य जिनलिंग को धारण करता हुआ भी बिना दी हुई वस्तु को ग्रहण करता है तथा

परोक्ष में दुषण लगा-लगाकर दूसरे की निंदा करता है वह चोर के समान है, साधु नहीं है।

बंधे णिरओ संतो, सस्सं खंडेदि तह य वसुहं पि।

छिंददि तरुगण बहुसो, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। (16)

जो किसी के बंध में लीन होकर अर्थात् उसका आज्ञाकारी बनकर धान कूटता है, पृथिवी खोदता है और वृक्षों के समूह को छेदता है वह पशु है, मुनि नहीं।

भावार्थ-यह कथन साधुओं की अपेक्षा है। जो साधु वन में रहकर स्वयं धान तोड़ते है, उसे कूटते हैं, अपने आश्रम में वृक्ष लगाने आदि के उद्देश्य से पृथिवी खोदते हैं तथा वृक्ष लता आदि को छेदते है वे पशुके तुल्य है, उन्हें हिंसा पाप की चिंता नहीं, ऐसा साधु नहीं कहला सकता।

रागो (रागं) करेदि णिच्चं, महिलावग्गं परं च दूसेदि।

दंसणणाणविहीणो, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। (17)

जो स्त्रियों के समूह के प्रति निरंतर राग करता है, दूसरे निर्दोष प्राणियों को दोष लगाता है तथा स्वयं दर्शन-ज्ञान से रहित है वह पशु है, साधु नहीं।

पव्वज्जहीणगहिणं णेहं सीसम्मि वट्टदे बहुसो।

आयारविणयहीणो, तिरिक्खजोणी ण सो समणो।। (18)

जो दीक्षा से रहित गृहस्थ शिष्य पर अधिक स्नेह रखता है तथा आचार और विनय से रहित है वह तिर्यच है साधु नहीं।

भावार्थ-जो कोई साधु अपने गृहस्थ शिष्य पर अधिक स्नेह रखते हैं, अपने पद का ध्यान न कर उसके घर जाते हैं, सुख-दुःख में आत्मीयता दिखाते है तथा स्वयं मुनि के योग्य आचार तथा पूज्य पुरुषों के विनय से रहित होते हैं। आचार्य कहते हैं कि वे मुनि नहीं है, किंतु पशु हैं।

एवं सहिओ मुणिवर, संजदमज्झम्मि वट्टदे णिच्चं।

बहुलं पि जाणमाणो, भावविणट्ठो ण सो समणो।।

हे मुनिवर! ऐसी खोटी प्रवृत्तियों से सहित मुनि यद्यपि संयमी जनों के बीच में रहता है और बहुत ज्ञानवान् भी है तो वह भाव से विनष्ट अर्थात् भावलिंग से रहित है-यथार्थ मुनि नहीं है।

मिथ्यात्व के नाश बिना मोक्ष नहीं

मोक्खणिमित्तं दुक्खं वहेइ परलोयदिट्ठितणुदिट्ठि।
मिच्छाभाव ण च्छिज्जइ किं पावइ मोक्खसोक्खं हि।।। (69) रयण.

पद्य- **मोक्ष निमित्त दुःख सहन करे परलोक (स्वर्ग) व शरीर में दृष्टि।**
किन्तु मिथ्याभाव नहीं त्यागे क्या पायेगा मोक्ष शान्ति (सुख)।।

समीक्षा-मिथ्याभाव त्यागे बिना मोक्ष न मिले दुःख सहने से।
नारकी सम केवल कष्ट सहन मात्र से ही नहीं मिले स्वर्ग-मोक्ष।

बामी को पीटने से क्या लाभ?

ण हु दंडइ कोहाइं देहं दंडेइ कहं खवइ कम्मं।
सप्पो किं मुवइ तहा वम्मिउ मारिउ लोए।। (70) रयण.

पद्य- **क्रोधादि को दंडित किये बिना देह दण्ड से न कर्म क्षय।**
बामी को मारने मात्र से सर्प क्या मरेगा लोक में।।

समीक्षा-कर्म क्षय होता है समता शान्ति व आत्मविशुद्धि से।
इसके अतिरिक्त केवल देह दण्ड से न होता कर्मक्षय कभी।।

इससे शिक्षा मिले भाव विशुद्धि ही मोक्ष के कारण।
इस हेतु ही धर्म करणीय केवल देह दण्ड न करणीय।।

सन्दर्भः

दंसणमूलो धम्मो, उपइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।
त सोऊण सकण्णे, दंसणहीणो ण वंदिव्वो।। (2)

श्री जिनेन्द्र भगवान् ने शिष्यों के लिए दर्शनमूल धर्म का उपदेश दिया है इसलिए इसे अपने कानों से सुनो। जो सम्यग्दर्शन रहित है वह वंदना करने योग्य नहीं है।

दसंणभट्ठा भट्ठा, दंसणभट्ठस्य णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झति चरियभट्ठा, दंसणभट्ठा ण सिज्झंति।। (3)

जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं वे ही वास्तव में भ्रष्ट है, क्योंकि सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट मनुष्य को मोक्ष प्राप्त नहीं होता। जो सम्यक्चारित्र से भ्रष्ट हैं वे सिद्ध हो जाते हैं परंतु जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है वे सिद्ध नहीं हो सकते।

सम्मत्तरयणभट्ठा, जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं।

आराहणाविरहिया, भमंति तत्थेव तत्थेव।। (4)

जो सम्यक्त्वरूपी रत्न से भ्रष्ट हैं वे बहुत प्रकार के शास्त्रों को जानते हुए भी आराधनाओं से रहित होने के कारण उसी संसार में भ्रमण करते रहते हैं।

सम्मत्तविरहियाणं, सुट्ठु वि उग्गं तवं चरंताणं।

ण लहंति बोहिलाहं, अवि वाससहस्सकोडीहिं।। (5)

जो मनुष्य सम्यग्दर्शन रहित हैं वे भले ही करोड़ों वर्षो तक उत्तमतापूर्वक कठिन तपश्चरण करें तो भी उन्हें रत्नत्रय प्राप्त नहीं होता है।

सम्मत्तणाणदंसणबलवीरियवड्ढमाण जे सव्वे।

कलिकुलसपावरहिया, वरणाणी होंति अइरेण।। (6)

जो पुरुष सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, बल और वीर्य से वृद्धि को प्राप्त हैं तथा कलिकाल संबंधी मलिन पाप से रहित हैं वे सब शीघ्र ही उत्कृष्ट ज्ञानी हो जाते हैं।

सम्मत्तसलिलपवहे, णिच्चं हियए पवट्टए जस्स।

कम्मं वालुयवरणं, बंधुच्चियं णासए तस्स।। (7)

जिस मनुष्य के हृदय में सम्यक्त्वरूपी जल का प्रवाह निरंतर प्रवाहित होता है उसका पूर्वबंध से संचित कर्मरूपी बालूका आवरण नष्ट हो जाता है।

जे दंसणेसु भट्ठा, णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठा य।

ऐदे भट्ठविभट्ठा, सेसं पि जणं विणासंति।। (8)

जो मनुष्य दर्शन से भ्रष्ट हैं, ज्ञान से भ्रष्ट हैं और चारित्र से भ्रष्ट हैं वे भ्रष्टों मे भ्रष्ट हैं अत्यंत भ्रष्ट हैं तथा अन्य जनों को भी भ्रष्ट करते हैं।

जो कोवि धम्मसीलो, संजमतवणियमजोयगुणधारी।

तस्स य दोस कहंता, भग्गा भग्गत्तणं दिंति।। (9)

जो कोई धर्मात्मा संयम, तप, नियम और योग आदि गुणों का धारक है उसके दोषों को कहते हुए क्षुद्र मनुष्य स्वयं भ्रष्ट है तथा दूसरों को भी भ्रष्टता प्रदान करते हैं।

जह मूलिम्म विणट्ठे, दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ढी।

तह जिणदंसणभट्ठा, मूलविणट्ठा ण सिज्झंति।। (10)

जैसे जड़के नष्ट हो जाने पर वृक्ष के परिवार की वृद्धि नहीं होती वैसे ही जो पुरुष जिनदर्शन से भ्रष्ट हैं वे मूल से विनष्ट हैं उनका मूल धर्म नष्ट हो चुका है, अतः ऐसे जीव सिद्ध अवस्था को प्राप्त नहीं हो पाते हैं।

जह मूलाओ खंधो, साहापरिवार बहुगुणो होई।
तह जिणदंसणमूलो, णिद्दिट्ठो मोक्खमग्गस्स।। (11)

जिस प्रकार वृक्ष की जड़ से शाखा आदि परिवार से युक्त कई गुणा स्कंध उत्पन्न होता है उसी प्रकार मोक्षमार्ग की जड़ जिनदर्शन-जिनधर्म का श्रद्धान है ऐसा कहा गया है।

आत्मविशुद्धि बिन बाह्य तप त्याग संयम से मोक्ष नहीं

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः-आत्मशक्ति से...)
केवल बाह्य तप त्याग संयम से नहीं होता आत्मकल्याण।
जब तक न होती आत्मविशुद्धि आत्म श्रद्धान युक्त आत्म ज्ञान।। (1)
राग द्वेष मोह क्रोध व ईर्ष्या तृष्णा घृणादि रहित भाव।
होती है आत्म विशुद्धि ख्याति पूजा लाभ वर्चस्व रहित भाव।। (2)
आत्मश्रद्धान होता जब होता है श्रद्धान स्व शुद्धात्मा (का)
मैं हूँ निश्चय से शुद्ध-बुद्ध आनन्द स्वरूप परमात्मा।। (3)
किन्तु अनादि कर्म के कारण बना हूँ अशुद्ध संसारी आत्मा।
अभी मैं स्व-आत्म साधना से लक्ष्य बनाया हूँ बनना परमात्मा।। (4)
इस हेतु होता है देवशास्त्र गुरु व द्रव्य-तत्त्व का भी सही श्रद्धान।
तदनुकूल होता है सम्यग्ज्ञान, निश्चय-व्यवहार नय प्रमाण।। (5)
दोनों से सहित होता है श्रावक या श्रमण धर्म पालन।
शक्ति हो तो श्रमण धर्म अन्यथा पालन होता श्रावक धर्म।। (6)
आत्म श्रद्धान ज्ञान चारित्र बिना बाह्य तप त्याग संयम से न होता मोक्ष।
यथा बीज के बिन केवल मृदाजल वायु सूर्य किरण से न होता वृक्ष।। (7)
आत्मविशुद्धि से ही होते हैं कर्म संवर-निर्जरा व मोक्ष।

अतएव आत्म विशुद्धि ही मोक्ष प्राप्ति हेतु प्रमुख कारण।। (8)
आत्म विशुद्धि बिन होता है 'बाह्यतप' या मिथ्या साधना।
यह है सर्वज्ञ द्वारा कथित सत्य 'कनक' करे आत्म साधना।। (9)

स्व-आत्मश्रद्धान ज्ञानाचरण करूँ अन्यथा संयम-तप-श्रुत युक्त भी व्यर्थ

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः-मन रे! तू काहे...सोयानारा...)
आत्मन्! तू स्व-श्रद्धान/(ज्ञान) कर ऽऽऽ
स्व श्रद्धान व ज्ञानानुसार...चारित्र भी पालन कर ऽऽऽ (ध्रुव)
इस हेतु कर श्रद्धान ज्ञान...देव शास्त्र-गुरु का भी ऽऽऽ
द्रव्य-तत्त्व पदार्थ सहित...निश्चय व्यवहारनय से भी ऽऽऽ
स्व-आत्म कल्याण प्रधान ही ऽऽऽ आत्मन्। (1)
यथा बीज बिना न सम्भव है...अकुंर से वृक्ष-फूल-फल ऽऽऽ
अणु बिना यथा न सम्भव है...स्कन्ध से ले ग्रह-नक्षत्र ऽऽऽ
जल-वायु-मृदा से ले शरीर ऽऽऽ आत्मन् (2)
तथाहि तुझे स्व-आत्म श्रद्धान बिन-न होगा स्व-आत्म ज्ञान ऽऽऽ
दोनों के बिना न होगा आत्मानुचरण...जिससे न होगा आत्मानुभव ऽऽऽ
इसके बिन न मिलेगा परिनिर्वाण ऽऽऽ आत्मन् (3)
आत्म श्रद्धान बिन न होगा श्रद्धान...देव शास्त्र-गुरु का भी यथार्थ ऽऽऽ
यथा भव्यसेन मुनि या अभव्य जीव...न कर पाते आत्मश्रद्धान ऽऽऽ
जिससे उन्हें न मिलेगा कभी निर्वाण ऽऽऽ आत्मन्।। (4)
इस हेतु त्यागो राग-द्वेष-मोह...ईर्ष्या-तृष्णा-काम-मद ऽऽऽ
समता-शुचिता-सहिष्णुता भज-निस्पृह-निराडम्बर-विराग ऽऽऽ
आत्मानुभव-आत्मानुचिन्तन कर ऽऽऽ आत्मन्। (5)
आत्मश्रद्धान बिन तप-त्याग भी...न बनते निर्वाण कारण ऽऽऽ
मिथ्यादृष्टि नारकी सहन करते...भूख-प्यास-सर्दी-गर्मी-रोग ऽऽऽ

तथापि उन्हें न मिलता निर्वाण ऽऽऽ। (6)
तथाहि-पशु-पक्षी-कीट-पतंग...वृक्ष-लतादि सहते नाना कष्ट ऽऽऽ
गुलाम-दोषी-बन्दी अभाव जीव...सहन करते हैं विविध दुःख ऽऽऽ
आत्मश्रद्धान बिन बन्धे पाप कर्म ऽऽऽ आत्मन्। (7)
आत्मश्रद्धान बिन करोड़ों भव में भी...मुनि बनने से भी न मिले मोक्ष।
करोड़ों भवों में अज्ञानी जो कर्म-नाशे...ज्ञानी मुनि क्षणमात्र में करे विनाश ऽऽऽ
आत्मज्ञान-ध्यान में हो लवलीन ऽऽऽ आत्मन्।। (8)
शक्ति अनुसार बाह्य तप-त्याग कर...ख्याति-पूजा-लाभ-वर्चस्व मुक्त ऽऽऽ
आरम्भ-परिग्रह याचना रहित...भौतिक निर्माण-रक्षण रहित ऽऽऽ
पर निंदा पर प्रपंचों से रहित ऽऽऽ आत्मन्।। (9)
आत्मविशुद्धि हेतु चक्रवर्ती भी...साधु बनकर करते आत्मध्यान ऽऽऽ
ऋद्धिधारी व तीर्थंकर मुनि भी...आत्मसाधना हेतु न करते बाह्य काम।
यथाशक्ति आत्मा का कर अनुकरण ऽऽऽ आत्मन्।। (10)
अन्यथा तेरे सभी तप-त्याग-ज्ञान...होंगे केवल बाह्य आडम्बर ऽऽऽ
इससे होगा आत्मपतन व धर्म विराधना...व्यापार व राजनीति सम काम ऽऽऽ
'कनक' करो तू आत्मसाधना ऽऽऽ
(न करो आत्मा/(धर्म) की विराधना ऽऽऽ आत्मन्।। (11)

सन्दर्भः

यद्यपि बाहुबली स्वामी शरीरादि से विरक्त होकर आतापन योग से विराजमान थे परन्तु मैं भरत की भूमि पे खड़ा हूँ, इस प्रकार सूक्ष्म मान विद्यमान रहने से केवलज्ञान प्राप्त नहीं कर सके थे।। जब उनके हृदय से उक्त प्रकार का मान दूर हो गया था तभी उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। इससे यह सिद्ध होता है कि अंतरंग की उज्ज्वलता के बिना केवल बाह्य त्याग से कुछ नहीं होता।

महुपिंगो णाय मुणी देहाहारदिचत्तवावारो।
सवणत्तणं ण पत्तो, णियाणमित्तेण भवियणुव।। (45) (अष्टपाहुड़)

हे भव्य जीवों के द्वारा नमस्कृत मुनि! शरीर तथा आहार का त्याग करने वाले मधुपिंग नामक मुनि निदानमात्र से श्रमणपने को प्राप्त नहीं हुए थे।

अण्णं च वसिट्ठमुणी, पत्तो दुक्खं णियाणदोसेण।

सो णत्थि वासठाणो, जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो।। (46)

और भी एक वशिष्ठ मुनि निदानमात्र से दुःख को प्राप्त हुए थे। लोक में वह निवासस्थान नहीं है जहाँ इस जीव ने भ्रमण न किया हो।

सो णत्थि तं पएसो, चउरासीलक्खजोणिवासम्मि।

भाववरिओ वि सवणो, जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो।। (47)

हे जीव! चौरासी लाख योनि के निवास में वह एक भी प्रदेश नहीं है जहाँ अन्य की बात जाने दो, भावरहित साधु ने भ्रमण न किया हो।

भावेण होइ लिंगी, ण हु लिंगी होइ दव्वमित्तेण।

तम्हा कुणिज्ज भावं, किं कीरइ दव्वलिंगेण।। (48)

मुनि भाव से ही जिनलिंगी होता है, द्रव्यमात्र से जिनलिंगी नहीं होता। इसलिए भावलिंग ही धारण करो, द्रव्यलिंग से क्या काम सिद्ध होता है?

दंडअणयरं सयलं, डहिओ अब्भंतरेण दोसेण।

जिणलिंगेण वि बाहू, पडिओ सा रउरवे णरये।। (49)

बाहु मुनि जिनलिंग से सहित होने पर भी अंतरंग के दोष से दंडक नामक समस्त नगर को जलाकर रौरव नामक नरक में उत्पन्न हुआ था।

अवरो वि दव्वसवणो, दंसणवरणाणचरणपब्भट्ठो।

दीवायणुत्ति णामो, अणंतसंसारिओ जाओ।। (50)

और भी एक द्वैपायन नामक द्रव्यलिंगी श्रमण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से भ्रष्ट होकर अनंतसंसारी हुआ।

भावसमणो य धीरो, जुवईजणवेड्डिओ विसुद्धमई।

णामेण सिवकुमारो, परीत्तसंसारिओ जादो।। (51)

भावलिंग का धारक धीर वीर शिवकुमार नाम का मुनि युवतिजनों से परिवृत होकर भी विशुद्धहृदय बना रहा और इसीलिए संसार समुद्र से पार हुआ।

अच्छे काम की प्रशंसा से बढ़ता है नया करने का हौसला

-खगोल वैज्ञानिक-जयन्त नार्लीकर

कोल्हापुर के एक मध्यम वर्गीय परिवार में 1938 में मेरा जन्म हुआ। मेरे दादाजी वासुदेव शास्त्री संस्कृत के विद्वान् थे। मेरे पिता गणितज्ञ थे वे हायर एजुकेशन के लिए 1928 से 32 तक कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में पढ़े थे। ब्रिटिश काल में रॉयल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस के 'रोल ऑफ ऑनर' पर आज भी उनका नाम लिखा हुआ है। उन्हें देश से बहुत प्यार था, इसलिए सभी प्रलोभन छोड़कर वे लौट आए और बनारस विवि में गणितज्ञ हो गए। तब वे 24 वर्ष के थे कैम्ब्रिज जाने के लिए कोल्हापुर में पिताजी ने जो कर्ज लिया था, बीएचयू के संस्थापक पं. मदन मोहन मालवीय ने वह सब चुका दिया। पिता बाद में बीएचयू में वाइस चासंलर और फिर राजस्थान लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष रहे। यह मेरा सौभाग्य था कि मैं विद्वान लोगों के घर मैं पैदा हुआ, शायद इसलिए साधारण सा स्टूडेंट होकर भी मैं कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी तक पहुंच गया। मेरा पूरा बचपन बनारस में बीता, वही हिंदू विवि से स्नातक होकर जब शिक्षा और अनुसंधान के लिए कैम्ब्रिज रवाना हुआ, तब मैं 19 वर्ष का था। वहीं पर सैद्धांतिक खगोल भौतिकी में मेरी दिलचस्पी बढ़ी। मैं सोचता हूँ कि मेरी मां सुमति और दादी भी उच्च शिक्षित थीं, इसलिए मुझे अच्छे संस्कार मिले। परिवार के सभी सदस्य, रिश्तेदार पढ़े-लिखे थे और मेरे बेहतरीन दोस्त साबित हुए। शायद इसलिए मेरी जीवनयात्रा आसान हो गई। जिस घर में शिक्षा का माहौल होता है, उस घर के बच्चों को पढ़ने के लिए बार-बार टोकना नहीं पड़ता। इतना सब बताने का मेरा उद्देश्य यही है कि शिक्षा हर किसी के लिए कितनी जरूरी है। आपके उच्च शिक्षित और संस्कारी होने का असर यह होता है कि आपके परिवार में उसकी चेन बनती चली जाती है। ऐसे ही समाज में जब चेन बनने लगेगी तो देश की उन्नति में बाधा नहीं आएगी।

मैंने इंटर में टॉप किया था, इसलिए सभी विकल्प खुले थे। अधिकांश छात्र इंजीनियरिंग में चले गए। मैंने गणित और भौतिक शास्त्र चुना और खगोल विज्ञान

में अनुसंधान करने का मन बनाया। स्कूली जीवन का एक वाकया बताना चाहता हूं-उस समय बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में मैट्रिक परीक्षा को प्रवेश परीक्षा कहा जाता था। तब हिंदी में किसी को भी डिस्टिंग्शन देने का चलन नहीं था। 100 में 25 अंक बाजू में रखकर ही परीक्षक पेपर जाँचता था। सभी को मुझसे हाईस्कोर की उम्मीद थी। मैं 1000 में से 805 अंक हासिल कर प्रथम आया। मुझे हिंदी, संस्कृत और गणित में विशेष योग्यता मिली, वह रिकॉर्ड अभी तक किसी ने नहीं तोड़ा है, जबकि मैं अहिंदी भाषी छात्र था। जब सभी ओर मेरी तारीफ होने लगती तो हौसला बहुत बढ़ गया। अपने 80 वर्ष से ज्यादा के अनुभव से यह कहना चाहता हूं कि कोई अच्छा काम कर रहा है तो उसकी तारीफ करने में आप संकोच न करें। आपके द्वारा दी गई तारीफ़ ही सामने वाले को और आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। मुझे शुरू से गणित पसंद था, बाद में मुझे विज्ञान भी पसंद आने लगा। हमारे घर में दो दीवारों पर ब्लैकबोर्ड टंगे होते थे, जिन पर पिता व भाई मनोरंजक तरीके से गणित और विज्ञान के बारे में लिखते रहते थे। हमें बोर्ड पर तब तक लिखते रहना होता था, जब तक हम कोई सूत्र या सवाल नए तरीके से हल नहीं कर लेते थे। मेरा अनुभव कहता है कि हर घर में बच्चों के बड़े होने तक ब्लैकबोर्ड रखना चाहिए। यह जरूरी बातें नोट करने में, पढ़ाई में बहुत मदद करता है।

फ्रेड होयल-नार्लीकर सिद्धांतः मैंने कैम्ब्रिज में विश्वविद्यालय नक्षत्र विज्ञानी प्रो. फ्रेड होयल के निर्देशन में गुरुत्वाकर्षण एवं कॉस्मोलोजी पर नए अनुसंधान किए। इसे आगे चलकर फ्रेड होयल-नार्लीकर सिद्धांत कहा जाने लगा। इसमें हमने बताया कि पृथ्वी और ब्रह्मांड की उत्पत्ति कैसे हुई। कई नए अनुसंधानो पर शोध करके मैंने डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। लोग मुझे ब्रह्मांड की स्थिर अवस्था में सिद्धांत का विशेषज्ञ बुलाने लगे। साथ ही भौतिकी के फ्रेड होयल-नार्लीकर सिद्धांत का जनक भी कहने लगे। विज्ञान को आम जीवन में उपयोगी बनाने के लिए विज्ञान के अलग-अलग सिद्धांतों पर आधारित कई भाषाओं में अनेक पुस्तके लिखीं।

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि हमने आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत और मानक सिद्धांत को मिलाते हुए होयल-नार्लीकर सिद्धांत बनाया। मेरे द्वारा प्रतिपादित गुरुत्वाकर्षण के नए सिद्धांत एवं कॉस्मोलोजी संबंधी अनुसंधान के लिए कैम्ब्रिज विवि ने मुझे एडम पुरस्कार से सम्मानित किया। 30 वर्ष की आयु में यह पुरस्कार पाने वाला मैं चौथा भारतीय था। किसी भारतीय के लिए यह बहुत बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है। मुझसे पहले डॉ. होमी जहांगीर भाभा, डॉ. एस. चंद्रशेखर व डॉ. बी.एस. हुजूबार यह पुरस्कार पा चुके हैं। जब 1964 में मुझे पद्मभूषण से अलंकृत किया गया तो लगा पूरे देश का प्यार मुझे मिल गया है। देश-विदेश में मेरे छात्रों के रूप में बहुत बड़ा परिवार है, जो नए-नए विषयों पर अनुसंधान करने के लिए मुझसे संपर्क करते रहते हैं। यकीन मानिए मैं आज भी इन बच्चों से कुछ न कुछ सीखता रहता हूं। मुझे एक ही कमी लगती है कि एक जीवन अनुसंधान करने के लिए यह कम है।

नार्लीकर, इंटर-यूनिवर्सिटी सेंटर फॉर एस्ट्रोनामी एंड एस्ट्रोफिजिक्स के संस्थापक-निदेशक रहे। कॉस्मोनोलॉजी कमीशन ऑफ़ इंटरनेशनल एस्ट्रोनॉमिकल यूनियन के पूर्व अध्यक्ष नार्लीकर ब्रह्मांड विज्ञान में अपने काम के लिए जाने जाते हैं। वर्तमान में अन्तर्विश्वविद्यालयीन खगोलशास्त्र तथा खगोल-भौतिक केंद्र, पुणे के संचालक हैं।

(जैसा उन्होंने दिव्य मराठी की जयश्री बोकिल को बताया)

पुरुषार्थ सम्बन्धी शोधपूर्ण कविता-

आत्मविश्वासी ज्ञानी चारित्रवाले ही सही पुरुषार्थी अन्य करते दासवृत्ति

(धर्म व मोक्ष पुरुषार्थ युक्त ही होते अर्थ व काम पुरुषार्थी अन्यथा पापार्जक)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1.आत्मशक्ति...2.क्या मिलिये...)

धर्म अर्थ व काम मोक्ष रूप से होते हैं चतुर्विध पुरुषार्थ।

धर्म से युक्त मोक्ष निमित्त होने पर ही होते हैं सहीपुरुषार्थ।। (1)
पुरुष है आत्मा उसके प्रयोजनार्थे जो होते भाव व व्यवहार।
वे होते हैं सही पुरुषार्थ अन्यथा सभी हैं पापकर/(पापाचार)।। (2)
सम्यक्त्व से होता है धर्म प्रारंभ, मोक्ष में होती धर्म की पूर्णता।
मध्य में होते सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र तीनों मय है मोक्षमार्ग।। (3)
चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से जो मुनिव्रत स्वीकार नहीं कर पाते।
वे अर्थ व काम पुरुषार्थ करते किन्तु दोनों पुरुषार्थ से पाप भी बान्धते।। (4)
इस पाप को दूर करते हेतु दान पूजादि श्रावक व्रत पालन करते।
धर्म व मोक्ष पुरुषार्थ से जो रहित, वे यथार्थ से पुरुषार्थी नहीं होते।। (5)
उसका धन (उपार्जन) होता पूर्णतः पापमय व काम भी होता पूर्णतः पापमय।
उनके लिये अर्थ (पुरुषार्थ व) काम पुरुषार्थ विशेषण होता है अयोग्य/(दासत्व)।। (6)
सम्यग्दृष्टि व श्रावकों में जो आध्यात्मिक गुण गण होते हैं।
वे सभी गुण मिथ्यादृष्टि में न होने से पुरुषार्थ विशेषण न होता है।। (7)
सम्यग्दृष्टि में होते अनेक गुण यथा अष्टअंग व अष्ट गुण।
प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्तिक्य आदि बाह्य चिन्ह सम्पन्न।। (8)
उपशम भाव से सम्यग्दृष्टि अपराधी प्रति भी न करता क्रोध।
संवेग गुण से सम्यग्दृष्टि चक्री इन्द्र के वैभव की न करता है चाह।। (9)
निर्वेद गुण से सम्यग्दृष्टि सांसारिक सुख से रहता है विरक्त।
अनुकम्पा गुण से सम्यग्दृष्टि संसार के दुःखी प्राणी प्रति करता सम्वेदना।। (10)
आस्तिक्य गुण से सम्यग्दृष्टि सर्वज्ञ कथित सत्य को न मानता है अन्यथा।
उक्त सभी गुणों से युक्त जो भाव काम, वे होते हैं सही पुरुषार्थ।। (11)
उक्त गुणों के साथ साथ ही दया दान सेवा परोपकारादि करते गृहस्थ।
न्याय से धनार्जन व ब्रह्मचर्य अणुव्रत रूपी करते अर्थ काम पुरुषार्थ।। (12)
इससे परे चारित्र मोहनीय के क्षीण से क्षीणतर होने से बनते श्रमण।
समस्त आरंभ परिग्रह त्याग सहित त्यागते अर्थ व काम पुरुषार्थ।। (13)
तब वे बनते प्रबल पुरुषार्थी ध्यान अध्ययन में होकर निमग्न।

धर्म व मोक्ष पुरुषार्थ द्वारा करते स्व आत्मा का पूर्ण उन्नयन।। (14)
आत्मार्थे श्रम करने से साधुगण होते हैं श्रमण।
उनके अनुयायी होते हैं श्रावक आगम में है ऐसा वर्णन।। (15)
परम प्रबल पुरुषार्थ द्वारा जब आत्मा को करते पावन।
घाती रूपी प्रबल शत्रु नाशकर बनते अरिहन्त भगवान्।। (16)
दिव्य ध्वनि द्वारा विश्व को देते चारों पुरुषार्थ का उपदेश।
शेष अघाती नाश से प्राप्त करते अन्तिम पुरुषार्थ रूपी मोक्ष।। (17)
चारों आश्रमों को भी ऐसा ही मानो जहाँ आत्मार्थे होता श्रम।
अन्यथा आश्रम नहीं होगा केवल रहना है निवास स्थान।। (18)
संक्षेप से यहाँ वर्णन हुआ विस्तार से जानो है आगम से।
मोक्ष पुरुषार्थ प्राप्त करने हेतु 'कनक' सेवन करे धर्म पुरुषार्थ।। (19)

नन्दौड़ दि. 11-9-2019 रात्रि 11.04

संदर्भः-

स जीयाद् वृषभो मोहविषसुप्त मिदं जगत्।
पटविद्येव यद्विद्या सद्यः समुदतिष्ठिपत्।।(1)
श्रीमान् भरतराजर्षिर्बुबुधे युगपत्त्रयम्।
गुरोः कैवल्यसंभूतिं सूतिं च सुतचक्रयोः।। (2)
धर्मस्थाद् गुरुकैवल्यं चक्रमायुधपालतः।
काञ्चुकीयात् सुतोत्पत्तिं विदामास तदा विभुः।। (3)
पर्याकुल इवासीच्च क्षणं तद्यौग पद्यतः।
किमत्र प्रागनुष्ठेयं संविधा नमिति प्रभुः।। (4)
त्रिवर्गफलसंभूतिक्रमोपनता मम।
पुण्यतीर्थ सुतोत्पत्तिश्चक्ररत्नमिति त्रयी।। (5)
तत्र धर्मफलं तीर्थ पुत्रः स्यात् कामजं फलम्।
अर्थानुबन्धिनोऽर्थस्य फलं चक्रं प्रभास्वरम्।। (6)
अथवा सर्वमप्येतत्फलं धर्मस्य पुष्कलम्।

यतो धर्मतरोरर्थः फलं कामस्तु तद्रसः।। (7)
कार्येषु प्राग्विधेयं तद्धर्म्य श्रेयोऽनुबन्धि यत्।
महाफलं च तद्देवसेवा प्राथमकल्पि की।। (8)
निश्चिचचायंति राजेन्द्रो गुरुपूजनमादितः।
अहो धर्मात्मनां चेष्टा प्रायः श्रेयोऽनुबन्धिनो।। (9)
सानुजन्मा समेतोऽन्तःपुरपौरपुरोगमैः।
प्राज्यामिज्यां पुरोधाय सज्जोऽभूद् गमनं प्रति।। (10) आ.पु.

जिनके ज्ञान ने पटविद्या अर्थात् विष दूर करनेवाली विद्या के समान मोहरूपी विष से सोते हुए इस समस्त जगत् को शीघ्र ही उठा दिया था-जगा दिया था वे श्रीवृषभदेव भगवान् सदा जयवन्त रहें।1।। अथानन्तर राज्यलक्ष्मी से युक्त राजर्षि भरत को एक ही साथ नीचे लिखे हुए तीन समाचार ज्ञात हुए कि पूज्य पिता को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है, अन्तःपुर में पुत्र का जन्म हुआ है और आयुधशाला में चक्ररत्न प्रकट हुआ है।2।। उस समय भरत महाराज ने धर्माधिकारी पुरुष से पिता के केवलज्ञान होने का समाचार, आयुधशाला की रक्षा करने वाले पुरुष से चक्ररत्न प्रकट होने का वृत्तान्त, और कंचुकी से पुत्र उत्पन्न होने का समाचार ज्ञात किया था।।3।। ये तीनों ही कार्य एक साथ हुए हैं। इनमें-से पहले किसका उत्सव करना चाहिए यह सोचते हुए राजा भरत क्षण-भर के लिए व्याकुल-से हो गये।।4।। पुण्यतीर्थ अर्थात् भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न होना, पुत्र की उत्पत्ति होना और चक्ररत्न का प्रकट होना ये तीनों ही धर्म, अर्थ, काम तीन वर्ग के फल मुझे एक साथ प्राप्त हुए हैं।।5।। इनमें से भगवान् के केवलज्ञान उत्पन्न होना धर्म का फल है, पुत्र का होना काम का फल है और देदीप्यमान चक्र का प्रकट होना अर्थ प्राप्त करानेवाले अर्थ पुरुषार्थ का फल है।।6।। अथवा यह सभी धर्मपुरुषार्थ का पूर्ण फल है क्योंकि अर्थ धर्मरूपी वृक्ष का फल है और काम उसका रस है।।7।। सब कार्यों में सबसे पहले धर्मकार्य ही करना चाहिए क्योंकि वह कल्याणों को प्राप्त करानेवाला है और बड़े-बड़े फल देनेवाला है इसलिए सर्वप्रथम जिनेन्द्र भगवान् की पूजा ही करनी चाहिए। (आदिनाथ भगवान् को आत्मध्यान से केवलज्ञान होने से उन्हें अन्त में मोक्ष प्राप्त होगा।।8।। इस प्रकार राजाओं के इन्द्र भरत महाराजने सबसे पहले भगवान् की

पूजा करने का निश्चय किया सो ठीक ही है क्योंकि धर्मात्मा पुरुषों की चेष्टाएँ प्रायः पुण्य उत्पन्न करनेवाली ही होती हैं।।9।। तदनन्तर महाराज भरत अपने छोटे भाई, अन्तःपुर की स्त्रियाँ और नगर के मुख्य-मुख्य लोगों के साथ पूजा की बड़ी भारी सामग्री लेकर जाने के लिए उद्यत हुए।।10।। गुरुदेव भगवान् वृषभदेव में उत्कृष्ट भक्ति को बढ़ाते हुए और धर्म की प्रभावना करते हुए महाराज भरत भगवान् की वन्दना के लिए उठे।।11।।

जिस पुरुष को समस्त पाप विरक्त रूप मुनिमार्ग का प्रदर्शन करने पर भी शक्ति की कमी के कारण ग्रहण नहीं कर पाता है उस भव्य जीव को एकदेश विरति रूप श्रावकाचार को बार-बार समझना चाहिए। जो भव्य मुनिधर्म को अंगीकार करने में असमर्थ हैं उसे श्रावक धर्म का उपदेश देना चाहिये। यही इसका भावार्थ है।

दंडनीय उपदेश

यो यति धर्ममकथयन्नुपदिशति गृहस्थ धर्म्ममल्प मतिः।
तस्य भगवत्प्रवचने, प्रदर्शितं निग्रह स्थानम्।। (18)

जो उपदेश दाता गुरु सर्व-सावद्य विरतिरूप मुनि धर्म का कथन न करके केवल गृहस्थ धर्म स्वरूप कुछ विरक्त कुछ अविरक्त रूप व्रत का कथन करता है वह पुरुष अल्पमति है। ऐसा अल्प, तुच्छ, स्तोक बुद्धि वाला गुरु केवल गृहस्थ धर्म का कथन करता है। वह भगवत् प्रवचन में दण्डनीय स्थान को प्राप्त होता है। इसका रहस्य यह है कि पहले मुमुक्षु भव्य मुनि धर्म का प्रवचन देना चाहिए। और यदि वह मुनि धर्म को स्वीकार करने में असमर्थ होता है तो गृहस्थ धर्म अर्थात् श्रावक धर्म का उपेदश देना चाहिए।

योग्य शिष्य को अपूर्ण उपदेश से हानि

अक्रमकथनेन यतः, प्रोत्साहमानोऽतिदूरमपि शिष्यः।
अपदेऽपि संप्रवृत्तः, प्रतारितो भवति तेन दुर्मतिना।। (19)

18 वें नम्बर श्लोक में जो कहा गया है कि जो पहले मुनि धर्म का उपदेश न देकर के गृहस्थ धर्म का उपदेश देता है वह दण्डनीय है। उसका कारण यह है कि जिसके कारण से मुमुक्षु शिष्य उपासक रूपी अपदस्थ गृहस्थ धर्म में प्रवृत्त हो जाता है जिसके कारण से दुर्बुद्धि गुरु के द्वारा शिष्य वंचित हो जाता है, ठगा जाता है। पहले

यति उत्साहित होकर जब शिष्य गुरु के पास आकर धर्म श्रवण एवं ग्रहण करना चाहता है तब गुरु को पहले उत्साह के अनुसार उसे उत्कृष्ट मार्ग मुनि मार्ग का उपदेश देना चाहिये परन्तु इसके विपरीत श्रावक धर्म का कथन करने से वह उत्साहमान् भी शिष्य निश्चय धर्म रूप मुनिमार्ग को न जानकर व्यवहार रूप श्रावक धर्म को अंगीकार कर लेता है। व्यवहार कथन से और निश्चय अकथन से व्यवहार ही निश्चय ऐसा जानकर शिष्य व्यवहार का ही आचरण करता है। अतः उपदेश दाता गुरु शिष्य को संसार सागर में ही रुला देता है। अतः मुनि को पहले प्रकाशन करना चाहिए उसके बाद श्रावक धर्म का कथन करना चाहिये।

उपदेश ग्रहण करने वाले पात्र का कर्त्तव्य

एवं सम्यग्दर्शन बोध चारित्र त्रयात्मको नित्यम्।
तस्याऽपि मोक्षमार्गो, भवति निषेव्यो यथाशक्ति।। (20)

आत्मा रत्नत्रय स्वरूप है। अतः मोक्षमार्ग तथा मोक्ष भी रत्नत्रयात्मक है। इसलिए मोक्ष के लिए रत्नत्रय की आराधना यथाशक्ति करनी चाहिए। परन्तु गुरुओं को निश्चय मोक्षमार्ग तथा व्यवहार मोक्षमार्ग का कथन करना चाहिए। इसलिए गुरु को क्रम कथन का यथाशक्ति उल्लंघन नहीं करना चाहिए। यथाशक्ति अक्रम कथन से दर्शन, ज्ञान, चारित्रात्मक मोक्षमार्ग का निषेध हो जाता है क्योंकि आत्मा सदैव रत्नत्रयात्मक है।

समीक्षाः–मोक्ष प्राप्ति का पूर्ण अद्वितीय मार्ग रत्नत्रय ही है। अनंत अनंतशिष्यों ने इस मार्ग पर चलते हुए मोक्ष को प्राप्त किया है। वे अनन्तज्ञान को प्राप्त करके पूर्ण रूप प्रत्यक्ष रूप से अनुभव करके रत्नत्रयात्मक मार्ग को ही यथार्थ मार्ग और इससे व्यतिरिक कुमार्ग, दुःख का मार्ग एवं संसार का मार्ग कहा है। आचार्यप्रवर समन्तभद्र स्वामी ने कहा भी है-

सद्दृष्टिज्ञान वृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीय प्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धति।। (3)

सद्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ही धर्म है, मोक्ष का मार्ग है इससे विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं कुचारित्र ही कुधर्म है, दुःख का मार्ग है, संसार का मार्ग है ऐसे धर्म के ज्ञाता धर्म के प्रभु ने बताये हैं। आचार्य उमास्वामी ने भी मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र का प्रतिपादन करने हुए प्रथम पंक्ति में बताया है कि-

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः।। (1) (तत्त्वार्थ सूत्र)

Right belief (right) knowledge (right) conduct, these (together consititute) the path to liberation.

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चारित्र इन तीनों का सम्यक् संयोग रूप त्रयात्मक (रत्नत्रयः) मोक्ष का मार्ग है।

"Self-reverence, self knowledge and self control.
These three alone lead life to saveriegn power."

आध्यात्मिक दर्शन के समर्थ प्रचार प्रसारक कुन्दकुन्दस्वामी आध्यात्मिक जगत् की अद्वितीय कृति समयसार में भी विमुक्ति मार्ग का प्रतिपादन करने हुए कहते हैंः-

जीवादी सद्दहणं सम्मतं तेसिमधिगमो णाणं।
रागादीपरिहरणं चरणं ऐसो दु मोक्खपहो।। (62)

विषय-कषायों से रहितरूप जो व्रत का परिणाम है उसके करके तत्पश्चात् शुद्धोपयोग रूप जो रत्नत्रय उस स्वरूप जो निश्चय नाम का धारक और वीतराग सामायिक नाम का धारक निर्विकल्प ध्यान है उसमें स्थित होकर केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं। परन्तु श्री भरत जी के थोड़े समय व्रत परिणाम रहा इस कारण लोग भरतजी के व्रत परिणाम को नहीं जानते हैं। अब उसे श्री भरतजी की दीक्षा के विधान का कथन करते हैं। श्री वीर वर्द्धमान स्वामी तीर्थंकर परमदेव के समवशरण में श्रेणिक महाराज ने प्रश्न किया कि हे भगवन्! श्री भरत चक्रवर्ती के जिन दीक्षा को ग्रहण करने के पीछे कितने काल में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ? इस पर श्री गौतम स्वामी गणधर देव ने उत्तर दिया कि हे श्रेणिक राजन्! बंध के कारणभूत जो केश (बाल) है उनको पाँच मुष्टियों से उखाड़कर तोड़ते हुए अर्थात् पंचमुष्टि लोंच करने के अनन्तर ही श्री भरत चक्रवर्ती केवलज्ञान को प्राप्त हुए।

परमात्मा की मोक्षावस्था

नित्यमपि निरूपलेपः, स्वरूप समवस्थितो निरूपघातः।
गगनमिव परम पुरुषः परम पदे स्फुरति विशदतमः।। (223)

समस्त पुरुषार्थ सिद्धि को प्राप्त करने वाला परम पुरुष परमपद रूप सिद्धपद में स्फुरायमान होता है। वह परम पुरुष सदा कर्मादि लेप से रहित, स्वस्थ्य रूप में

स्थित, समस्त घात प्रतिघात बाधाओं से रहित गगन के समान लेप से रहित चिज्ज्योति रूप से सिद्ध पद में अतिशय रूप से स्फुरायमान होता है।

परमात्मा का स्वरूप

कृतकृत्यः परमपदे, परमात्मा सकल-विषय विरतात्मा।
परमानन्द-निमग्नो, ज्ञानमयो नन्दति सदैव।। (224)

परमपद स्वरूप प्रकृष्ट सिद्ध पद में वह परम पुरुष/परमात्मा/शुद्धात्मा कृतकार्य होकर, सकल विषय से विरक्त होकर परमानंद में अर्थात् अनन्त सुख में लीन रहता है। वह परमात्मा पूर्णतया ज्ञानधन स्वरूप होकर मुक्त अवस्था में विराजमान होता है।

समीक्षाः-कर्मबन्ध से रहित होने के बाद जीव के सम्पूर्ण वैभाविक भाव नष्ट हो जाते हैं क्योंकि वैभाविक भाव के निमित्तभूत कारणों का अभाव हो जाता है। वैभाविक भाव के नष्ट होने पर स्वभाविक भाव नष्ट नहीं होते परन्तु स्वभाविक भाव पूर्ण शुद्ध रूप में प्रगट हो जाते हैं। तत्त्वार्थ सार में कहा भी है-

ज्ञानावरणहानाते केवलज्ञानशालिनः।
दर्शनावरणच्छेदादुद्यत्केवलदर्शनाः।। (37)
वेदनीयसमुच्छेदादव्याबाधत्वमाश्रिताः।
मोहनीयसमुच्छेदात्सम्यक्त्वमचलं श्रिताः।। (38)
आयुः कर्मसमुच्छेदादवगाहनशालिन।
नामकर्मसमुच्छेदात्परमं सौक्ष्म्यमाश्रिताः।। (39)
गोत्रकर्मसमुच्छेदाऽगौरवलाघवाः।
अन्तरायसमुच्छेदादनन्तवीर्यामाश्रिताः।। (40)

वे सिद्ध भगवान् ज्ञानावरण कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान से सुशोभित रहते हैं, दर्शनावरण कर्म का क्षय होने से केवलदर्शन से सहित होते हैं, वेदनीय कर्म का क्षय होने से अव्याबाधत्वगुण को प्राप्त होते हैं, मोहनीय कर्म का विनाश होने से अविनाशी सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं, आयुकर्म का विच्छेद होने से अवगाहना को प्राप्त होते हैं, नामकर्म का उच्छेद होने से सूक्ष्मत्वगुण को प्राप्त हैं, गोत्रकर्म का विनाश होने से सदा अगुरुलघुगुण से सहित होते हैं और अन्तराय का नाश होने से अनन्त वीर्य को प्राप्त होते हैं।

तादात्म्यादुपयुक्तास्ते केवलज्ञानदर्शन।

सम्यक्त्वसिद्धतावस्था हेत्वभावाच्च निःक्रियाः।। (43)

वे सिद्ध भगवान् तादात्म्यसम्बन्ध होने के कारण केवलज्ञान और केवलदर्शन के विषय में सदा उपयुक्त रहते हैं तथा सम्यक्त्व और सिद्धता अवस्था को प्राप्त हैं। हेतु का अभाव होने से वे निःक्रिया-क्रिया से रहित हैं।

सिद्धों के सुख का वर्णन

संसारविषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखम्।

अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः।। (45)

सिद्धों का सुख संसार के विषयों से अतीत, अविनाशी, अव्याबाध परमोत्कृष्ट है ऐसा परमऋषियों ने कहा है।

शरीर रहित सिद्धों के सुख किस प्रकार हो सकता है?

स्यादेतशरीरस्य जन्तोर्नष्टाष्टकर्मणः।

कथं भवति मुक्तस्य सुखमित्युतरं श्रृणु।। (46)

लोके चतुर्ष्विहार्थेषु सुखशब्दः प्रयुज्यते।

विषये वेदनाभावे विपाके मोक्ष एव च।। (47)

सुखो वह्निः सुखो वायुर्विषयेष्विह कथ्यते।

दुःखाभावे च पुरुषः सुखितोऽस्मीति भाषते।। (48)

पुण्यकर्मविपाकाच्च सुखमिष्टेन्द्रियार्थजम्।

कर्मक्लेशविमोक्षाच्च मोक्षे सुखमनुत्तमम्।। (49)

यदि कोई यह प्रश्न करे कि शरीर रहित एवं अष्टकर्मों को नष्ट करके वा मुक्तजीव के सुख कैसे हो सकता है तो उसका उत्तर यह है, सुनो! इस लोक में विषय, वेदना का अभाव, विपाक और मोक्ष इन चार अर्थों में सुख शब्द कहा जाता है। अग्नि सुख रूप है, वायु सुख रूप है, यहाँ विषय अर्थ में सुख शब्द कहा जाता है। दुःख का अभाव होने पर पुरुष कहता है कि मैं सुखी हूँ यहाँ वेदना के अभाव में सुखशब्द प्रयुक्त हुआ है। पुण्यकर्म के उदय से इन्द्रियों के इष्ट पदार्थों से सुख उत्पन्न हुआ है। यहाँ विपाक-कर्मोदय से सुखशब्द का प्रयोग है। जो कर्मजन्यक्लेश से

छुटकारा मिलने से मोक्ष में उत्कृष्ट सुख होता है। यहाँ मोक्ष अर्थ में सुख का प्रयोग है।

जं जह भणियं तं तह करेइ सइ जंमि कारगं तं तु।
रोयगसम्मत्तं पुण रुइमित्तकरं मुणेयव्वं।। (49)

जिस सम्यक्त्व के होने पर प्राणी आगम में जिस अनुष्ठान को जैसा कहा गया है उसे उसी प्रकार से करता है उसका नाम कारक सम्यक्त्व है। अभिप्राय यह है कि जो सम्यक्त्व कारयतीति कारकम् इस निरुक्ति के अनुसार आगमविहित अनुष्ठान को उसी रूप में कराता है उसे कारक सम्यक्त्व कहते हैं। रोचक सम्यक्त्व को रुचिमात्र करने वाला जानना चाहिए। इस का अभिप्राय यह है कि आगमविहित अनुष्ठान के करने में जीव यद्यपि उस प्रकार की शुद्धि के अभाव में असमर्थ होता है, तो भी इस सम्यक्त्व के होने पर उस उक्त अनुष्ठान-विषयक रुचि अवश्य रहती है। इससे उसका 'रोचक' यह सार्थक ही नाम है।

सयमिह मिच्छाद्दिट्ठी धम्मकहाईहि दीवइ परस्स।
सम्मत्तमिणं दीवग कारणफलभावओ नेयं।। (50) श्रावकप्रज्ञप्ति

दीपक सम्यक्त्व का स्वरूप प्राणी यद्यपि स्वयं मिथ्यादृष्टि है, फिर भी वह धर्मकथा आदि के द्वारा दूसरे के सम्यक्त्व को प्रकाशित करता है, ऐसे सम्यक्त्व को कारण-कार्यभाव से दीपक जानना चाहिए।

विवेचन-इसका अभिप्राय यह है कि कोई जीव यद्यपि भव्य या अभव्य होकर स्वयं मिथ्यादृष्टि होता है फिर भी वह धर्मचर्चा के आश्रय से, माता जैसे विशिष्ट अनुष्ठान से अथवा किसी अतिशय विशेष से दूसरे के सम्यक्त्व को प्रकट करता है। उसकी इस प्रकार की परिणति को कारण में कार्य का उपचार करके दीपक सम्यक्त्व कहा गया है। लोकव्यवहार में घी को आयु इसीलिए कहा जाता है कि वह उस आयु की स्थिरता का कारण है, स्वयं आयु नहीं है। यही अभिप्राय इस दीपक सम्यक्त्व के विषय में भी समझना चाहिए।

तव्विहखओवसमओ तेसिमणूणं अभावओ चेव।
एवं विचित्तरूवं सनिबंधणमो मुणेयव्वं।। (51)

उन मिथ्यात्व परमाणुओं के उस प्रकार के अभाव से भी इस प्रकार के विचित्र स्वरूपवाले उस सम्यग्दर्शन को सकारण ही जानना चाहिए। अभिप्राय यह है कि

जीव के उस जाति के परिणाम विशेष से मिथ्यात्व मोहनीय के परमाणु किसी के इस प्रकार की शुद्धि को प्राप्त होते हैं कि जिस के आश्रय से सातिचार अथवा निरतिचार क्षायोपशमक सम्यक्त्व प्रादुर्भूत होता है। तथा किसी के औपशमिक सम्यक्त्व प्रकट होता है। उनके ही क्षय से किन्हीं के क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होता है।

किं चेहुवाहिभेया दसहावीमं परूवियं समए।
ओहेण तंपिमेसिं भेयाणमभिन्नरूवं तु।। (52)

उपर्युक्त भेदों से अतिरिक्त उपाधि के भेद से इस सम्यक्त्व को आगम में दस प्रकार का भी कहा गया है। वह भी सामान्य से पूर्वोक्त क्षायोपशमिकादि भेदों से अभिन्न स्वरूपवाला है-उनसे भिन्न नहीं है, उन्हीं के अन्तर्गत है।

विवेचन-प्रज्ञापना (गा.115) व उत्तराध्ययन (28-16) आदि आगम ग्रन्थों में दर्शनआर्य के प्रसंग में सम्यक्त्व के उपर्युक्त क्षायोपशमिकादि व कारकादि भेदों के अतिरिक्त अन्य दस भेद भी निर्दिष्ट किये गये हैं। उनको पूर्वोक्त भेदों से भिन्न नहीं समझना चाहिए-वे यथा-सम्भव उक्त क्षायोपशमिकादि भेदों में-से किसी-किसी के अन्तर्गत हो सकते हैं। प्रकृत ग्रन्थ के संक्षिप्त होने के कारण उन दस भेदों का निरूपण यहाँ नहीं किया गया है। वे दस भेद ये हैं-निसर्गरुचि, उपदेशरुचि, आज्ञारुचि, सूत्ररुचि, बीजरुचि, अभिगमरुचि, विस्ताररुचि, क्रियारुचि, संक्षेपरुचि और धर्मरुचि। इनका स्वरूप क्रमशः इस प्रकार है-(1) जो परमार्थ स्वरूप से जाने गये जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव और संवर के विषय में आत्मसम्मति से-परोपदेश निरपेक्ष जाति-स्मरणादिरूप प्रतिभासे-रुचि या श्रद्धा करता है वह निसर्गदर्शन आर्य कहलाता है। प्रकारान्त से भी इसके लक्षण में यह कहा गया है कि जो जिनदृष्ट चार प्रकार के पदार्थों के विषय में 'वह इसी प्रकार का है, अन्यथा नहीं है' ऐसा श्रद्धान करता है उसे निसर्गरुचि दर्शन आर्य जानना चाहिए। यह लक्षण प्रज्ञापना व उत्तराध्ययन के अनुसार निर्दिष्ट किया गया है। तत्त्वार्थाधिगम-भाष्य (1-3) में निसर्गसम्यग्दर्शन के स्वरूप को दिखलाते हुए कहा गया है कि जीव स्वकृत कर्म के वश अनादिकाल से चतुर्गतिस्वरूप संसार में परिभ्रमण करता हुआ अनेक प्रकार से पुण्यपाप के फल का अनुभव कर रहा है, ज्ञान-दर्शनोपयोगरूप स्वभाववाले उसके उन-उन परिणामाध्यवसायस्थानान्तरों को प्राप्त होते हुए अनादि मिथ्यादृष्टि होने पर भी परिणामविशेष से उस प्रकार का अपूर्वकरण

होता है कि जिससे बिना किसी प्रकार के उपदेश के सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, उसके इस सम्यग्दर्शन का नाम ही निसर्गसम्यग्दर्शन है। तत्त्वार्थवार्तिक (1, 3, 8) में कहा गया है कि जिस प्रकार कुरुक्षेत्र में कहीं पर बाह्य पुरुषप्रयत्न के बिना ही सुवर्ण उत्पन्न होता है, उसी प्रकार बाह्य पुरुष के उपदेशपूर्वक जो जीवादि पदार्थों का अधिगम होता है उसके बिना ही जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है उसे निसर्गसम्यग्दर्शन कहते हैं। (2) अन्य किसी छद्मस्थ या जिन के द्वारा उपदिष्ट जीव-अजीवादि पदार्थों का जो श्रद्धान करता है उसे उपदेशरुचि जानना चाहिए। तत्त्वार्थवार्तिक (3-36) के अनुसार तीर्थंकर और बलदेव आदि के चरित्त के उपदेश के आश्रय जिनके तत्त्वश्रद्धा उत्पन्न होती है उन्हें उपदेशरुचि दर्शनआर्य कहा जाता है। (3) जिसका, राग, द्वेष, मोह व अज्ञान हट चुका है तथा जिसके जिनवाणी के आश्रय से तत्त्वविषयक रुचि प्रादुर्भूत हुई है उसका नाम आज्ञारुचि है। (4) जो सूत्र का अध्ययन करता हुआ अंगश्रुत से अथवा बाह्यश्रुत से सम्यक्त्व का अवगाहन करता है उसे सूत्ररुचि जानना चाहिए। (5) एक पद के आश्रय से जिसका सम्यक्त्व-तत्त्वरुचि-पानी में डाले गये एक तेलबिन्दु के समान अनेक पदों में फैलती है उसे बीजरुचि कहा जाता है। (6) जिसने अर्थस्वरूप से ग्यारह अंग, प्रकीर्णक और दृष्टिवादरूप श्रुतज्ञान को देख लिया है-अभ्यस्त कर लिया है-उसे अभिगमरुचि कहते हैं। (7) अंग-पूर्व श्रुत के विषयभूत जीवादि पदार्थ विषयक प्रमाण-नयादि के आश्रय से विस्तारपूर्वक किये जानेवाले निरूपण से जिन्हें श्रद्धान प्राप्त हुआ है वे विस्ताररुचि दर्शन आर्य कहलाते हैं (त.वा. 3 36, 2)। (8) दर्शनविनय, ज्ञानविनय, चारित्रविनय और तपविनय के विषय में तथा समिति व गुप्तियों के विषय में जो अन्तः करणपूर्वक के अनुष्ठानविषयक रुचि होती है उसका नाम क्रियारुचि है। (9) अनभिगृहीत मिथ्यादृष्टि को संक्षेपरुचि जानना चाहिए। वह प्रवचन में विशारद (कुशल) न होकर शेष मिथ्यामतों के विषय में अनभिगृहीत होता है-उनके आश्रय से मिथ्यात्व को नहीं ग्रहण करता है। (10) जो जिनप्रणीत श्रुतधर्म, अस्तिकायधर्म, और चारित्रधर्म का श्रद्धान करता है उसे धर्मरुचि जानना चाहिए।

तं उवसमसंवेगाइएहि लक्खिज्जई उवाएहिं।
आयपरिणामरूवं बज्झेहिं पसत्थजोगेहि।। (53)

आत्मपरिणामस्वरूप वह सम्यक्त्व बाह्य प्रशस्त व्यापाररूप उपशम व संवेग आदि उपायों से लक्षित होता है-जाना जाता है।

इत्थं य परिणामो खलु जीवस्स सुहो उ होइ विन्नेओ।
किं मलकलंकमुक्कं कणगं भुवि सामल होइ।। (54)

कारण इसका यह है कि इस सम्यक्त्व के होने पर जीव का परिणाम (व्यापार या आचरण) उत्तम हो जाता है-निन्द्य आचरण उसका कभी नहीं होता है। सो ठीक भी है, क्या लोक में कभी मल-कलंक-कीट-कालिमा से रहित सुवर्ण मलिन हुआ है? नहीं।

विवेचन-प्रकृत सम्यक्त्व अतीन्द्रिय आत्मा का परिणाम है, अतः छद्मस्थ के लिए उसका परिज्ञान नहीं हो सकता। इससे यहाँ उसके परिचायक कुछ बाह्य चिह्नों का निर्देश किया गया है। वे चिह्न ये हैं-प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य। ये सब बाह्य प्रवृत्ति रूप हैं। जिस जीव के उक्त सम्यक्त्व प्रादुर्भूत हो जाता है उसकी बाह्य प्रवृत्ति प्रशस्त होती है, वह कभी निन्द्य आचरण नहीं करता। इसी से उक्त प्रशम-संवेगादिरूप प्रवृत्ति को देखकर उसके आश्रय से किसी के उस सम्यक्त्व का अनुमान किया जा सकता है। इनके होते हुए वह सम्यक्त्व हो भी सकता है और कदाचित् नहीं भी हो सकता है, पर इसके बिना उस सम्यक्त्व का अभाव सुनिश्चित समझना चाहिए। कारण इसका यह है कि कि वैसी प्रवृत्ति अन्तः करण पूर्वक न होकर कदाचित् कपट से भी की जा सकती है।

प्रथमतः प्रशम के स्वरूप

पयईइ व कम्माणं वियाणिउं वा विवागमसुहं ति।
अवरद्धे वि न कुप्पइ उवसमओ सव्वकालं पि।। (55)

सम्यक्त्व से विभूषित जीव उपशम (प्रशम) के आश्रय से स्वभावतः अथवा कर्मों के अशुभ विपाक को जानकर सदा अपराधी प्राणी के ऊपर भी क्रोध नहीं किया करता है।

विवेचन-सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेने पर जीव का स्वभाव इस प्रकार का हो जाता है कि यदि कोई प्राणी प्रतिकूल होकर उसका अनिष्ट भी करता है तो भी वह उसके ऊपर कभी क्रोध नहीं करता। ऐसे समय में वह यह भी करता है कि क्रोधादि

कषाय ही तो कर्मबन्ध के कारण हैं। कषाय के वशीभूत होकर प्राणी अन्तर्मुहूर्त में जिस कर्म को बाँधता है उसके फल को वह अनेक कोड़ाकोड़ी सागरोपम काल तक कष्ट के साथ सहता है। इस प्रकार कर्म के अशुभ फल को जानकर वह अपराध करनेवाले के ऊपर भी जब क्रोध नहीं करता है तब भला वह निरपराध प्राणी के ऊपर तो क्रोध कर ही कैसे सकता है? इस प्रकार से जो सम्यक्त्व के प्रभाव से उसके क्रोधादि कषायों की स्वभावतः उपशान्ति होती है उसी का नाम प्रशम है।

संवेग का स्वरूप

नरविबुहेसरसुक्खं दुक्खं चिय भावओ य मन्नंतो।
संवेगओ न मुक्खं मुत्तूणं किंचि पत्थेइ।। (56)

सम्यग्दृष्टि जीव संवेग के निमित्त से चक्रवर्ती और इन्द्र के सुख को भी यथार्थ में दुःख ही मानता है। इसी से वह मोक्ष को छोड़कर अन्य कुछ भी नहीं चाहता है।

विवचेन-यथार्थ सुख उसे ही कहा जा सकता है जहाँ कुछ भी आकुलता न हो। चक्रवर्ती और इन्द्र आदि का सुख स्थायी नहीं है-विनश्वर है, अतः वह आकुलता से रहित नहीं हो सकता। इसीलिए सम्यग्दृष्टि जीव इन्द्र व चक्रवर्ती आदि के सातावेदनीयजन्य उस सुख को विनश्वर व पाप का मूल जानकर दुःख ही मानता है। वास्तविक सुख परावलम्बन के बिना होता है। कर्मोदय के बिना प्राप्त होनेवाला स्वाधीन व शाश्वतिक वह सुख मोक्ष में ही सम्भव है। अतएव सम्यग्दृष्टि जीव क्षणनश्वर, पराधीन व परिणाम में दुःखोत्पादक सांसारिक सुख की अभिलाषा न करके निर्बाध व शाश्वतिक सुख के स्थानभूत मोक्ष की अभिलाषा करता है। इस मोक्ष की अभिलाषा का नाम ही संवेग है जो उस सम्यक्त्व के प्रकट होने पर स्वभावतः होता है।

निर्वेद का स्वरूप

नारयतिरियनरामरभवेसु निव्वेयओ वसइ दुक्खं।
अकयपरलोयमग्गो ममत्तविसवेगरहिओ वि।। (57)

ममतारूपी विष के वेग से रहित भी प्राणी परलोक के मार्ग को न करके-उत्तम परलोक के कारणभूत सदाचरण को न करके निर्वेद के आश्रय से नारक, तिर्यंच, मनुष्य और देव पर्यायों में दुःखपूर्वक रहता है।

विवेचन-नारक, तिर्यंच और कुमानुष अवस्था का नाम निर्वेद है (दश वै.

निर्युक्ति 203)। तत्त्वार्थाधिगमभाष्य को सिद्धसेन गणि विरचित्त वृत्ति (1-3) के अनुसार विषयों में जो अनासक्ति होती है उसे निर्वेद कहा गया है। यहीं पर आगे (7-7) पुनः यह कहा गया है कि शरीर, भोग, संसार और विषयों से जो विमुखता, उद्वेग अथवा विरक्ति होती है उसका नाम निर्वेद है। प्रकृत गाथा का अभिप्राय यह है कि सम्यग्दृष्टि जीव निर्वेद के आश्रय से नारक आदि भवों में दुःखपूर्वक रहता है। वह ममत्वभावसे रहित होता हुआ भी यद्यपि उत्तम परलोक के योग्य आचरण नहीं कर पाता है, फिर भी वह उन्हें कष्टकर मानता है व उनकी ओर से विमुख रहता है।

अनुकम्पा के स्वरूप

दट्ठूण पाणिनिवहं भीमे भवसागरं दुक्खत्तं।
अविसेसओ णुकंपं दुहावि सामत्थओ कुणइ।। (58)

सम्यग्दृष्टि जीव भयानक संसाररूप समुद्र में दुःखो से पीड़ित प्राणी समूह को देखकर बिना किसी विशेषता के समानरूप-यथाशक्ति द्रव्य व भाव के भेद से दोनों प्रकार की अनुकम्पा को करता है। अभिप्राय यह है कि चारों गतियों में परिभ्रमण करते हुए प्राणी अनेक प्रकार के शारीरिक व मानसिक दुःखों से पीड़ित रहते हैं। उन्हें इस प्रकार दुःखी देखकर सम्यग्दृष्टि जीव स्वभावतः उनके दुःख को अपना समझता हुआ यथायोग्य उन्हें प्रासुक भोजनादि देकर जहाँ द्रव्य से अनुकम्पा करता है वहाँ उन्हें सन्मार्ग में लगाकर वह भाव से भी अनुकम्पा करता है। यह अनुकम्पा का कार्य वह अपना व पर का भेद न करके सभी के प्रति समान रूप से करता है। उपर्युक्त प्रशमादि के समान यह भी उसके सम्यक्त्व का परिचायक है।

मन्नइ तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेहि पन्नत्तं।
सुहपरिणामो सव्वं कंक्खाइविसुत्तियारहिओ।। (59)

सम्यग्दृष्टि के आस्तिक्य गुण

आस्तिक्य आदि रूप शुभ परिणाम से युक्त सम्यग्दृष्टि जीव कांक्षा आदि विश्रोतसिका-प्रतिकूल प्रवाह-से रहित होकर जिनदेव के द्वारा जो भी वस्तु का स्वरूप कहा गया है उस सभी को सत्य मानता है।

विवेचन–जीवादि पदार्थ यथासम्भव अपने-अपने स्वभाव के साथ वर्तमान है, इस प्रकार की बुद्धि का नाम आस्तिक्य है, (त.वा. 1, 2, 30) 'आत्मा आदि

पदार्थ समूह है' इस प्रकार की बुद्धि जिसके होती है उसे आस्तिक और उसकी इस प्रकार की परिणति को आस्तिक्य कहा जाता है। यह गुण सम्यग्दृष्टि जीव में स्वभावतः होता है। जिन भगवान् के द्वारा जीवादि पदार्थों का जैसा स्वरूप कहा गया है उसे ही वह यथार्थ मानता है। कारण यह है कि वह यह जानता है कि जिन भगवान् सर्वज्ञ व वीतराग हैं, अतः वे वस्तुस्वरूप का अन्यथा कथन नहीं कर सकते। असत्य वही बोलता है जो या तो अल्पज्ञ हो या राग-द्वेष के वशीभूत हो। सो जिन भगवान् में इन दोनों का ही अभाव है। अतएव उनसे असत्यभाषण की सम्भावना नहीं की जा सकती। ऐसा सम्यग्दृष्टि के दृढ़ विश्वास हुआ करता है। यही आस्तिक्य गुण का लक्षण है। सम्यग्दृष्टि जीव इस आस्तिक्य गुण के साथ पूर्वनिर्दिष्ट प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा से संयुक्त होता है। साथ ही वह सम्यक्त्व को मलिन करनेवाले कांक्षा व विचिकित्सा आदि आदि अतिचारों से रहित भी होता है। इन अतिचारों का स्वरूप ग्रन्थकार के द्वारा आगे स्वयं निर्दिष्ट किया जानेवाला है। (87-88) यहाँ कांक्षा आदि को विश्रोतसिका कहा गया है। उसका अभिप्राय यह है कि जिस प्रकार खेत में बोयी गयी फसल की वृद्धि के लिए उसका जल सिंचन किया जाता है, पर सिंचन के लिए उपयुक्त जल का प्रवाह यदि विपरीत दिशा में जानेवाला हो तो उससे फसल का संरक्षण व संवर्धन नहीं हो सकता है, ठीक इसी प्रकार संयम का संरक्षण व संवर्धन करनेवाला यह सम्यक्त्व यदि कांक्षा आदि से मलिन हो रहा हो तो उससे स्वीकृत संयम का संरक्षण व संवर्धन नहीं हो सकता है। इसी से सम्यग्दृष्टि को उनसे रहित कहा गया है।

एवंविहपरिणामो सम्मद्दिट्ठी जिणेहिं पन्नत्तो।
एसो य भवसमुद्दं लंघइ थोवेण कालेण।। (60)

इस प्रकार जिनदेव के द्वारा सम्यग्दृष्टि जीव को उक्त प्रकार के प्रशम-संवेगादिरूप शुभ परिणामों से युक्त कहा गया है। इस प्रकार की उत्तम परिणति युक्त यह सम्यग्दृष्टि ही थोड़े समय में अधिक से अधिक उपार्धपुद्गलपरावर्त काल के भीतर ही संसाररूप समुद्र को लाँघता है-वह भयानक चतुर्गतिस्वरूप संसार से शीघ्र मुक्त हो जाता है।

आगे मुनिधर्म को ही सम्यक्त्व का निर्देश किया जाता है-
जं मोणं तं सम्मं जं सम्मं तमिह होइ मोणं ति।

निच्छयओ इयरस्यउ सम्मं सम्मत्तहऊ वि।। (61)

यथार्थ में यहाँ निश्चय की अपेक्षा जो मुनि का चारित्र है वह सम्यक्त्व है और जो सम्यक्त्व है वह मुनि का चारित्र है। पर व्यवहार नय की अपेक्षा सम्यक्त्व का जो कारण है उसे भी सम्यक्त्व कहा जाता है।

विवेचन–प्रकृत गाथा में निश्चय और व्यवहार इन दोनों नयों की अपेक्षा सम्यक्त्व के स्वरूप को दिखलाते हुए कहा गया है कि निश्चय से जो मुनिधर्म है वही सम्यक्त्व है और जो सम्यक्त्व है वही मुनिधर्म है-दोनों में कुछ भेद नहीं है। कारण यह कि निश्चय से आत्म-पर-विवेक का होना ही सम्यक्त्व है तो उस मुनिधर्म से भिन्न नहीं है। इस आत्म-परविवेक के प्रकट हो जाने पर प्राणी को हेय और उपादेय का ज्ञान होता है, जिसके आश्रय से वह पापाचरण को छोड़कर संयम से प्रवृत्त होता है। 'मन्यते जगतस्त्रिकालावस्थामिति मुनिः' इस निरुक्ति के अनुसार मुनि का अर्थ है तीनों काल की अवस्था को समझनेवाला तपस्वी। इसी से निश्चय की अपेक्षा इन दोनों में भेद नहीं किया गया। टीका में इसकी पुष्टि आचारांग सूत्र (256, पृ. 192) से की गयी है। जो यथार्थ आचरण नहीं करता है उससे अन्य मिथ्यादृष्टि और कौन हो सकता है? उसे ही मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए। ऐसा मिथ्यादृष्टि शंका को उत्पन्न करता हुआ दूसरे के भी मिथ्यात्व को बढ़ाता है। व्यवहारनय से जो जिनशासन विषयक अनुराग आदि सम्यक्त्व के कारण हैं उन्हें भी कारण में कार्य के उपचार से सम्यक्त्व कहा जाता है, क्योंकि परम्परा से वे भी मुक्ति के कारण हैं। जैनशासन की यह एक विशेषता है कि वहाँ वस्तुतत्त्व का विचार दुराग्रह को छोड़कर अनेकान्त दृष्टि से-निश्चय व व्यवहार नयों के आधार से किया गया है। परस्पर सापेक्ष इन दोनों नयों के बिना वस्तु के स्वरूप को यथार्थ में समझा ही नहीं जा सकता। इसी से आगम में यह कहा गया है कि जो आत्महितैषी भव्य जीव जिनमत को स्वीकार करता है उसे व्यवहार और निश्चयनयों को नहीं छोड़ना चाहिए। इसका कारण यह है कि व्यवहार नय के छोड़ देने पर जैसे तीर्थका-धर्मप्रवर्तनका-विनाश अवश्यम्भावी है 'वैसे ही निश्चयनय के छोड़ देने पर तत्त्व का-वस्तुव्यवस्था का-विनाश भी अनिवार्य है। अतः तत्त्व को समझने के लिए मुख्यता व गौणता या विवक्षा के आधार से यथासम्भव उक्त दोनों नयों का उपयोग अवश्य करना चाहिए।

आगे वाचक उमास्वाति के द्वारा जिस सम्यग्दर्शन का लक्षण तत्त्वार्थश्रद्धान निर्दिष्ट किया गया है वह प्रशम-संवेगादि का हेतु है, इसे दिखलाते हैं-

तत्तत्थसद्दहाणं सम्मत्तं तंमि पसममाईया।
पढकसाओवसमादविक्खया हुंति नियमेण।। (62)

जीवाजीवादि तत्त्वार्थों के श्रद्धान का नाम सम्यग्दर्शन है। उसके हो जाने पर प्रथम कषाय के उपशम आदि की अपेक्षा से पूर्वोक्त प्रशम-संवेग आदि नियम से होते हैं।

विवेचन-तत्त्वार्थधिगम सूत्र (1-2) में जीव अजीव आदि सात तत्त्वार्थों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा गया है। जिस जीव के तत्त्वार्थ श्रद्धानरूप यह सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो जाता है उसके पूर्वोक्त प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य ये गुण नियम से होते हैं। इसका कारण यह है कि वह तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन प्रथम अनन्तानुबन्धी कषाय से उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम के होने पर ही होता है-उसके बिना नहीं होता। उक्त प्रशमादि भी प्रकृत कषाय के उपशमादि की अपेक्षा रखते हैं। यही कारण है जो उसके उदय युक्त जीवों के असम्भव वे प्रशमादि भाव सम्यग्दृष्टि के नियम से होते हैं। इस प्रकार सम्यग्दर्शन के अविनाभावी वे प्रशमादिक उस (सम्यग्दर्शन) के परिचायक होते हैं।

इय अप्परिवडियगुणाणुभावओ बंधहासभावाओ।
पुव्विल्लस्स य खयओ सासयसुक्खो धुव्वो मुक्खो।। (389)

इस प्रकार अप्रतिपतित-निरन्तर अवस्थित रहनेवाले-गुणों के प्रभाव से, बन्ध के उत्तरोत्तर ह्रास (हानि) से तथा पूर्वबद्ध कर्म के क्षय से-संवर और निर्जरा से-अविनश्वर सुख से युक्त मोक्ष होता है।

सम्मत्तंमि य लद्धे पलियपुहत्तेण सावओ हुज्जा।
चरणोवसम-खयाणं सागरसंखंतरा हुंति।। (390)

सम्यक्त्व के प्राप्त हो जाने पर पल्योपमपृथक्त्व से श्रावक हो जाता है, तत्पश्चात् चारित्र के उपशम व क्षय से संख्यात सागर होते हैं-संख्यात सागरोपमों में चारित्र का उपशम अथवा क्षय होता है।

विवेचन-इसका अभिप्राय यह है कि जीव के संसार परिभ्रमण काल उपार्धपुद्गल परावर्त मात्र शेष रह जाता है तब वह सम्यक्त्व ग्रहण के योग्य होता है, इससे

अधिक समय के शेष रहने पर जीव उस सम्यक्त्व के ग्रहण योग्य नहीं होता है। उसके योग्य हो जाने पर जीव जब कर्मों की स्थिति को उत्तरोत्तर हीन करते हुए उसे अन्तः कोड़ी-कोड़ी प्रमाण करके उसे भी पल्योपमके असंख्यातवें वें भाग से हीन कर देता है तब वह सघन राग-द्वेषस्वरूप ग्रन्थि को भेदकर उस सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। इस सम्यक्त्व के प्राप्त हो जाने पर वह उक्त कर्मस्थिति के पल्योपमपृथक्त्व से-दो पल्योपमों से लेकर नौ पल्योपमों से-हीन हो जाने पर श्रावक होता है। पश्चात् उक्त कर्मस्थिति के संख्यात सागरोपमों से हीन हो जाने पर उपशमश्रेणीपर आरूढ़ होकर औपशमिक चारित्र को प्राप्त करता है। फिर संख्यात सागरोपमों से हीन उक्त कर्मस्थिति के हो जाने पर वह क्षपक श्रेणिपर आरूढ होकर क्षायिक चारित्र को प्राप्त करता है।

सम्यक्त्व के अवस्थित रहने पर क्या-क्या प्राप्त हो सकता है

एवं अप्परिवडिए संमत्ते देव-मणुयजंमेसु।
अन्नयरसेढिवज्जं एगभवेणं च सव्वाइं।। (391)

इस प्रकार देव व मनुष्य जन्मों में सम्यक्त्व तदवस्थ रहने पर जीव किसी एक श्रेणिको छोड़कर एक भव में ही सबको-सम्यक्त्व, श्रुत, देशविरत और सर्वविरति को पा लेता है।

रागाईणमभावा जम्माईणं असंभवाओ य।
अव्वाबाहाओ खलु सासयसुक्खं तु सिद्धाणं।। (392)

रागादिकों का सर्वथा अभाव हो जाने से, जन्म-मरणादि की सम्भावना न रहने से तथा सब प्रकार की विघ्न-बाधाओं के हट जाने से सिद्ध-कर्मों से विनिर्मुक्त-जीवों के निश्चय से वह शाश्वत सुख होता है।

रागो दोसा मोहो दोसाभिस्संगमाइलिंग त्ति।
अइसंकिलेसरूवा हेऊ वि य संकिलेसस्स।। (393)

राग, द्वेष और मोह ये अभिष्वंग (आसक्ति) के हेतु हैं-राग आसक्तिस्वरूप, द्वेष वैरभाव-रूप और मोह अज्ञानस्वरूप है। वे स्वयं अतिशय संक्लेशरूप होते हुए उस संक्लेश के-अतिशय क्लिष्ट कर्मबन्ध के-कारण भी हैं।

एएहभिभूआणं संसारोणं कुओ सुहं किंचि।
जम्मजरामरणजलं भवजलहिं परियडंताणं।। (394)

इनसे अभिभूत (आक्रान्त) होकर जन्म, जरा व मरणरूप जल से परिपूर्ण संसाररूप समुद्र में पड़ते हुए-वहाँ परिभ्रमण करनेवाले संसारी जीवों के वह सुख कहाँ किंचित् भी हो सकता है? नहीं हो सकता। इसके विपरीत वे वहाँ सदा दुःखी ही रहते है।

रागाइविरहओ जं सुक्खं जीवस्स तं जिणो मुणइ।
न हि सन्निवायगहिओ जाणइ तदभावजं सातं।। (395)

उक्त राग, द्वेष एवं मोह के हट जाने से जो जीव को सुख प्राप्त होता है जिन-राग-द्वेष के विजेता अरहन्त-ही जानते हैं। ठीक ही है, सन्निपात रोग से ग्रस्त जीव उसके बने रहने पर उसके दूर हो जाने से प्राप्त होनेवाले सुख को नहीं जान पाता है-उसका अनुभव तो उस रोग के दूर हो जाने पर ही उसे हो सकता है।

दड्ढंमि जहा बीए न होइ पुण अंकुरस्स उप्पत्ती।
तह चेव कम्मबीए भवंकुरस्सावि पडिकुट्ठा।। (396)

जिस प्रकार बीज के जल जाने पर अंकुर को उत्पत्ति फिर नहीं हो सकती है उसी प्रकार कर्मरूप बीज के जल जाने पर-उसके आत्मा से पृथक् होकर निर्जीर्ण हो जाने-पर संसाररूप अंकुर की उत्पत्ति भी निषिद्ध है-कर्मरूप निमित्त के न रहने पर संसार-परिभ्रमण भी सम्भव नहीं रहता।

जंमाभावे न जरा न य मरणं न य भयं न संसारो।
एएसिमभावाओ कहं न सुक्खं परं तेसिं।। (397)

जन्म का अभाव हो जाने पर न जरा (बुढ़ापा) सम्भव है, न मरण सम्भव है, न भय सम्भव है, और न संसार सम्भव है। इन जन्म, जरा, भय और संसार का अभाव हो जाने पर उन सिद्धों के वह उत्कृष्ट-निर्बाध व अनिश्वर-सुख कैसे न होगा? अवश्य होगा।

अव्वाबाहाउच्चिय सयलिंदियविसयभोगपज्जंते।
उस्सुक्कविणिवत्तीइ संसारसुहं व सद्धेयं।। (398)

जिस प्रकार समस्त इन्द्रिय विषयों के भोग के अन्त में उत्सुकता विनष्ट हो जाने से संसार में बाधा रहित सुख की प्रतीति हुआ करती है उसी प्रकार कर्म के अभाव में उत्सुकता के दूर हो जाने पर सिद्धों के वह निर्बाध सुख उत्पन्न होता है जो

पुनरागमन सम्भव न रहने से सदा ही अवस्थित रहता है, ऐसी श्रद्धा करना चाहिए।

विवेचन-प्रकृत गाथा में उत्सुकता के नष्ट हो जाने पर कुछ समय के लिए संसार में भी जो निर्बाध सुख प्राप्त होता है, उसका उदाहरण यहाँ सिद्धों के शाश्वतिक सुख की पुष्टि में दिया गया है। उसकी पुष्टि टीका में उद्धृत कुछ प्राचीन पद्यों के द्वारा की गयी है, जिनका अभिप्राय इस प्रकार है-प्राणी श्रोत्रइन्द्रिय के वशीभूत होकर जब चित्ताकर्षक गान के सुनने के लिए उत्सुक होता है तब यदि उसे बांसुरी, वीणा एवं मृदंग आदि की ध्वनि से संयुक्त और प्रशसंनीय कामकथा से सम्बद्ध मनोहर गीत सुनने को मिल जाता है तब उसकी वह उत्सुकता शान्त हो जाती है, इस प्रकार कुछ समय के लिए वह निराकुल सुख का अनुभव करता है। इसी प्रकार मनुष्य जब चक्षु इन्द्रिय के वशीभूत होकर रत्नत्रय भूमि आदि में नेत्रों को आनन्द देनेवाले अपने लीलायुक्त अनेक प्रकार के रूपों को देखता है तब उसकी वह उत्सुकता समाप्त हो जाती है, इसलिए वह तब तक निर्बाध सुख का अनुभव करता है। घ्राण इन्द्रिय के वशीभूत होकर वह अम्बर (वस्त्र) अगुरु, कपूर और धूप आदि की गन्ध से युक्त होता हुआ जब सुवासित वस्त्रों को अनेक प्रकार की गन्धों को भी सूँघता है तब उसकी उत्सुकता नष्ट हो जाती है, इसीलिए वह उतने समय के लिए निःस्पृह होकर निराकुल सुख का अनुभव करता है। वह रसना इन्द्रिय के वश होकर तब अनेक रसों से युक्त भोजन को परिमित मात्रा में ग्रहण करके पानी को पीता है तथा उत्तम स्वादिष्ठ लाडू आदि को चखता है तब उसकी आत्मा सन्तोष का अनुभव करती है। इस प्रकार वह तबतक निर्बाध सुख का अनुभव करता है। स्पर्शन इन्द्रिय के वश मनुष्य जब कोमल रुई से भरी हुई गादी से संयुक्त पलंगपर स्थित होता हुआ सहसा भयप्रद मेघ की गर्जना के शब्द को सुनकर भयभीत हुई प्रिय पत्नी से आलिंगित होता है तब वह परिमित समय के लिए निराकुल सुख का अनुभव करता है। इस प्रकार सब (पाँचों) इन्द्रियों के विषयों को प्राप्त करके सब प्रकार की बाधा से रहित हो जाने पर जिस निराकुल सुख का अनुभव मनुष्य करता है उसकी अपेक्षा मुक्तात्मा के अनन्तगुणा सुख होता है। इसका कारण यह है कि संसारी प्राणी को अभीष्ट इन्द्रियविषयों के उपभोग से जो सुख प्राप्त होता है वह उन विषयों के संयोग तक सीमित है, तत्पश्चात्

उन अभीष्ट विषयों का वियोग हो जाने पर वह पुनः उन की प्राप्ति के लिए व्याकुल होता है। इस प्रकार संसारी जीवों का वह सुख साता वेदनीय आदि पुण्य प्रकृतियों के उदय तक रहता है, पश्चात् वह नियम से विनष्ट होता है। परन्तु समस्त कर्मों से निर्मुक्त हुए सिद्धों का वह निर्बाध सुख अविनश्वर होकर अनन्तकाल तक रहता है।

इयमित्तरा निवित्ती सा पुण आवकहिया मुणेयव्वा।
भावा पुणो वि नेयं एगंतेणं तई नियमा।। (399)

सांसारिक सुख की जनक यह तो उत्सुकता की निवृत्ति है वह इत्वरा-विषयोपभोग के अन्त तक कुछ थोड़े समय तक ही रहनेवाली है, परन्तु सिद्धों के सुख से सम्बद्ध जो वह उत्सुकता की निवृत्ति है वह यावत्कथिक-सदा रहनेवाली-जानना चाहिए। कारण यह कि सांसारिक सम्बन्धी वह उत्सुकता पुनः प्रवृत्त होती है, परन्तु यह सिद्धों के सुख से सम्बद्ध यह उत्सुकता नियमतः फिर से प्रवृत्त नहीं होती, क्योंकि सिद्धों के उस उत्सुकता का बीजभूत कर्म नष्ट हो चुका है। इसीलिए सिद्धों के सुख को ही यथार्थ सुख समझना चाहिए।

इय अणुहवजुत्तीहेउसंगयं हंदि निट्ठियट्ठाणं।
अत्थि सुहं सद्धेयं तह जिणचंदागमाओ य।। (400)

इस प्रकार कृतकृत्य हुए उन सिद्धों का सुख अनुभव, युक्ति और अन्वय-व्यक्तिरेकरूप हेतु से संगत है-घटित होता है तथा जिन-चन्द्रागम-सर्वज्ञ जिनप्रणीत परमागम-से जाना जाता है, ऐसी श्रद्धा करना चाहिए।

ट्रस्ट मैनेजमेंट
विश्वास करेंगे तो दिमाग मदद करेगा

जब आप यह विश्वास करते हैं कि कोई काम अंसभव है तो आपका दिमाग भी आपके सामने यह सिद्ध कर देता है कि यह काम क्यों असंभव है। परंतु जब आप विश्वास करते हैं कि कोई काम किया जा सकता है, तो आपका दिमाग भी आपके लिए उस काम को करने में जुट जाता है और तरीके तलाशने में आपकी मदद भी करने लगता है। यह विश्वास रखना कि कोई भी काम किया जा सकता है, रचनात्मक समाधानों का रास्ता खोल देता है। यह विश्वास होना कि कोई काम नहीं

किया जा सकता है, एक कमजोर सोच है, जो आपको हमेशा असफलता की ओर ही लेकर जा सकती है। अगर आपके अंदर विश्वास है, तो आप किसी भी व्यक्ति को पसंद करने के तरीके खोज सकते हैं। अगर आपके अंदर विश्वास है, तो आप अपनी व्यक्तिगत समस्याओं का हल खुद ही ढूंढ सकते हैं। विश्वास रचनात्मक शक्तियों को मुक्त कर देता है। जबकि अविश्वास इन्हें रोक देता है। इसलिए विश्वास का होना बेहद जरूरी है। विश्वास कीजिए और देखिए कि आप सोचना भी शुरू कर देंगे-रचनात्मक रूप से।

गोल मैनेजमेंट

सपने से ज्यादा अहम होता है लक्ष्य

मनुष्य ने जितनी भी तरक्की की है लक्ष्य बनाकर की है। जितने भी आविष्कार हुए हैं, चाहे वे चिकित्सा के क्षेत्र में हो, इंजीनियरिंग के क्षेत्र में हों या किसी अन्य क्षेत्र में हों, वे इसी कारण संभव हुए हैं कि उन्हें हासिल करने का लक्ष्य बनाया गया था। बिज़नेस में सफलता इसीलिए मिलती है कि टारगेट बनाया गया था। लक्ष्य, सपने से ज्यादा अहम होता है क्योंकि लक्ष्य का मतलब है-सपने पर काम करना। जब तक लक्ष्य नहीं बनाया जाता है, तब तक कुछ भी हासिल नहीं होता। लक्ष्यों के बिना आदमी इधर-उधर भटकता रहता है, कभी यह नहीं जान पाता कि वो जा कहां रहा है, इसलिए वह कहीं भी नहीं पहुंच पाता है। जब आप एक लक्ष्य बना लेते हैं और उसकी तरफ बढ़ने का संकल्प करते हैं तो आपकी ऊर्जा बढ़कर कई गुना हो जाती है।

थॉट मैनेजमेंट

सोच ही आपकी प्रगति का आधार है

काम के बारे में तीन ईंट उठाने वालों की एक कहानी मशहूर है। जब यह सवाल पूछा गया कि 'तुम क्या कर रहे हो?' तो पहले ईट जमाने वाले ने कहा-'ईंट जमा रहा हूं।' दूसरे ने जबाव दिया 'प्रति घंटे 500 रुपए कमा रहा हूं।' तीसरे ने जबाव दिया 'मैं दुनिया की सबसे महान् इमारत बना रहा हूं।' पहले दो कारीगरों में भविष्य की दृष्टि नहीं थी। वे अपने काम को सम्मान नहीं करते थे। लेकिन तीसरा आदमी जिसने यह कहा था कि वो महान् इमारत बना रहा है, उसने हमेशा ईंटे नहीं उठाई होंगी। वह आगे बढ़ा होगा,

ऊपर उठा होगा क्योंकि वह ऊंचा सोच सकता था। उसके विचार ऊंचे थे और उसे अपने काम के महत्व का अहसास था। इंसान की सोच की उसकी प्रगति का आधार है। काम के बारे में आपकी क्या सोच है, इसमें आपके बारे में पता चलता है।

लेसन्स फ्रॉम ग्रेट थिंकर्स

एपिकुरुस

जन्म-फरवरी 341 बीसी। निधन-270 बीसी

प्राचीन ग्रीक दार्शनिक थे। बेहद प्रभावशाली दर्शनशास्त्र के संस्थापक भी थे जिसे 'एपिकुरिएनिज्म' कहते हैं।

1. **समस्या** जितनी बड़ी होती है, उसे हल करने में उतना ही मजा आता है।

2. तूफान का सामना करने के बाद ही कोई अच्छा कप्तान बन सकता है। ऐसे ही अपने काम में आगे बढ़ने के लिए समस्याओं का सामना करना भी बहुत जरूरी है।

3. भगवान् से उन चीजों के लिए प्रार्थना करना व्यर्थ है जिन्हें आप खुद हासिल करने योग्य हैं।

4. जो व्यक्ति कुछ चीजों से संतुष्ट नहीं होता, वो जिंदगी में कभी संतुष्ट नहीं हो सकता।

5. जो व्यक्ति सच्चाई के मार्ग पर चलता है वो हर तरह की उलझनों से दूर होता है, लेकिन जो गलत तरीकों से आगे बढ़ता है उसका जीवन समस्याओं और उलझनों में घिरा रहता है।

6. अगर आप संतुष्ट हैं, तो आपकी गिनती दुनिया के सबसे अमीर लोगों में होगी।

शुद्ध भाव ही धर्म अशुद्ध भाव ही अधर्म

(शुद्ध भाव ही समता-शान्ति-शक्ति-मुक्ति तो अशुद्ध भाव विषमता-अशान्ति-क्षति-बन्ध)

आ. कनकनन्दी

(चाल: 1.आत्मशक्ति....2.क्या मिलिए....3.अलख निरञ्जन आतम...)

अशुभ-शुभ व शुद्ध भाव से होते, पाप-पुण्य व मोक्ष क्रम से।
अशुभ परे शुभ से शुद्ध भाव होता, दुःख (सांसारिक) सुख व मोक्ष सुख मिले।।

मोक्ष ही जीव की शुद्ध अवस्था, यह ही जीवों की निज-अवस्था।
वस्तुस्वरूप धर्म होने के कारण, शुद्ध भाव ही जीवों के परमधर्म।। (1)
इस हेतु ही समस्त धर्म आचरण, अन्यथा सभी धर्म मिथ्याचरण।
अशुद्ध भाव त्याग से प्रगटे शुद्धभाव, शुद्धभाव प्रगट हेतु समस्त धर्म।।
क्रोध-मान-माया-लोभ-मोह त्याग से, अशुद्ध भाव त्याग हो प्रगटे शुद्धभाव।
इससे प्रगट होते आत्मश्रद्धान-ज्ञान, जिससे प्रगट होते सही आचरण।। (2)
आत्मश्रद्धान से होता है ''मैं हूँ शुद्धात्मा'', क्रोधमानमायालोभमोह से मुक्तात्मा।
ऐसा ज्ञान ही होता यथार्थज्ञान, शुद्धात्मा बनने हेतु पुरुषार्थ सदाचरण।।
इसे ही कहते मोक्ष प्राप्ति का मार्ग, श्रावक-धर्म से ले श्रमण-धर्म।
अणुव्रत-महाव्रत से ले यम-नियम, दशविध धर्म व ध्यान-अध्ययन।। (3)
इस हेतु ही अन्तरंग बहिरंग तप-त्याग, अनुप्रेक्षा सोलहकारणभाव।
आलोचना प्रतिक्रमण से ले प्रत्याख्यान, उपसर्ग-परीषहजय व समाधिमरण।।
इससे समता-शान्ति-आत्मविशुद्धि बढ़े, जिससे आत्मिक शक्ति भी बढ़े।
इससे संवर-निर्जरा व मोक्ष मिले, जिससे अनन्त आत्मिक वैभव मिले।। (4)
अन्यथा समस्त धर्माचरण व्यर्थ, जिससे न होता आत्मविशुद्ध।
आत्मविशुद्धि ही समस्त धर्म, आत्मविशुद्धि हेतु पालनीय धर्म।।
आत्मविशुद्धि से मिले आत्मिक शान्ति, संवेग-वैराग्य-उपशम शक्ति।
उदार सहिष्णुता समता व तृप्ति, विनम्र सरल सहज निस्पृहवृत्ति।। (5)
गुणग्रहण व गुणगणकथनवृत्ति, दयादानसेवापरोपकार प्रवृत्ति।
मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थवृत्ति, परनिन्दाअपमान हानि से निवृत्ति।।
आत्मचिन्तन आत्मध्यान-अध्ययन, आत्मानुशासन आत्मशुद्धिकरण।
आत्मानुभव से ले आत्मिक पूर्ण विकास, इस हेतु ही धर्म अन्य अन्धविश्वास।। (6)
यह ही आध्यात्मिक धर्म परमसत्य, अन्त्योदय से सर्वोदय निमित्त।
आत्मविश्वास से ले मोक्ष पर्यन्त, 'सूरी कनक' का लक्ष्य स्वशुद्धस्वरूप।।
धर्मात्मा की महत्ता बढ़ती आत्मशुद्धि से, धर्मात्मा की महत्ता नहीं सत्ता-सम्पत्ति।।
ख्यातिपूजालाभप्रसिद्धिवर्चस्व परे, आध्यात्मिकविशुद्धि उन्नति पूरे।। (7)

नन्दौड़, दि, 12-9-2019, रात्रि-10.18

संदर्भ-

मिथ्यादृष्टि सहस्त्रेभ्यो परमेको जिनाश्रितः।

जिनाश्रित-सहस्त्रेभ्यो वरमेको उपासकः।। (336)

हजारों मिथ्यादृष्टियों की अपेक्षा एक जैन अच्छा है और हजारों जैनों की अपेक्षा एक श्रावक अच्छा है।

श्रावकाणां सहस्त्रेभ्यो वरमेको ह्यणुव्रती।

अणुव्रती-सहस्त्रेभ्यो वरमेको महाव्रती।। (337)

हजारों श्रावकों की अपेक्षा एक अणुव्रती अच्छा है और हजारों अणुव्रतियों की अपेक्षा एक महाव्रती अच्छा है।

महाव्रति-सहस्त्रेभ्यो वरमेको जिनागमी।

जिनागमिसहस्त्रेभ्यो वरमेकः स्वतत्त्ववित्।। (338)

हजारों महाव्रतियों की अपेक्षा एक जिनागम का ज्ञाता अच्छा है और हजारों जिनागम के ज्ञाताओं की अपेक्षा एक आत्मतत्त्व को जानने वाला अच्छा है।

स्वतत्त्ववित्ससहस्त्रेभ्यो वरमेको दयान्वितः।

दयान्वितसमो यावन्न भूतो न भविष्यति।। (339)

हजारों आत्मतत्त्व को जानने वालों की अपेक्षा एक दया सहित मनुष्य अच्छा है क्योंकि दया सहित मनुष्य के समान अन्य मनुष्य न हुआ है और न होगा।

वशीकृतेन्द्रियग्रामः कृतज्ञो विनयान्वितः।

निष्कषायः प्रशान्तात्मा सम्यग्दृष्टिर्महाशुचिः।। (340) स.कौमुदी

जिसने इन्द्रियों के समूह को वश में कर लिया है, जो कृतज्ञ है, विनय से सहित है, जो कषाय रहित है, जिसकी आत्मा अत्यन्त शान्त है तथा जो सम्यग्दृष्टि है वह महापवित्र है।

इत्यादि गुणों से सहित सोमप्रभ राजा, राज्य छोड़कर कालक्रम से उग्र तपश्चरण कर तथा संयम का पालन कर अन्तरङ्ग में सुखी हो गया।

पापाद् दुःखं धर्मात्सुखमिति सर्वजनसुप्रसिद्धमिदम्।

तस्माद्विहाय पापं चरतु सुखार्थी सदा धर्मम्।। (8) आत्मनुशासन

पाप से दुःख और धर्म से सुख होता है, यह बात सब जनों में भली प्रकार प्रसिद्ध है-इसे सब ही जानते हैं। इसलिये जो भव्य प्राणी सुख की अभिलाषा करता है उसे पाप को छोड़कर निरन्तर धर्म का आचरण करना चाहिये।

यदि पापनिरोधोऽन्य-सम्पदा किं प्रयोजनं।

अथ पापास्रवोऽस्त्यन्य,-सम्पदा किं प्रयोजनं।। (27) रत्नकरण्डश्रा.

यदि पाप का निरोध है तो दूसरी सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है? और यदि पाप का आस्रव है तो अन्य सम्पत्ति से क्या प्रयोजन है?

शुद्धोपयोग का फल अक्षय अनंत सुख

अइसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं।

अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धवओगप्पसिद्धाणं।। (13) प्र.सा.

The happiness of those who are famous for their pure consciouness or serenity is transcendental, born from the self, supersenuous, incomparable, infinite and indestructible.

आगे आचार्य शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनों को निश्चय नय से त्यागने योग्य जान करके शुद्धोपयोग के अधिकार को प्रारम्भ करते हुए तथा शुद्ध आत्मा की भावना को स्वीकार करते हुए अपने स्वभाव में रहने के इच्छुक जीव का उत्साह बढ़ाने के लिये शुद्धोपयोग का फल प्रकाश करते हैं अथवा दूसरी पातनिका या सूचना यह है कि यद्यपि अग्र में आचार्य शुद्धोपयोग का फल ज्ञान और सुख संक्षेप या विस्तार से कहेंगे तथापि यहाँ भी इस पीठिका में सूचित करते हैं अथवा तीसरी पातनिका यह है कि पहले शुद्धोपयोग का फल निर्वाण बताये थे अब यहाँ निर्वाण का फल अनंत सुख होता है ऐसा कहते हैं। इस तरह तीन पातनिकाओं के भाव को मन में धरकर आचार्य आगे का सूत्र कहते हैं।

(शुद्धवओगप्प सिद्धाणं) शुद्धोपयोग में प्रसिद्धों को अर्थात् वीतराग परम सामायिक शब्द से कहने योग्य शुद्धोपयोग के द्वारा जो अरहंत और सिद्ध हो गए हैं उन परमात्माओं को (अइसयं) अतिशयरूप अर्थात् अनादि काल के संसार में चले

आए इन्द्रियों के सुखों से भी अपूर्व अद्भुत परम आह्लाद रूप होने से आश्चर्यकारी, (आदसमुत्थ) आत्मा से उत्पन्न अर्थात् रागद्वेषादि विकल्प रहित अपने शुद्धात्मा के अनुभव से पैदा होने वाला, (विसयातीद) विषयों से शून्य अर्थात् इन्द्रिय विषय रहित परमात्मतत्त्व के विरोधी पाँच इन्द्रियों से रहित (अणोवमं) उपमा-रहित अर्थात् दृष्टांत रहित परमानन्दमय एक लक्षण को रखने वाला, (अणंतं) अनंत अर्थात् अनन्त भविष्यत् काल में विनाश रहित अथवा अप्रमाण (च) तथा (अव्वुछिण्णं) विच्छिन्नरहित अर्थात् असाता का उदय न होने से निरन्तर रहने वाला (सुहं) आनन्द रहता है। यही सुख उपादेय है, इसी की निरन्तर भावना करनी योग्य है।

समीक्षा-अशुभोपयोग से पाप का बंध तो शुभोपयोग से पुण्य का बंध होता है परन्तु आध्यात्म दृष्टि से दोनों बंध स्वरूप है और बंध संसार का कारण है। इसलिए शुभ अशुभ भाव से रहित आत्मा का जो स्वस्वरूप है उसी रूप जब जीव परिणमन करता है तब सम्पूर्ण शुभ, अशुभ बंधन को तोड़कर जीव परम स्वातंत्र्य मोक्ष सुख को प्राप्त करता है। आत्मानुशासन में गुणभद्र स्वामी ने कहा भी है-

तत्राप्यद्यं परित्याज्यं शेषौ न स्तः स्वतः स्वयम्।
शुभं च शुद्धे त्यक्त्वान्ते प्राप्नोति परमं परम्।। (240)

पूर्व लोक में जिन तीन को शुभ, पुण्य और सुख को हितकारक बतलाया है उनमें भी प्रथम का (शुभ का) परित्याग करना चाहिए। ऐसा करने से शेष रहे पुण्य और सुख से दोनों स्वयं की नहीं रहेंगे, इस प्रकार शुभ को छोड़कर और शुद्ध स्वभाव में स्थित होकर जीव अनन्त में उत्कृष्ट पद (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है।

यस्य पुण्यं च पापं च निष्फलं गलति स्वयम्।
स योगी तस्य निर्वाणं न तस्य पुनरास्रव।। (246)

जिस वीतराग के पुण्य और पाप दोनों फलदान के बिना स्वयं अविपाक निर्जरा स्वरूप से निर्जीण होते हैं वह योगी कहा जाता है और उसके कर्मों का मोक्ष होता हैं, किन्तु आस्रव नहीं होता है।

धम्महँ अत्थहँ कामहँ वि एयहँ सलयहँ मोक्खु।
उत्तमु पभणहिं णाणि जिय अण्णें जेण ण सोक्खु।। प.प्र.

हे जीव! धर्म, अर्थ और काम, मोक्ष इन सब पुरुषार्थों में से मोक्ष को उत्तम

ज्ञानी पुरुष कहते हैं, क्योंकि अन्य धर्म, अर्थ कामादि पदार्थों में परम सुख नहीं है।

जइ जिय उत्तमु होइ णवि एयहँ सलयहँ सोइ।
तो किं तिण्णि वि परिहरवि जिण वच्चहिं पर-लोइ।। (4)

हे जीव! जो इन सबों से मोक्ष उत्तम ही नहीं होते तो श्री जिनवर देव धर्म अर्थ काम इन तीनों को छोड़कर मोक्ष में क्यों जाते? इसलिए जाते हैं कि मोक्ष सबसे उत्कृष्ट है।

उत्तमु सुक्खु ण देइ जइ उत्तमु मुक्खु ण होइ।
तो किं इच्छहिं बंधणहिं बद्धा पसुय वि सोइ।। (5)

जो मोक्ष उत्तम सुख को न देवे तो उत्तम नहीं होवे और जो मोक्ष उत्तम ही नहीं होवे तो बंधनों से बंधे पशु भी उस मोक्ष की ही इच्छा क्यों करें?

जो उत्तम अविनाशी सुख को नहीं देवे तो मोक्ष उत्तम भी नहीं हो सकता, उत्तम सुख देता है, इसलिए मोक्ष सबसे उत्तम है। जो मोक्ष में परमानंद नहीं होता तो है जीव सिद्ध परमेष्ठी भी सदा काल उसी मोक्ष को क्यों सेवन करते? कभी भी न सेवते।

तीन लोक में जीवों को मोक्ष के सिवाय कोई भी वस्तु सुख का कारण नहीं है, एक सुख का कारण मोक्ष ही है इस कारण तू नियम से मोक्ष ही चिंतवन कर जिसे कि महामुनि भी चिंतवन करते है।

हरि-हर-बंभु वि जिणवर वि मुणि-वर विंद वि भव्व।
परम-णिरंजणि मणु धरिवि मुक्खु जि झायहिं सव्व।। (8)

नारायण वा इन्द्र, रूद्र अन्य ज्ञानी पुरुष श्री तीर्थंकर परमदेव मुनीश्वरों के समूह तथा अन्य भी भव्य जीव परम निरंजन में मन रखकर सब ही मोक्ष को ही ध्यावते हैं। यह मन विषय कषायों में जो जाता है, उसको पीछे लौटाकर अपने स्वस्वरूप में स्थिर अर्थात् निर्वाण को साधने वाले होते हैं।

दंसणु णाणु अणंत-सुहु समउ ण तुट्टइ जासु।
सो पर सासउ मोक्ख-फलु विज्जउ अत्थि ण तासु।। (11)

जिस मोक्ष पर्याय के धारक शुद्धात्मा के केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंत-सुख और अनंतवीर्य इन अनंतचतुष्टयों को आदि लेकर अनंत गुणों का समूह एक समयमात्र भी नाश नहीं होता, अर्थात् हमेशा अनंत गुण पाये जाते हैं उस शुद्धात्मा के

वही निश्चय से हमेशा रहने वाला मोक्ष का फल है, इसके सिवाय मोक्ष फल नहीं है, और इससे अधिक श्रेष्ठ पद दूसरी वस्तु कोई नहीं है।

भाउ-विसुद्धउ अप्पणउ धम्मु भणेविणु लेहु।
चउ-गइ-दुक्खहँ जो धरइ जीउ पडंतउ एहु।। (68)

मिथ्यात्व रागादि से रहित शुद्ध परिणाम है, वही अपना है और अशुद्ध परिणाम अपने नहीं है, सो शुद्ध भाव को ही धर्म समझकर अंगीकार करो। जो आत्म धर्म चारों गतियों के दुःखों से संसार में पड़े हुए जीव को निकालकर आनन्द स्थानों में रखता है। वेदव्यास ने नारायण श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से इस तथ्य का प्रतिपादन निम्न प्रकार किया है।

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदः संज्ञैगच्छन्त्यमूढ़ाः पदमव्ययं तत्।। (5)

जिसने मान-मोह का त्याग किया है, जिसने आसक्ति से होने वाले दोषों को दूर किया है, जो आत्मा में नित्य निमग्न है, जिसके विषय शांत हो गये हैं, जो सुख-दुःखरूपी द्वंद्वों से मुक्त है, वह ज्ञानी अविनाशी पद को पाता है।

शुद्धोपयोगी का स्वरूप

सुविदिदपयत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो।
समणो समसुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवओगो त्ति।। (14) प्र.सा.

आगे जिस शुद्धोपयोग के द्वारा पहले कहा हुआ आनन्द प्रगट होता है उस शुद्धोपयोग में परिणमन करने वाले पुरुष का लक्षण प्रगट करते हैं-

(सुविदिदपदत्थसुत्तो) भले प्रकार पदार्थ और सूत्रों को जानने वाला, अर्थात् संशय, विमोह, विभ्रह रहित होकर जिसने अपने शुद्धात्मा आदि पदार्थों को तथा उनके बताने वाले सूत्रों को जाना है और उनकी रूचि प्राप्त की है, (संजमतवसंजुदो) संयम और तप-संयुक्त है अर्थात् जो बाह्य में द्रव्येन्द्रियों से उपयोग हटाते हुए और पृथ्वी आदि छह कायों की रक्षा करते हुए तथा अंतरंग में अपने शुद्ध आत्मा के अनुभव के बल से अपने स्वरूप में संयम रूप ठहरे हुए हैं तथा बाह्य व अंतरंग बारह प्रकार तप के बल से काम, क्रोध आदि शत्रुओं से जिसका प्रताप खण्डित नहीं

होता है और जो अपने शुद्ध आत्मा में तप रहे हैं। जो (विगदरागो) वीतराग हैं अर्थात् शुद्ध आत्मा की भावना के बल से सर्व रागादि दोषों से रहित हैं (समसुहदुक्खो) सुख-दुःख के समान हैं अर्थात् विकार रहित और विकल्प रहित समाधि से उत्पन्न तथा परमानन्द सुखरस में लवलीन ऐसी निर्विकार स्वसंवेदन रूप जो परम चतुराई उसमें स्थिरिभूत होकर इष्ट-अनिष्ट इन्द्रियों के विषयों में हर्ष-विषाद को त्याग देने से समता भाव के धारी हैं ऐसे गुणों को रखने वाला (समणो) परममुनि (सुद्धोपओगो) शुद्धोपयोग स्वरूप (भणिओ) कहा गया है (त्ति) ऐसा अभिप्राय है।

समीक्षा-13 नम्बर सूत्र में कुन्दकुन्द स्वामी ने शुद्धोपयोग का जो फल आत्मोत्थ, अतिशय, अक्षय सुख बताया है उस सुख को प्राप्त करने का माध्यम जो शुद्धोपयोग है उसका वर्णन इस गाथा में किया गया है। जीव का जो शुद्ध स्वरूप रागद्वेष से रहित है उसको ही शुद्धोपयोग कहते हैं। जैसे अशुद्ध स्वर्ण से जो अलंकार बनाया जाता है वह अलंकार अशुद्ध रहता है किंचित् शुद्ध स्वर्ण से जो अलंकार बनाया जाता है, वह किंचित् शुद्ध रहता है, पूर्ण शुद्ध सुवर्ण से जो अलंकार बनाया जाता है वह पूर्ण शुद्ध रहता है। इसी प्रकार मिथ्यात्व सहित जीव को जो उपयोग होता है वह विशेषताः अशुभ होता है, सम्यग्दर्शन सहित धर्मानुराग रूप जो उपयोग होता है वह शुभोपयोग होता है और रागद्वेष से रहित निर्मल आत्मा का उपयोग शुद्धोपयोग होता है। शुद्धोपयोग का प्रारम्भ श्रेणी आरोहण करने वाले मुनि को सातिशय सप्तम गुणस्थान से होता है और यह शुद्धोपयोग उत्तरोत्तर शनैः शनैः बढ़ता हुआ बारहवें गुणस्थान में पूर्ण होता है। इसके आगे यह शुद्धोपयोग 13-14 वें गुणस्थान में भी रहता है और सिद्ध अवस्था में भी रहता है। शुद्धोपयोग की प्राप्ति के बारे में वर्णन करते हुए देवसेन आचार्य ने भी कहा है-

सेवो सुद्धो भावो तस्सुवलंभोय होइ गुणठाणे।
पणदहपमादरहिए सलयवि चारित्तजुत्तस्स।। (6)

इन तीनों प्रकार के भावों में शुद्ध भाव ही सेव्य है, धारण योग्य है तथा उस शुद्ध भाव की प्राप्ति सकल चारित्र को धारण करने वाले महामुनियों के पन्द्रह प्रमादों से रहित ऐसे सातवें अप्रमत्त गुणस्थान में होती हैं।

परमात्मा प्रकाश में योगेन्द्र देव ने कहा भी है-

बिण्णि वि दोस हवंति तसु जो सम-भाउ करेइ।

बंधु जि णिहणइ अप्पणउ अणु जगु गहिलु करेइ।। (44)

जो साधु राग द्वेष के त्याग रूप समभाव को करता है, उस तपोधन के दो दोष होते हैं। एक तो अपने बंध को नष्ट करता है, दूसरे जगत् के प्राणियों को बावला-पागल बना देता है।

अण्णु वि दोसु हवेइ तसु जो सम-भाउ करेइ।

वियुल हवेविणु इक्कलउ उप्परि जगहँ चडेइ।। (45)

जो समभाव को करता है, उस तपोधन के दूसरा भी दोष है। क्योंकि पर (परमात्मा) के अधीन होता है, और अपने आधीन भी शत्रु (मोहादि) को छोड़ देता है।

अण्णु वि दोसु हवेइ तसु जो समभाउ करेइ।

वियलु हवेविणु इक्कलउ उप्परि जगहँ चडेइ।। (46)

जो तपस्वी महामुनि समभाव को करता है, उसके दूसरा भी दोष होता है, जो कि शरीर रहित हो के अथवा बुद्धि धन आदि से भ्रष्ट होकर अकेला लोक के शिखर पर अथवा सबके ऊपर चढ़ता है।

जा णिसि सयलहँ देहियहँ जोग्गिउ तहिं जग्गेइ।

जहिं पुणु जग्गइ सयलु जगुसा णिसि मणिवि सुवेइ।। (46-1)

जो सब संसारी जीवों की रात है, उस रात में परम तपस्वी जागता है और जिसमें सब संसारी जीव जाग रहे हैं, उस दशा को योगी रात मानकर योगनिद्रा में सोता है।

भणइ भणावह णावि थुणई णिंदह णाणि ण कोई।

सिद्धिहिं कारणु भाउ समु जाणँतउ पर सोइ।। (48)

निर्विकल्प ध्यानी पुरुष न किसी का शिष्य होकर पढ़ता है, न गुरु होकर किसी को पढ़ाता है, न किसी की स्तुति करता है, न किसी की निंदा करता है, मोक्ष का कारण एक समभाव को निश्चय से जानता हुआ केवल आत्म स्वरूप में अचल हो रहा है, अन्य कुछ भी शुभ-अशुभ कार्य नहीं करता।

शुद्धोपयोगी का फल-अनन्तज्ञान

उवओगविसुद्धो जो विगदावरणंतरायमोहरओ।
भूदो सयमेवादा जादि पारं णेयभूदाणं।। (15) प्र.सा.

He, who has manifested pure consciousness and is free from (knowledge-and conation) obscuring, obstructive and deluding karmic dust, has become self-sufficent; and fully comprehends the objects of knowledge.

आगे अब यह कहते हैं कि शुद्धोपयोग के लाभ होने के पीछे केवलज्ञान होता है अथवा दूसरी पातनिका यह है कि श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव संबोधन करते हैं कि, हे शिव कुमार महाराज! कोई भी निकट भव्य जीव जिसकी रूचि संक्षेप में जानने की है पीठिका के व्याख्यान को ही सुनकर आत्म-कार्य-करने लगता है। दूसरा कोई जीव जिसकी रूचि विस्तार से जानने की है इस बात को विचार करके कि शुद्धोपयोग के द्वारा सर्वज्ञपना होता है और तब अनंतसुख आदि प्रगट होते हैं फिर अपने आत्मा का उद्धार करता है, इसलिए अब विस्तार से व्याख्यान करते हैं-

(जो उवआगेविसुद्धो) जो उपयोग करके विशुद्ध है अर्थात् जो शुद्धोपयोग परिणामों में रहता हुआ शुद्ध हो जाता है सो (आदा) आत्मा (सयमेव) ही अपने आप ही अपने पुरुषार्थ से (विगदावरणांतराय-मोह-रओ-भूदो) आवरण, अंतराय और मोह की रज से छूटकर अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण अंतराय तथा मोहनीय इन चार घातिया कर्मों के बंधनों से बिल्कुल अलग होकर (णेयभूदाण) ज्ञेय पदार्थों के (पारं) अंत को (जादि) प्राप्त होता है अर्थात् सर्व पदार्थों का ज्ञाता हो जाता है।

इसका विस्तार यह है कि जो कोई मोह-रहित शुद्ध आत्मा के अनुभव-लक्षणमय शुद्धोपयोग से अथवा आगम भाषा के द्वारा पृथक्त्ववितर्कविचार नाम के पहले शुक्ल ध्यान से पहले सब मोह को नाशकर के फिर पीछे रागादि विकल्पों की उपाधि से शून्य स्वसंवेदन लक्षणमय एकत्ववितर्क अवीचार नामक दूसरे शुक्लध्यान के द्वारा क्षीणकषाय गुणस्थान में अंतर्मुहूर्त ठहरकर उसी गुणस्थान के अंत समय में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय इन तीन घातिया कर्मों को एक साथ नाश करता है, यह तीन जगत् तीन काल की समस्त वस्तुओं के भीतर रहे हुए अनन्त स्वभावों को

एक साथ प्रकाशने वाले केवलज्ञान को प्राप्त कर लेता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि शुद्धोपयोग से सर्वज्ञ हो जाता है।

समीक्षा–प्रत्येक जीव द्रव्यदृष्टि से शक्तिः अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख और अनंतवीर्यादि अनंतगुणों का अखण्ड पिण्ड है। जैसे आकाश में सूर्य होते हुए भी घने बादल के कारण सूर्य-रश्मि धरती पर नहीं पहुँचती है उसी प्रकार ज्ञानावरणादि कर्मों रूपी बादल से आवृत्त होने के कारण अनंतज्ञानादि गुण छिप जाते हैं तथापि वे पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होते हैं।

जैसे-बादल विलीन होने पर सूर्य की किरण धरती पर पहुँचती है वैसे ज्ञानावरण कर्म क्षय होने पर अनंतज्ञानादि प्रगट हो जाते हैं। जैसे-दर्पण के ऊपर घन धूलि के आवृत्त होने पर उस दर्पण की स्वच्छता आवृत्त हो जाती है एवं प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई नहीं देता उसी प्रकार ज्ञान रूपी दर्पण के ऊपर ज्ञानावरणादि कर्म रूपी धूली के आवृत्त होने पर ज्ञान की स्वच्छता प्रगट नहीं होती है। जिससे उस ज्ञान रूपी दर्पण में ज्ञेयों के प्रतिबिम्ब स्पष्ट प्रतिभासित नहीं होते हैं परन्तु जैसे धूली को पूर्ण रूप से हटाकर दर्पण को स्वच्छ कर दिया जाता है तब उस स्वच्छ दर्पण में प्रतिबिम्ब स्वच्छ प्रतिभासित होता है उसी प्रकार जब ज्ञानावरणादि रूपी धूली पूर्ण रूप से निवृत्ति हो जाती है जिससे ज्ञानरूपी दर्पण स्वच्छ हो जाता है-जिसके कारण समस्त लोक-अलोक रूपी ज्ञेय प्रतिभासित होते हैं। केवलज्ञानोत्पति का कारण बताते हुए आचार्य उमास्वामी ने तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है-

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्।।(1)

मोक्ष का क्षय होने से ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान प्रकट होता है।

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।

दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र।।(1) पु.सि.

जिसमें सम्पूर्ण अनंतपर्यायों से सहित समस्त पदार्थों की माला अर्थात् समूह दर्पण के तल भाग के समान झलकती है, वह उत्कृष्ट ज्योति अर्थात् केवलज्ञानरूपी प्रकाश जयवंत हो।

गोम्मटसार जीवकाण्ड में मोहक्षय की प्रक्रिया एवं केवलज्ञान प्राप्त करने का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है-

णिस्सेसखीणमोहो, फलिहामलभायणदुयसमचित्तो।
खीणकसाओ भण्णदि, णिग्गंथो वीयरायेहिं।। (62)

जिस निर्ग्रन्थ का चित्त मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षीण हो जाने से स्फटिक के निर्मल पात्र में रखे हुए जल के समान निर्मल हो गया है उसको वीतराग देव ने क्षीणकषाय नाम का बारहवें गुणस्थानवर्ती कहा है।

जिस छद्मस्थ की वीतरागता के विरोध मोहनीयकर्म के द्रव्य एवं भाव दोनों ही प्रकारों का अथवा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशरूप चारों भेदों का सर्वथाबंध, उदय, उदीरणा एवं सत्त्व की अपेक्षा क्षय हो जाता है वह बारहवें गुणस्थान वाला माना जाता है इसलिए आगम में इसका नाम क्षीणकषाय वीतरागछद्मस्थ ऐसा बताया है। यहां 'छद्मस्थ' शब्द अन्त्य दीपक है और 'वीतराग' शब्द नाम, स्थापना, और द्रव्यरूप वीतराग की निवृत्ति के लिए है। तथा वहाँ पर पाँच भावों में से मोहनीय के सर्वथा अभाव की अपेक्षा से एक क्षायिक भाव ही माना गया है।

तेरहवें गुणस्थान का स्वरूप

केवलणाणदिवायरकिरण कलावप्पणासिअण्णाणो।
णवकेवललद्धुग्गम सुजणियपरमप्पववएसो।। (63)
असहायणाण दंसणसहियो इदि केवली हु जोगेण।
जुत्तोत्ति सजोगिजिणो, अणाइणिहणारिसेउत्तो।। (64)

जिसका केवलज्ञान रूपी सूर्य की अविभाग प्रतिच्छेद रूप किरणों के समूह (उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्रमाण) अज्ञान अंधकार सर्वथा नष्ट हो गया हो और जिसको नव केवललब्धियों के (क्षायिक-सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) प्रकट होने से परमात्मा यह व्यपदेश (संज्ञा) प्राप्त हो गया है, वह इन्द्रियाँ, आलोक आदि की अपेक्षा न रखने वाले ज्ञान दर्शन से युक्त होने के कारण केवली और योग से युक्त रहने के कारण सयोग तथा घाती कर्मो से रहित होने के कारण जिन कहा जाता है, ऐसा अनादिनिधन आर्ष आगम में कहा हैं।

बारहवें गुणस्थान का विनाश होते होते ही जिसके घाती कर्म और अघाती कर्मों की 16 प्रकृति, इस तरह कुल मिलाकर 63 कर्म प्रकृतियों के नष्ट होने से अनन्तचतुष्टय-अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य तथा नव

केवललब्धि प्रकट हो चुकी हैं किन्तु साथ ही जो योग से भी युक्त हैं, उस अरिहन्त परमात्मा को तेरहवें गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

केवलणाणं साई अपज्जवसियं ति दाइयं सुत्ते।
तेत्तियमित्तोत्तूणा केइ विसेसं ण इच्छंति।। (34) स.सू

केवलज्ञान सादि अविनश्वर है यह सूत्र में दर्शाया गया है, इतने मात्र से कुछ विशेष को नहीं मानते हैं।

जे संघयणाईया भवत्थकेवलि विसेसपज्जाया।
ते सिज्झमाणसमये ण होंति विगयं तओ होइ।। (35)

जो तेरहवें गुणस्थानवर्ती भवस्थकेवली वज्रवृषभनाराचसंहनन, केवलदर्शन, केवलज्ञान आदि से सम्पन्न है, जिनके आत्मप्रदेशों का एक क्षेत्रावगाह रूप सम्बन्ध है तथा अघातिया कर्मों का नाशकर जो सिद्ध पर्याय को प्राप्त करने वाले हैं, उनके शरीरादि आत्म प्रदेशों का एवं केवलज्ञान, दर्शनादि का सम्बन्ध छूट जाता है और सिद्ध अवस्था रूप नवीन सम्बन्ध होता है, इसलिए उन्हें पर्यवसित कहा जाता है।

सिद्धत्तणेण य पुणो उप्पण्णो एस अत्थपज्जाओ।
केवलभावं तु पडुच्च केवलं दाइयं सुत्ते।। (36)

यह केवलज्ञान रूप अर्थपर्याय सिद्धपने में उत्पन्न होती है। केवलभाव की अपेक्षा से यह कभी नष्ट नहीं होती। इस भाव को लेकर ही सूत्र में 'केवल' को शाश्वत बताया गया है। एक बार उत्पन्न होने के बाद वह कभी नष्ट नहीं होती। इसी प्रकार किसी प्रकार का आवरण भी उस पर नहीं आता। वास्तव में यह कथन व्यवहार दृष्टि से है, परमार्थ से तो वह अनादि, अनन्त है। जीव के स्वाभाविक गुण उसमें सदा, सर्वदा विद्यमान ही रहते हैं। इसलिये केवलज्ञान, केवलदर्शन आदि शाश्वत ही हैं।

शुद्धोपयोग का फल पूर्ण स्वतंत्रता

तह सो लद्धसहावो सव्वण्हू सव्वलोगपदिमहिदो।
भूदो सयमेवादा हवदि सयंभु त्ति णिद्दिट्ठो।। (16) प्र.सा.

आगे कहते हैं कि शुद्धोपयोग से उत्पन्न जो शुद्ध आत्मा का लाभ है उसके

होने में भिन्न कारक की आवश्यकता नहीं है किन्तु अपने आत्मा ही के आधीन है।

(तह) तथा (सो आदा) वह आत्मा (सयमेव) स्वयं ही (लद्धसहावो भूदो) स्वभाव का लाभ करता हुआ अर्थात् निश्चय रत्नत्रय लक्षणमय शुद्धोपयोग के प्रसाद से जैसे आत्मा सर्व का ज्ञाता हो जाता है वैसा वह शुद्ध आत्मा के स्वभाव का लाभ करता हुआ (सिव्वण्हु) सर्वज्ञ च (सव्वलोयपदिमहिदो) सर्वलोक का पति तथा पूजनीय (हवदि) हो जाता है इसलिये वह (सयंभु त्ति) स्वयंभू इस नाम से (णिद्दिट्ठो) कहा गया है।

भाव यह है कि निश्चय से कर्त्ता कर्म आदि छः कारक आत्मा में ही हैं। अभिन्न कारक की अपेक्षा यह आत्मा चिदानन्दमई एक चैतन्य स्वभाव के द्वारा स्वतन्त्रता रखने से स्वयं ही अपने भाव का कर्त्ता है तथा नित्य आनन्दमय एक स्वभाव से स्वयं अपने स्वभाव को प्राप्त होता है इसलिये यह आत्मा स्वयं ही कर्म है। शुद्ध चैतन्य स्वभाव से यह आत्मा आप ही साधकतम है अर्थात् अपने भाव से ही आपका स्वरूप झलकता है इसलिये यह आत्मा आप ही कारण हैं। विकार रहित परमानन्दमयी एक परिणतिरूप लक्षण को रखने वाला शुद्धात्मभाव रूप क्रिया के द्वारा अपने आप को अपना स्वभाव समर्पण करने के कारण यह आत्मा आप ही संप्रदान स्वरूप है। तैसे ही पूर्व में रहने वाले मति श्रुत आदि ज्ञान के विकल्पों के नाश होने पर भी अखंडित एक चैतन्य के प्रकाश के द्वारा अपने अविनाशी स्वभाव से ही यह आत्मा आपका (स्वयं का) प्रकाश करता है इसलिये यह आत्मा आप ही अपादान है तथा यह निश्चय शुद्ध चैतन्य आदि गुण स्वभाव का स्वयं ही आधार होने से आप ही स्वयं अधिकरण होता है। इस तरह अभेदषट्कारक से स्वयं ही परिणमन करता हुआ यह आत्मा परमात्मास्वभाव तथा केवलज्ञान की उत्पत्ति में भिन्न कारक की अपेक्षा नहीं रखता है इसलिए आप ही स्वयंभू कहलाता है।

समीक्षा–जैसे बीज में शक्ति रूप से वृक्ष निहित है उसी प्रकार प्रत्येक जीव में भी शक्ति रूप में परमात्मा निहित है। जब योग्य बीज को जलवायु, सूर्यकिरण आदि बाह्य निमित्त मिलते हैं तब वह सुप्तरूप वृक्ष जागृत होता और शनैः शनैः वृद्धि को प्राप्त करता हुआ विशाल वृक्षरूप में परिणमन कर लेता है। इसी प्रकार प्रत्येक आत्मा में परमात्मा सुप्त रूप में गुप्त रूप में रहता है और योग्य अंतरंग

बहिरंग साधनों से वह आत्मा ही परमात्मा रूप से परिणमित होकर प्रकट हो जाता है। पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा भी है-

योग्योपादानयोगेन दृषदः स्वर्णता मता।

द्रव्यादिस्वादिसंपत्तावात्मनोऽप्यात्मता मता।। (2)

जिस तरह सुवर्णरूप पाषाण योग्य बाह्य कारण, योग्य उपादानरूप कारण के सम्बन्ध से पाषाण (पत्थर) सुवर्ण हो जाता है, उसी तरह द्रव्यादि चतुष्टयरूप-सुद्रव्य, सुक्षेत्र, सुकाल और स्वभावरूप-सुयोग्य सम्पूर्ण सामग्री के विद्यमान होने पर निर्मल चैतन्य स्वरूप आत्मा की उपलब्धि हो जाती है।

गीता में नारायणकृष्ण ने भी कहा है-

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तज्योतिरेव यः।

स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति।। (24)

जिसे आंतरिक आनन्द है, जिसके हृदय में शांति है, जिसे निश्चित रूप से अंतर्ज्ञान हुआ है वह ब्रह्मरूप हुआ योगी ब्रह्म निर्वाण पाता है।

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।

छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।। (25)

जिनके पाप नष्ट हो गये हैं, जिनकी शंकाएँ शांत हो गई हैं, जिन्होंने मन पर अधिकार कर लिए हैं और जो प्राणी मात्र के हित में ही लगे रहते हैं, ऐसे ऋषि ब्रह्म निर्वाण पाते हैं।

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।

अभितो ब्रह्मनिर्वाण वर्तते विदितात्मनाम्।। (26)

जो अपने को पहचानते हैं, जिन्होंने काम क्रोध को जीता है और जिन्होंने मन को वश किया है, ऐसे यतियों को सर्वत्र ब्रह्म निर्वाण ही है।

स्पर्शान्कृत्वा वहिर्बाह्याश्चक्षुवान्तरे भ्रुवोः।

प्राणापानो समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौः।। (27)

यतेन्द्रिय मनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।

विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एवं सः।। (28)

बाह्य विषय-भोगों का बहिष्कार करके, दृष्टि को भृकुटी के बीच में स्थिर करके, नासिका द्वारा आने-जाने वाले प्राण और अपान वायु की गति को एक समान

रखकर, इन्द्रिय, मन और बुद्धि को वश में करके तथा इच्छा, भय और क्रोध से रहित होकर जो मुनि मोक्षपरायण रहता है, वह सदा मुक्त ही है।

महात्मा बुद्ध ने भी अपने धर्मोपदेश में इसी भाव को प्रकट करने वाली गाथाएँ कही थीं जिनका संकलन धम्मपद में किया गया है जो निम्न प्रकार है-

निट्ठङ्गतो असन्तासी वीततण्हो अनङ्गणो।
अच्छिन्दि भवसल्लानि अन्तिमोयं समुस्सयो।। (18)

जिसने अर्हत्व पा लिया है, जो राग आदि के त्रास से निर्भीक है जो तृष्णा-रहित और निर्मल है, जिसने भव के शल्यों को काट दिया, यह उसका अन्तिम देह है।

सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो।
सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुत्तो सयं अभिञ्ञय कमुद्दिसेय्यं।। (20)

मैं (राग आदि) सभी को परास्त करने वाला हूँ, सभी बातों का जानकार हूँ, सभी धर्मों (इन्द्रिय तृष्णा आदि) में अलिप्त हूँ, सर्वत्यागी हूँ, तृष्णा के नाश से मुक्त हूँ, (विमल ज्ञान को) अपना ही जानकर मैं अब किसको अपना गुरु बतलाऊँ?

अभेदरत्नत्रयधारीः धर्म है-

जो णिहदमोहदिट्ठी आगमकुसलो विरागचरियम्हि।
अब्दुट्ठिदो महप्पा धम्मो त्ति विसेसिदो समणो।। (92) प्र.सा.

The great souled Sramana, who has put an end to his delusive vision, who is expert in scriptures and who has established himself in conduct free from attachment, is qualified as Dharma.

आगे आचार्य महाराज ने पहली नमस्कार की गाथा में (उवसयं यामि सम्मं) आदि में जो प्रतिज्ञा की थी उसके पीछे (चारित्तं खलु धम्मो) इत्यादि सूत्र से चारित्र के धर्मपना व्यस्थापित किया था तथा (परिणमदि जेण दव्वं) इत्यादि सूत्र से आत्मा के धर्मपना कहा था इत्यादि सो सब शुद्धोपयोग के प्रसाद से साधने योग्य है। अब यह कहते है कि निश्चयरत्नत्रय में परिणमन करता हुआ आत्मा ही धर्म है अथवा दूसरी पातनिका यह है कि सम्यक्त्व के बिना मुनि नहीं होता है ऐसे मिथ्यादृष्टि श्रमण से धर्मसिद्ध नहीं होता है, तब फिर किस तरह श्रमण होता है ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हुए इस ज्ञानाधिकार को संकोच करते हैं।

(जो समणो) जो साधु (णिहदमोदिट्ठी) तत्त्वार्थ श्रद्धान रूप व्यवहार सम्यक्त्व के द्वारा उत्पन्न निश्चय सम्यग्दर्शन में परिणमन करने से दर्शन मोह को नाश कर चुका है, (आगमकुसलो) निर्दोष परमात्मा के कहे हुए परमागम के अभ्यास से उपाधि रहित स्वसंवेदनज्ञान की चतुराई से आगमज्ञान में प्रवीण है, (विरागचरित्तम्हि अब्भुट्ठिदो) व्रत, समिति, गुप्तिआदि बाहरी चारित्र के वश से अपने शुद्धात्मा में निश्चित परिणमन रूप वीतराग चारित्र में वर्तने के द्वारा परम वीतराग चारित्र में भले प्रकार उद्यमी है तथा (महप्पा) मोक्ष रूप महापुरुषार्थ को साधने के कारण महात्मा है वही (धम्मो त्ति विसेसिदो) जीना, मरना, लाभ, अलाभ आदि में समता की भावना में परिणमन करने वाला श्रमण ही अभेदनय से मोह-क्षोभ रहित आत्मा का परिणामरूप निश्चय धर्म कहा गया है।

जो तं दिट्ठा तुट्ठो अब्भुट्ठित्ता करेदि सक्कारं।
वंदणणमंसणादिहिं तत्तो सो धम्ममादियदि।। (92-1)

आगे ऐसे निश्चय रत्नत्रय में परिणमन करने वाले महामुनि की जो कोई भक्ति करता है उसके फल को दिखाते हैं-

(जो तं दिट्ठा तुट्ठो) जो कोई भव्यों में प्रधान वीतराग शुद्धात्मा के अनुभव रूप निश्चय धर्म में परिणमने वाले पूर्व सूत्र में कहे हुये मुनीश्वर को देखकर पूर्ण गुणों में अनुरागभाव से संतोषी होता हुआ (अब्भुट्ठित्ता) उठकर (वंदणणमसंणादीहिं सक्कारं करेदि) 'तवसिद्धे णय सिद्धे' इत्यादि वंदना तथा 'नमोस्तु' रूप नमस्कार इत्यादि भक्ति विशेषों के द्वारा सत्कार या प्रशंसा करते है (सो तत्तो धम्ममादियदि) सो भव्य उस यतिवर के निमित्त से धर्म करता है।

अथ तेन पुण्येन भवान्तरे किं फलं भवतीति प्रतिपादयति-

तेण णरा व तिरिच्छा देविं वा माणुसिं गदिं पप्पा।
विहविस्सरियेहिं सया संपुण्णमणोरहा होंति।। (92-2)

आगे कहते है कि उस पुण्य से परभव में क्या फल होता है-

(तेण) उस पूर्व में कहे हुय पुण्य से (णरा वा तिरिच्छा) वर्तमान के मनुष्य या तिर्यंच (देविं वा माणुसिं गदिं पप्पा) मरकर अन्यभव में देव या मनुष्य गति को पाकर (विहविस्सरियेहिं सया संपुण्णमणोरहा होंति) राजाधिराज संबंधी रूप, सुंदरता, सौभाग्य, पुत्र, स्त्री आदि से पूर्ण विभूति तथा आज्ञारूप ऐश्वर्य से सफल मनोरथ होते हैं। वही

पुण्य यदि भोगों के निदान बिना सम्यक् दर्शन पूर्वक होता है तो उस पुण्य से परम्परा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

समीक्षा–वस्तु का शुद्ध स्वरूप ही धर्म है, इसलिये धर्मात्मा (धर्मी) को छोड़कर धर्म का अस्तित्व ही नहीं है। (इसलिये यहाँ पर आचार्यश्री ने कहा है कि जो आत्मा को अशुद्ध करने वाले वैभाविक भाव है उसे नष्ट करके स्व-वीतराग चारित्र में आरूढ़ है ऐसे महान् श्रमण ही साक्षात् धर्म है। कुंदकुंद देव ने अष्ट पाहुड के बोध पाहुड में स्पष्ट रूप से सविस्तार 62 गाथाओं में सिद्ध किया है कि रत्नत्रय से युक्त श्रमण ही धर्म है, धर्मायतन है, चैत्य है, चैत्यालय है, देव है, तीर्थ है, प्रवज्यादि है और जो बाह्य में प्रस्तर, धातु से निर्मित चैत्य, चैत्यालय बाह्य निमित्त है वह व्यवहार से मानने योग्य हैं। इसलिये रत्नत्रय से युक्त श्रमण ही निश्चय धर्म है, निश्चय मोक्षमार्ग है एवं निश्चय मोक्ष है ऐसा कथन द्रव्यसंग्रह में किया गया है।

सम्मद्दंसणणाणं चरणं मुक्खस्स कारणं जाणे।
ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइओ णिओ अप्पा।। (39)

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र इन तीनों के समुदाय को व्यवहार से मोक्ष का कारण जानो। तथा निश्चय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र स्वरूप जो आत्मा है उसको मोक्ष का कारण जानो।

रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्णदवियम्हि।
तम्हा तत्तियमइओ होदि हु मोक्खस्स कारणं आदा।। (40)

आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्य में रत्नत्रय नहीं रहता इस कारण उस रत्नत्रयमयी जो आत्मा है वही निश्चय से मोक्ष का कारण है।

शुभोपयोग की क्रियाएँ

देवदजदिगुरू पूजासू चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।
उववासादिसु रत्तो सुहोवआगेप्पगो अप्पा।। (69) प्र.सा.

The soul, that is devoted to the worship of God, ascetic and the preceptor, to the offering of gifts, to virtuous conduct, and to the observance of fasts, is of auspicious activities (or manifestation

of consciouness).

विशेष यह है कि जो सर्वदोष-रहित परमात्मा है, वह देवता है, जो इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके शुद्ध आत्मा के स्वरूप के साधन में उद्यमवान् है वह यति है, जो स्वयं निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय का आराधन करने वाला है और ऐसी आराधना के चाहने वाले भव्यों को जिन-दीक्षा का देने वाला है वह गुरु है। इन देवता, यति और गुरुओं की तथा उनकी मूर्ति आदिकों की यथासंभव अर्थात् जहाँ संभव हो वैसी द्रव्य और भाव पूजा करना, आहार, अभय, औषधि और विद्यादान ऐसा चार प्रकार प्रकट करना, आचारादि ग्रन्थों में कहे प्रमाण शीलव्रतों को पालना, तथा जिन गुण संपत्ति को आदि लेकर अनेक विधि विशेष से उपवास आदि करना, इतने शुभ कार्यों में लीनता करता हुआ तथा द्वेषरूप भाव व विषयों के अनुराग रूप भाव आदि अशुभ उपयोग से विरक्त होता हुआ जीव शुभोपयोगी होता है, ऐसा सूत्र का अर्थ है।

समीक्षा–यह जीव अनादि काल से मोहादि भाव से ग्रसित होकर अशुभोपयोग में ही परिभ्रमण कर रहा है। जब तक जीव सम्यग्दर्शन को प्राप्त नहीं करता है तब तक उसका उपयोग अशुभ ही रहता है। सम्यग्दर्शन होने के बाद उसका उपयोग शुभोपयोग रूप में परिणमन करता है। यह शुभोपयोग अशुभोपयोग (पाप) को क्षीण करता है पुण्य को बढ़ता है एवं शुद्धोपयोग के लिए कारण बनता है इसलिए शुभोपयोग प्राथमिक अवस्था में अर्थात् चौथे गुणस्थान से 6 वें गुणस्थान तक ग्रहणीय और अनुकरणीय है। चतुर्थ एवं पंचम गुणस्थान में मुख्यतः शुभोपयोग के साथ कुछ अशुभोपयोग भी रहता है पर लक्ष्य शुभोपयोग का ही रहता है। विशेषतः तीन लोक में, तीन काल में सम्यग्दृष्टि जीव सर्वप्रथम अशुभोपयोग के बाद शुभोपयोग प्राप्त करता है उसके बाद शुद्धोपयोग को प्राप्त करता है। भले कोई-कोई जीव जो अनादि मिथ्यादृष्टि भी सम्यग्दृष्टि होता हुआ क्रमशः अन्तर्मुहूर्त्त में अरहंत-सिद्ध बनता है वह भी पहले अशुभोपयोग को छोड़कर शुभोपयोगी बनता है फिर शुद्धोपयोगी बनकर मोक्ष प्राप्त करता है। पुराण प्रसिद्ध भरत चक्रवर्ती जिन्होंने बहुत कम समय में केवलज्ञान प्राप्त किया था वह भी मुनिव्रतधारण रूप, केशलोंच रूप, व्रतधारण करने रूप शुभोपयोग को धारण कर शुद्धोपयोग केवली बने। ऐसे (पुण्यास्रव हेतु) शुभोपयोग का वर्णन

समयसार, प्रवचनसार आदि अध्यात्मग्रंथों के प्रौढ़ टीकाकार, अमृत कलश के रचयिता, आचार्य अमृतचन्द्रसूरी ने तत्त्वार्थसार में सविस्तार वर्णन निम्न प्रकार से किया है-

दया दानं तपः शीलं सत्यं शौचं दमः क्षमा।
वैयावृत्यं विनीतिश्च जिनपूर्जार्जवं तथा।। (25)
सरागसंयमश्चैव संयमासंयमस्तथा।
भूतव्रत्यानुकम्पा च सद्वेद्यास्रवहेतवः।। (26)

दया, दान, तप, शील, सत्य, शौच, इन्द्रियदमन, क्षमा, वैयावृत्य, विनय, जिनपूजा, सरलता, सरागसंयम, भूतानुकम्पा और व्रत्यनुकम्पा ये सातावेदनीय के आस्रव के हेतु हैं।

क्षमादिदशधा धर्मो द्वादशैव व्रतानि च।
उत्कृष्ट श्रावकाचारी द्वादशैव तपांसि च।। (11)
आहारादि-चतुर्भेद दानं सन्मुनये वरम्।
ज्ञानध्यानादिकाभ्यास-पूजनं श्री जिनेशिनाम्।। (12)
सद्धर्मिणां च सन्मान सेवनं सद्गुरोः सदा।
निर्मापणं जिनार्चाया भवनानि चाप्यर्हताम्।। (13)
प्रतिष्ठा जिनबिम्बानां महाभ्युदय साधिनी।
अभिषेकोऽर्हन्मूर्तीनां महोत्सव-पुरस्सरः।। (14)
अनुप्रेक्षादिकाचिन्ता प्रोधमस्तपसेऽञ्जसा।
सोपकारोऽन्यजीवानां धर्मादि कथनं नृणाम्।। (15)
रत्नत्रयादि भावेन श्रीजिन स्मरणेन च।
निर्ग्रन्थ भक्तियो भव्या लभन्ते पुण्यमद्भुतम्।। (16)

क्षमादिक दस धर्म, बाहर व्रत, उत्कृष्ट श्रावका का आचार, बारह तप, समीचीन मुनि के लिये चार प्रकार का आहारादि दान देना, ज्ञान-ध्यान आदि का अभ्यास करना, जिनेन्द्र देव की पूजा करना, समीचीन धर्म के धारक पुरुषों का सम्मान करना, सद्गुरु की सदा सेवा करना, जिन प्रतिमाओं और जिन मन्दिरों का निर्माण कराना, जिन प्रतिमाओं की महान् अभ्युदय को सिद्ध करने वाली प्रतिष्ठा कराना, जिनेन्द्र

प्रतिमाओं का महोत्सव के साथ अभिषेक कराना, अनुप्रेक्षाओं आदि का चिन्तन करना, तप के लिये समीचीन पुरुषार्थ करना, अन्य जीवों का उपकार करना तथा, मनुष्यों को धर्म आदि का उपदेश देना, इन कार्यों से तथा रत्नत्रय आदि भावों से, श्री जिनेन्द्र देव के स्मरण से एवं निर्ग्रन्थ साधुओं की भक्ति करने से भव्य जीव आश्चर्यकारी पुण्य को प्राप्त करते हैं।

देवशास्त्र गुरुसेवा संसारे नित्यभीरूता।

पुण्याय जायते पुंसां, सम्यक्त्वर्धिनी क्रिया।। (17)

देव, शास्त्र, गुरु की सेवा, संसार से सदा भयभीत रहना तथा सम्यक्त्वर्द्धिनी क्रिया पुरुषों के पुण्यबन्ध के लिये हैं।

वैराग्यवासितं चित्तं ज्ञानाभ्यासादि तत्परम्।

सर्व सत्वदयोपेतं सूते पुण्यं शरीरिणाम्।। (18)

वैराग्य से युक्त, ज्ञान के अभ्यास आदि में तत्पर और सब जीवों की दया से युक्त चित्त जीवों को पुण्य उत्पन्न करवाता है।

धर्मोपदेश संयुक्तं-वाक्य भूतहितावहम्।

विकथादि-विनिर्मुक्तं भवेत्सत्पुण्यकर्मणे।। (19)

धर्मापदेश से सहित, प्राणियों का हितकारक एवं विकथा आदि से रहित वचन समीचीन पुण्यकर्म के लिये होता है अर्थात् उपुर्यक्त वचन बोलने से पुण्यकर्म का बन्ध होता है।

रागो जस्स पसत्थो अणुकंपाससिंदो य परिणमो।

चित्तम्हि णत्थि कलुसं पुण्णं जीवस्स आसवदि।। (135)

जिस जीव को प्रशस्त राग है, अनुकम्पायुक्त परिणाम है और चित्त में कलुषता का अभाव है उस जीव को पुण्य का आस्रव होता है।

अरहंत सिद्धसाहुसु भत्ती धम्मम्मि जाय खलु चेष्टा।

अणुगमणं पि गुरुणं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति।। (136)

अर्हत्-सिद्ध साधुओं के प्रति भक्ति, धर्म में यथार्थतया चेष्टा और गुरुओं का अनुगमन, वह 'प्रशस्त राग' कहलाता है।

तिसिदं बुभुक्खिदं वा दुहिदं दट्ठुण जो दु दुहिदमणो।

पडिवज्जदि तं किवया तस्सेया होदि अणुकंपा।। (137)

तृषातुर, क्षुधातुर अथवा दुःखी को देखकर जो जीव मन में दुःख पाता हुआ उसके प्रति करुणा से वर्तता है, उसको वह अनुकम्पा है।

कोधो व जदा माणो माया लोभो व चित्तमासेज्ज।

जीवस्स कुणदि खोहं कलुसो त्ति य तं बुधा वेंति।। (138)

जब क्रोध मान, माया अथवा लोभ चिन्ता का आश्रय पाकर जीव को क्षोभ करते हैं, तब उसे ज्ञानी 'कलुषता' कहते है।

वरं व्रतैः पदं दैव नाव्रतैर्वत नारकं।

छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्।। (3) इष्टोपदेश

जिस प्रकार छाया में बैठकर अपने दूसरे साथी की राह देखने वाले पुरुष को छाया शान्ति प्रदान करती है और धूप में बैठकर अपने साथी की राह देखने वाले को कष्ट प्राप्त होता है। उसी प्रकार व्रतों के अनुष्ठान से स्वर्गादि सुखों के साथ मोक्ष प्राप्त होता है और अव्रतों से पहले नरक दुःख भोगना पड़ता है पश्चात् मुक्ति प्राप्त होती है। अतएव व्रतों का आचरण करना ही श्रेष्ठ है अव्रती रहना ठीक नहीं।

यत्र भावः शिवं दत्ते द्यौः कियद्दूरवर्तिनी।

यो नयत्याशु गव्यूति क्रोशार्द्धं किं स सीदति।। (4)

जो मनुष्य किसी भार को स्वेच्छा से शीघ्र दो कोश ले जाता है वह उस भार को आधा कोश ले जाने में कभी खिन्न अथवा खेदित नहीं होता है-वह आधे कोश को कुछ भी न समझ कर भार को शीघ्र ले जाता है। उसी तरह जिस भाव में मोक्ष सुख प्राप्त कराने या देने की सामर्थ्य है उससे स्वर्गसुख की प्राप्ति कुछ भी दूरवर्ती नहीं है अर्थात् वह सहज की प्राप्त हो जाता है। अथ दानपूजा पञ्चपरमेष्ठिवन्दनादिरूपं परंपरया मुक्तिकारणं श्रावकधर्म कथयति-आगे दान पूजा और पंचपरमेष्ठी की वंदना आदि परम्परा मुक्ति का कारण जो श्रावक धर्म उसे कहते हैं-

दाणु ण दिण्णउ मुणिवरहँ ण वि पुज्जिउ जिण-णाहु।

पंच ण वंदिय परम-गुरु किमु होसइ सिव-लाहु।। (168) प.प्र.

आहारादि दान मुनिश्वर आदि पात्रों को नहीं दिया, जिनेन्द्र भगवान् को भी नहीं

पूजा, अरहंत आदिक पाँचपरमेष्ठी भी नहीं पूजे, तब मोक्ष की प्राप्ति कैसे हो सकती है।

आहार औषध, शास्त्र और अभयदान ये चार प्रकार के दान भक्तिपूर्वक पात्रों को नहीं दिये, अर्थात् निश्चय व्यवहाररत्नत्रय के आराधक जो यति आदिक चार प्रकार संघ उनको चार प्रकार का दान भक्ति कर नहीं दिया, और भूखे जीवों को करुणा भाव से दान नहीं दिया। इंद्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र आदिकर से पूज्य केवलज्ञानादि अनंतगुणोंकर पूर्ण जिननाथ की पूजा नहीं की, जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल से पूजा नहीं की और तीन लोक कर वंदने योग्य ऐसे अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय, साधु इन पाँच परमेष्ठियों की आराधना नहीं की। सो हे जीव! इन कार्यों के बिना तुझे मुक्ति का लाभ कैसे होगा? क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति के ये ही उपाय हैं। जिन पूजा, पंच परमेष्ठी की वंदना, और चार संघ को चार प्रकार दान इन बिना मुक्ति नहीं हो सकती। ऐसा व्याख्यात जानकर सातवें उपासकाध्ययन अंग में कही गई जो दान पूजा वंदनादिक की विधि है वही योग्य है। शुभ विधि से न्यायकर उपार्जन किया अच्छा द्रव्य व दातार के अच्छे गुणों को धारण कर विधि से पात्र को देना, जिनराज की पूजा करना, और पंचपरमेष्ठी की वंदना करना, ये ही व्यवहारनय कर कल्याण के उपाय हैं।

ये तीर्थकृत्प्रणीता भावास्तदनन्तरैश्च परिकथिताः।
तेषां बहुशोऽप्युनकीर्तनं भवति पुष्टिकरमेव।। (12)

तीर्थंकरों के द्वारा प्रणीत जो जीव आदि भाव (पदार्थ) एवं उनके बाद गणधरों के द्वारा एवं गणधर-शिष्यों के द्वारा प्ररूपित जो भाव, उन भावों का पुनः पुनः अनुकीर्तन करने से, ज्ञान-दर्शन एवं चारित्र की पुष्टि ही होती है। (क्योंकि इस से कर्म निर्जरा और उसके द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है।) आध्यात्मक.

पुनरुक्ति-दोष नही

यद्वदुपयुक्तपुर्वमपि भैषजं सेव्यतेऽर्तिनाशाय।
तद्वद्रागार्तिहरं बहुशोऽप्यनुयोज्यमर्थपदम्।। (13)
यद्वद्विषघातार्थ मन्त्रपदे न पुनरुक्तदोषोऽस्ति।
तद्वद्रागविषघ्नं पुनरुक्तमदुष्टमर्थपदम्।। (14)
वृत्यर्थ कर्म यथा तदेव लोकः पुनः पुनः कुरुते।

एवं विरागवार्ताहेतुपि पुनः पुनश्चिन्त्यः।। (15)

व्याधिकृत वेदना के उपशमन हेतु विश्वसनीय औषध का सेवन प्रतिदिन किया जाता है, उसी प्रकार रागद्वेष से बन्धे हुए कर्मों के द्वारा होती हुई तीव्र-मध्यम-मन्द वेदना के अपाहार हेतु (शान्ति हेतु) अर्थ प्रधान वाक्य अनेक बार बोलना चाहिए।

जिस तरह सर्प एवं बिच्छु आदि के जहर को उतारने के लिए मन्त्रवेत्ता पुरुष ॐकार आदि मन्त्र पदों का उच्चारण बार-बार करते हैं, इसमें पुनरुक्ति (बार-बार एक ही शब्द बोलना) दोष नहीं है, उसी प्रकार रागद्वेष को नष्ट करने वाले अर्थयुक्त वाक्यों को बार-बार रटना भी दोष रहित हैं (अर्थात् वहां 'पुनरुक्ति' दोष नहीं हैं)

जिस तरह अपने या कुटुम्ब के पालन-पोषण हेतु समुचित धन-धान्य से युक्त मनुष्य भी प्रति वर्ष खेती आदि कार्य करता रहता है ठीक उसी तरह, वैराग्यवार्ता के हेतुभूत अध्ययन-मनन पुनः पुनः करना उचित है।

वैराग्यभावना की पुष्टि

दृढतामुपैति वैराग्यभावना येन येन भावेन।

तस्मिंस्तस्मिन् कार्यः कायमनोवाग्भिभ्यासः।। (16)

अन्तःकरण के जिन-जिन विशिष्ट परिणामों के माध्यम से (जन्म-जरा-मृत्यु-शरीर इत्यादि की आलोचना आदि से) वैराग्य भावना स्थिर बनती हो, उस कार्य में मन-वचन-काय से अभ्यास-प्रयत्न करना चाहिए।

माध्यस्थ्यं वैराग्य विरागता शान्तिरुपशमः प्रशमः।

दोषक्षयः कषायविजयश्च वैराग्यपर्यायाः।। (17)

1. माध्यस्थ 2. वैराग्य 3. विरागता 4. शान्ति 5. उपशम 6. प्रशम 7. दोषक्षय 8. कषायविजयः-ये सब वैराग्य के पर्याय है।

राग के पर्याय

इच्छा मूर्च्छा कामः स्नेहो गार्ध्य ममत्वमभिनन्दः।

अभिलाष इत्यनेकानि रागपर्यायवचनानि।। (18)

इच्छा, मूर्च्छा, काम, स्नेह, गृद्धता, ममत्व, अभिनन्द (परितोष) एवं अभिलाष ये राग के अनेक पर्याय है।

द्वेष के पर्याय

ईर्ष्या रोषो दोषो द्वेषः परिवादमत्सरासूयाः।

वैर-प्रचण्डनाद्या नैके द्वेषस्य पर्याया।। (19)

1. ईर्ष्या 2. रोष 3. दोष 4. द्वेष 5. परिवाद 6. मत्सर 7. असूया 8. वैर 9. प्रचंड आदि द्वेष के अनेक पर्याय हैं।

रागद्वेषपरिगतो मिथ्यात्वोपहतकलुषया दृष्ट्या।

पञ्चाश्रवमलबहुलार्तरौद्रतीव्राभिसन्धानः।। (20)

कार्याकार्य-विनिश्च-संक्लेशविशोधिलक्षणैर्मूढः।

आहारभयपरिग्रहमैथुनसंज्ञाकलिग्रस्तः।। (21)

क्लिष्टाष्टकर्मबन्धनबद्ध-निकाचितगुरुर्गतिशतेषु।

जन्ममरणैजस्त्रं बहुविधपरिवर्तनाभ्रान्तः।। (22)

दुःखसहस्रनिरंतरगुरुभाराक्रान्तकर्षितः करूणः।

विषयसुखानुगततृषः कषायवक्तव्यतामेति।। (23)

1. रागद्वेष के परिणाम से युक्त 2. मिथ्यात्व से कलुषित बुद्धि के द्वारा प्राणातिपातादिक पांच आश्रवों के माध्यम से होनेवाले कर्मबन्धनों से व्याप्त 3. आर्तध्यान एवं रौद्रध्यान की प्रकृष्ट अभिसन्धि (अभिप्राय) से युक्त (20)

4. कार्य (जीवरक्षादि) अकार्य (जीववधादि) के निर्णय करने में तथा क्लिष्टचित्तता एवं निर्मल चित्तता का ज्ञान करने में मूढ (5) आहार-भय-मैथुन-परिग्रह रूप संज्ञाओं के परिग्रह से युक्त (21)

6. सेंकड़ों गतियों में पुनः पुनः भ्रमण करने के कारण 8 कर्मों के गाढ बन्धनों से आबद्ध, निकाचित बना हुआ (अतिनियंत्रित बना हुआ) एवं इनके कारण भारी बना हुआ, 7. सतत् जन्म-जरा-मरण से अनेक रूपों में परिवर्तन करने से भ्रान्त (22)

8. नारक, तिर्यंच-मनुष्य और देव के भवों में हमेशा हजारों दुःखों के अति भार से आक्रान्त (पीड़ित) होने के कारण दुर्बल बना हुआ, 9. दीन बना हुआ,

10. विषय सुखों में आसक्त बना हुआ (विषय सुखों की तीव्र अभिलाषाओं से युक्त) जीव कषायवक्तव्यता को प्राप्त होता है अर्थात् क्रोधी-मानी-मायावी एवं लोभी कहलाता है। (23)

चार कषायों के विपाक

सः क्रोधमानमायालोभैरतिदुर्जयैः परामृष्टः।

प्राप्नोति याननर्थान् कस्तानुद्देष्टुमपि शक्त :।। (24)

अतीव दुर्जन ऐसे क्रोध-मान-माया और लोभ से पराभूत बनी हुई आत्मा जिन-जिन आपत्तियों-अनर्थों का शिकार बनती है, उन आपत्तियों को नाममात्र से कहने भी कौन समर्थ है?

क्रोधात् प्रीतिविनाशं मानाद्विनयोपघातमाप्नोति।

शाठ्यात् प्रत्ययहानिं सर्वगुणाविनाशनं लोभात्।। (25)

क्रोध से प्रीति का नाश होता है, मान से विनय को हानि पहुंचती है, माया से विश्वास को धक्का लगता है और लोभ से सब गुणों का नाश होता है।

क्रोध का विपाक

क्रोधः परितापकरः, सर्वस्योद्वेगकारकः क्रोधः।

वैरानुषङ्गजनकः क्रोधः, क्रोधः सुगतिहन्ता।। (26)

क्रोध सब जीवों के लिए परिताप करने वाला है, सब जीवों को उद्वेग देता है, वैर का अनुबंध पैदा करता है और सुगति-मोक्ष का नाश करता है।

मान के विपाक

श्रुतशीलविनयसंदूषणस्य धर्मार्थकामविघ्नस्य।

मानस्य कोऽवकाशं मुहूर्तमपि पण्डितो दद्यात्?।। (27)

श्रुत, शील और विनय को दूषित करनेवाले एवं धर्म और अर्थ काम-पुरुषार्थ में विघ्नकारक ऐसे मान को कौन विद्वान-पुरुष एक पल के लिए भी अपनी आत्मा में स्थान देगा?

माया के विपाक

मायाशीलः पुरुषो यद्यपि न करोति किंचिदपराधम्।

सर्प इवाविश्वास्यो भवति तथ्याप्यात्मदोषहतः।। (28)

मायावी मनुष्य, चाहे मायाजनित कोई भी अपराध या गुनाह न करता तो फिर भी स्वयं के माया-दोष से उपहत बना वो सांप की भांति अविश्वसनीय बनता है।

लोभ के विपाक

सर्वविनाशाश्रयिणः सर्वव्यसनैकराजमार्गस्य।

लोभस्य को मुखगतः क्षणमपि दुःखान्तरमुपेयात?।। (29)

सारे अपायों का आश्रयस्थान, सारे दुःखों का-व्यसनों का मुख्य मार्ग सा जो लोभ, उसका शिकार बना हुआ कौन जीव (लोभ परिणामयुक्त) सुख प्राप्त करता है? अर्थात् कोई नहीं।

संसारमार्ग के निर्माता

एवं क्रोधो मानो माया लोभश्च दुःखहेतुत्वात्।

सत्वानां भवसंसारदुर्गमार्गप्रणेतारः।। (30)

इस भांति ये क्रोध, मान, माया और लोभ जीवात्माओं के दुःख के कारणरूप होने से नरक वगैरह संसार के भयंकर मार्ग का निर्माण करने वाले हैं।

कषायों की जड़े

ममकारहंकारवेषां मूलं पदद्वयं भवति।

रागद्वेषावित्यपि तस्यैवान्यस्तु पर्यायः।। (31)

यह क्रोधादि कषायों की जड़ में दो बातें है-ममकार (ममत्व) और अहंकार (गर्व) उसके ही (ममकार और अहंकार के) राग द्वेष आदि अन्य पर्याय है।

मायालोभकषायश्चेत्येतन्नाग संज्ञितं द्वन्द्वम्।

क्रोधोमानश्च पुनद्वेष इति समास निर्दिष्टः।। (32)

माया और लोभ का युगल राग है एवं क्रोध-मान का युगल द्वेष है, ऐसा संक्षेप में थोड़े में कहा जा सकता है।

कर्मबन्ध के कारण

मिथ्यादृष्ट्यविरमणप्रमादयोगास्तयोर्बलं दृष्टम्।

तदुपगृहीतावष्टविधकर्मबन्धस्य हेतू तौ।। (33)

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और मन-वचन-काया के योग, ये चार उन राग द्वेष के उपकारी हैं। वे मिथ्यात्वादि से उपगृहीत राग और द्वेष, आठ प्रकार के कर्मबन्धन में निमित्त-सहायक बनते हैं।

सज्ज्ञानदर्शनावरणवेद्यमोहयुषां तथा नाम्नः।

गोत्रान्तराययोश्चेति कर्मबन्धोऽष्टद्याः मौल।। (34)

वो कर्मबन्ध मूलरूप से आठ तरह का होता है (1) ज्ञानावरण का (2) दर्शनावरण का (3) वेदनीय का (4) मोहनीय का (5) आयुष्य का (6) नाम का (7) गोत्र का और (8) अन्तराय का।

कर्मों के उत्तर भेद

पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिकश्चतुः षट्कसप्तगुणभेदः।

द्विपञ्चभेद इति सप्तनवतिभेदास्तथोत्तरतः।। (35)

इस तरह क्रमशः पाँच, नौ, दो, अठ्ठाइस, चार, बयालीस (6X7) दो और पांच-इस तरह (आठ कर्मों के) सित्यानवें उत्तर भेद होते हैं।

कर्म बन्ध चार प्रकार से

प्रकृतिरियमनेकविधा स्थित्यनुभागप्रदेशतस्तस्याः।

तीव्रो मन्दो मध्य इति भवति बन्धोदयविशेषः।। (36)

इस तरह यह प्रकृति अनेक प्रकार की (37 प्रकार की) है। इस प्रकृति का स्थितिबंध, रसबंध और प्रदेश बंध होता है। जिससे विशिष्ट प्रकृतिबंध होता है वो तीव्र, मन्द और मध्यम बन्ध होता है। उदय भी (प्रकृतियों का) तीव्रादि भेद वाला होता है।

योग कषायः लेश्याः

तत्र प्रदेशबन्धो योगात् तदनुभवनं कषायवशात्।

स्थितिपाकविशेषस्तस्य भवति लेश्याविशेषेण।। (37)

(चार प्रकार से कर्मबन्ध में) प्रदेश बन्ध योग (मन-वचन-काया के) से होता है। उसे प्रदेशबद्ध कर्म का अनुभव कषाय के वश होता है और स्थिति का पाक विशेष (जघन्य-मध्यम-उत्कृष्ट स्थिति का विशिष्ट निर्माण) लेश्या से होता है।

लेश्या

ताः कृष्णनीलकापोततैजसीपद्मशुक्लनामनः।

श्लेष इव कर्मबन्धस्य कर्मबन्धस्थितिविधात्र्यः।। (38)

वे (लेश्याए) कृष्ण, नील, कापोत, तैजस, पद्म और शुक्ल नामक लेश्याएँ कर्मबन्ध में स्थिति का निर्माण करने वाली है, जैसे कि रंगों को बांधने में गोंद।

सुख और दुःख

कर्मोदयाद् भवगतिर्भवगतिमूला शरीरनिर्वृत्तिः।

देहादिन्द्रियविषया विषयनिमित्ते च सुखदुःखे।। (39)

उस कर्म के विपाकोदय से नरकादि गतियाँ होती हैं और देहनिर्माण का बीज भी यही नरकादि भवगति है। उस देह से इन्द्रियों के विषय और विषयनिमित्तक सुख और दुःख। (सुखानुभव एवं दुःखानुभव होता है।)

दुःख के कारण

दुःखद्विट् सुखलिप्सुर्मोहान्धत्वाददृष्टगुणदोषः।

यां यां करोति चेष्टां तया तया दुःखमादत्ते।। (40)

दुःख का द्वेषी और सुख की लालसा वाला (जीव) मोहान्ध हो जाने से गुण या दोष नहीं देखता है, वो जो जो चेष्टाएं करता है (मन-वचन-काया की क्रिया करता है) उससे दुःख प्राप्त करता है। (दुःख की अनुभूति करता है।)

इन्द्रियपरवशता के विपाक

कलरिभितमधुरगान्धर्वतूर्ययोषिद्विभूषणरवाद्यैः।

श्रोत्रावबद्धहृदयो हरिण इव विनाशमुपयाति।। (41)

कलायुक्त (मात्रायुक्त) रिभित (गांधर्व आवाज) एवं मधुर (ऐसे) गन्धर्व के वाजिंत्रों की ध्वनि और स्त्रियों के आभूषणों में से उत्पन्न होता हुआ ध्वनि आदि, ऐसे मनोहारी शब्दों से श्रोत्रेन्द्रियपरवश हृदय है उन हिरणों की भांति (प्रमादी) विनाश पाता है।

गतिविभ्रमेङ्गिताकारहास्यलीलाकटाक्षविक्षिप्तः।

रूपावेशितचक्षुः शलभ इव विपद्यते विवशः।। (42)

सविकार गति, स्निग्ध दृष्टि, मूँह-छाती आदि आकार, सविलास हास्य और कटाक्ष से विक्षिप्त (मनुष्य), स्त्री के रूप में जिसने अपनी दृष्टि स्थापित की है और जो विवश बना है वो मनुष्य पतंगे की भांति जलकर नष्ट होता है।

इन्द्रियपरवशता के विपाक

स्नानाङ्गरागवर्तिकवर्णकधूपाधिवासपटवासैः।

गन्धभ्रमितमनस्को मधुकर इव नाशमुपयाति।। (43)

स्नान, विलेपन, (विविध) वर्णीय अगरबत्ती, अधिवास (मालती आदि फूलों की) और सुगन्धित द्रव्य-चूर्णों के गन्ध से भ्रमित (आक्षिप्त) मनवाला (मनुष्य) भ्रमर की भांति नाश पाता है।

मिष्टान्नपानमांसोदनादिमधुरविषयगृद्धात्मा।

गलयन्त्रपाशबद्धो मीन इव विनाशमुपयाति।। (44)

अत्यन्त स्वादिष्ट भोजन, मद्यपान, मांस, ओदन (चावल) और मधुर रस (शक्कर इत्यादि) (रसना के) इन विषयों में आसक्त आत्मा लोहयन्त्र में और तंतुजाल में फंसी हुई परवश बनी मछली की भांति मृत्यु पाती है।

शयनासनसंबाधसुरतस्नानुलेपनासक्तः।

स्पर्शव्याकुलितमतिर्गजेन्द्र इव बध्यते मूढः।। (45)

शय्या, आसन, अंगमर्दन, चुंबन, आलिंगनादि, स्नान-विलेपन इत्यादि स्पर्श में आसक्त स्पर्श के सुख से मोहित बुद्धिवाला मूढ (जीव) हाथी की भांति बंध जाता है।

एवमनेके दोषाः प्रणष्टशिष्टेष्टदृष्टिचेष्टानाम्।

दुर्नियमितोन्द्रियाणां भवन्ति बाधाकरा बहुशः।। (46)

विवेकी पुरुषों की इष्ट ऐसे ज्ञान और क्रिया (उभय-दोनों) जिनके नष्ट हो चुके हैं और दोषों में दौडती इन्द्रियाँ जिनकी नियंत्रित नहीं है, उनको इस भांति (और भी) अनेक दोष बार-बार पीडाकारी बनते है।

पंचेन्द्रियपरवशता

एकैकविषयसंगाद् रागद्वेषातुरा विनष्टास्ते।

किं पुनरनियमितात्मा जीवः पंचेन्द्रियवशार्तः?।। (47)

एक-एक विषय के संग में राग-द्वेष से रोगी बने (हिरन वगैरह) जीव नष्ट हो चुके तो फिर पांचों इन्द्रियों को परवशता से जो व्याकुल है और जो आत्मा को नियमित नहीं रख पाते उनका क्या होगा?

सदैव अतृप्त इन्द्रियां

नहि सोऽस्तीन्द्रीयविषयो येनाभ्यस्तेन नित्यतृषितानि।

तृप्तिं प्राप्नुयुरक्षाण्यनेकमार्गप्रलीनानि।। (48)

ऐसा कोई भी विषय नहीं है इन्द्रियों का, कि जिसका पुनः पुनः आसेवन करने से हमेशा प्यासी और अनेक मार्गो में (शब्दादि विषयजन्य अनेक प्रकारों से) खूब लीन बनी हुई इन्द्रियाँ तृप्ति पाये।

शुभ-अशुभ कल्पनामात्र

कश्चिच्छुभोऽपि विषयः परिणामवशात्पुनर्भवत्यशुभः।

कश्चिदशुभोऽपि भूत्वा कालेन पुनः शुभीभवति।। (49)

कोई इष्ट विषय भी अध्यवसाय के कारण (द्वेष के परिणम रूप) अनष्टि बनता है और कोई अशुभ विषय भी कालान्तर से (राग के परिणाम) से इष्ट बनता है।

कल्पना की दुनिया

कारणवशेन यद्यत् प्रयोजनं जायते यथा यत्र।

तेन तथा तं विषयं शुभमशुभं वा प्रकल्पयति।। (50)

जिन कारणों से जिस तरह जो जो प्रयोजन पैदा होते हैं, त्यों त्यों उत्पन्न हुए प्रयोजन से जो विषय को अच्छा या बुरा मानता है।

अन्येषां यो विषयः स्वाभिप्रायेण भवति तुष्टिकरः।

स्वमतिविकल्पाभिरतास्तमेव भूयो द्विषन्त्यन्ये।। (51)

दूसरों को जो विषय (शब्द, रूप वगैरह) अपने मनोपरिणाम से परितोष करने वाले बनते हैं वे ही विषय अन्य पुरुषों के लिए जो अपने मन के विकल्पों में डूबे रहते हैं, द्वेष का कारण बनते हैं।

तानेवार्थान् द्विषस्तानेवार्थान् प्रलीयमानस्य।

निश्चयतीऽस्यानिष्टं न विद्यते किंचिदिष्टं वा।। (52)

उन्हीं (इष्ट) शब्दादि विषयों का द्वेष करते हुए और उन्हीं (अनिष्ट) विषयों में तन्मय बनते हुए इस को (विषयभोगी को) पारमार्थिक रूप से न तो कुछ इष्ट है और न ही अनिष्ट है।

कर्मबन्ध के मूल कारण

रागद्वेषोपहतस्य केवलं कर्मबन्ध एवास्य।

नान्यः स्वल्पोऽपि गुणोऽस्ति यः परत्रेह च श्रेयान्।। (53)

राग और द्वेष से उपहत (मनवाले) उसको केवल कर्मबन्ध ही होता है, इस लोक में या परलोक में, दूसरा अल्प भी गुण (उसमें) नहीं है।

यस्मिन्निंद्रियविषये शुभमशुभं वा निवेशयति भावम्।

रक्तो वा द्विष्टो वा स बन्धहेतुर्भवति तस्य।। (54)

इन्द्रियों के जिन विषयों में रागयुक्त या द्वेषयुक्त जीव शुभ या अशुभ चित्तपरिणाम स्थापित करता है उसको वो चित्तपरिणाम कर्मबन्ध का हेतु बनता है।

कर्मबन्ध कैसे होता है?

स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य रेणुना श्लिष्यते यथा गात्रम्।

रागद्वेषाक्लिन्नस्य कर्मबन्धो भवत्येवम्।। (55)

चिकनाहट (तेल इत्यादि की) से लिप्त व्यक्ति के गोत्र को ज्यों धूल चिपक जाती है वैसे राग और द्वेष से चिकनी (स्निग्ध) आत्मा को कर्म चिकपते हैं।

एवं रागद्वेषी मोहो मिथ्यात्वमविरतिश्चैव।

एभिः प्रमादयोगानुगैः समादीयते कर्म।। (56)

ऐसे राग, द्वेष, मोह मिथ्यात्व, अविरति और प्रमाद-योगों (मन, वचन काया के) का अनुसरण करता हुआ (जीव) कर्म ग्रहण करता है।

भवपरंपरा का मूल

कर्ममयः संसारः संसारनिमित्तकं पुनर्दुखम्।

तस्माद् रागद्वेषादयस्तु भवसन्ततेर्मूलम्।। (57)

कर्म का विकार संसार है। संसार के कारण ही दुःख है। अतः राग-द्वेषादि ही भवपरंपरा, संसारयात्रा के मूल है। ऐसा सिद्ध होता है।

कर्मजाल को तोडो

एतद्दोष महासंचयजालं शक्यमप्रमत्तेन।

प्रशमस्थितेन धनमप्युद्वेष्टयितुं निरवशेषम्।। (58)

इन दोषों के (राग-द्वेषादि और उसके कारण उत्पन्न होते कर्मों के) बड़े समूह, गहन ऐसी जाल का समूलोच्छेदन करना प्रमाद रहित और प्रशम में स्थिर (आत्मा) के लिये शक्य है।

आत्मसाधक की तेरह विशेषताएं

अस्य तु मूलनिबन्धं ज्ञात्वा तच्छेदनोद्यपमपरस्य।
दर्शनचारित्रतपः स्वाध्यायध्यानयुक्तस्य।। (59)
प्राणवधानृतभाषणपरधनमैथुनममत्वविरतस्य।
नवकोट्युद्गमशुद्धोञ्छमात्रयात्राधिकारस्य।। (60)
जिनभाषितार्थसद्भावभाविनो विदितलोकतत्वस्य।
अष्टादशशीलांगसहस्रधारिणः कृतिप्रतिज्ञस्य।। (61)
परिणाममपूर्वमुपागतस्य शुभभावनाध्यवसितस्य।
अन्योन्यमुत्तरोत्तरविशेषभिपश्चतः समये।। (62)
वैराग्यमार्गसंस्थितस्य संसारवासचकितस्य।
स्वहितार्थाभिरतमतेः शुभेयमुप्पद्यते चिन्ता।। (63)

इसका (दोष समूह के जाल का) मूल कारण जानकर (1) उसके उच्छेदन हेतु उद्यत बने हुए को, (2) दर्शन, चारित्र-तप-स्वाध्याय और ध्यान से युक्त को (3) हिंसा-असत्यवचन-परधनहरण-मैथुनसेवन और परिग्रह से विरक्त को (4) नवकोटि शुद्ध, उद्गम शुद्ध और उंछवृत्ति से यात्रा का (संयमयात्रा का) जिन्हें अधिकार है उनको, (5) जिन कथित अर्थ के सद्भाव से भावित होने वाले को (6) लोकपरमार्थ के ज्ञाता को (7) अट्ठारह हजार शीलांग के धारक एवं उसका पालन करने की जिन्होंने प्रतिज्ञा ली है उनको, (8) अपूर्व परिणाम (मन के) प्राप्त करने वालों को, (9) शुभ भावनाओं (अनित्यादि एवं पांच महाव्रतों की वगैरह के अध्यवसाय वालों को, (10) सिद्धान्त में परस्पर एक दूसरे से विशेष (श्रेष्ठ) के भावज्ञान से देखने वालों को (11) वैराग्य मार्ग में रहे हुए को, (12) संसारवास से त्रस्त बने हुए को (13) स्वहितार्थ मुक्तिसुख में जिनकी बुद्धि अभिरत है उनको-यह शुभ चिन्ता पैदा होती है।

भवकोटीभिरसुलभं मानुष्यं प्राप्य कः प्रमादो मे?
न च गतमायुर्भूयः प्रत्येत्यपि देवराजस्य।। (64)
आरोग्यायुबलसमुदयाश्चला वीर्यमनियतं धर्मे।

तल्लब्ध्वा हितकार्ये मयोद्यमः सर्वथा कार्यः।। (65)

करोड़ों (अनंत) जन्मों से (नरक, देव, तिर्यंचादिरूप) भी दुर्लभ मनुष्यभव पाकर यह मेरा कैसा प्रमाद है? बीता हुआ आयुष्य इन्द्र को भी वापस नहीं आता। (तो फिर मनुष्य को वापस आने की तो बात ही कहां?)

धर्म में आरोग्य, आयुष्य, बल, समुदाय (धन धान्यादि के) क्षणभंगुर है। वीर्य (उत्साह) विनश्वर है, वो (आरोग्य, आयुष्य, बल, धन-धान्य, वीर्य) पाकर हितकार्य में (ज्ञान, दर्शन, चारित्र में) मुझे सर्व प्रकार से (बिना थके) पुरुषार्थ करना चाहिए।

ज्ञानार्थी विनीत चाहिए

शास्त्रागमादृते न हितमस्ति न च शास्त्रमस्ति विनयमृते।

तस्माच्छास्त्रागमलिप्सुना विनीतेन भवितव्यम्।। (66)

शास्त्रागम के अतिरिक्त (शास्त्र यानी आगम) अन्य कोई हित नहीं है और विनय के बिना शास्त्रलाभ नहीं है, अतः शास्त्रालाभ का लाभ चाहने वालों को विनीत बनना चाहिए।

कुलरूपवचनयौवनधनमित्रैश्वर्यसंपदपि पुंसाम्

विनयप्रशमविहीना न शोभते निर्जलेव नदी।। (67)

पुरुषों की विनय और प्रशम से रहित कुल (क्षत्रियादि) रूप (लक्षणयुक्त शरीरादि) वचन (प्रियवादिता) यौवन, धन, मित्र और ऐश्वर्य (प्रभुता) की संपत्ति, बिना जल की नदी की भांति सुशोभित नहीं होती है।

न तथा सुमहाध्यैरपि वस्त्राभरणैरलंकृतो भाति।

श्रुतशीलमूलनिकषो विनीतविनयो यथा भाति।। (68)

बहुमूल्यवान् वस्त्र और आभुषणों से अलंकृत (मनुष्य) भी ऐसा सुशोभित नहीं होता जैसा कि श्रुत और शील के निकष (कसौटी का पत्थर) रूप विशिष्ट विनययुक्त (मनुष्य) शोभित बनता है।

गुरु-आराधना

गुर्वायत्ता यस्माच्छास्त्रारम्भा भवन्ति सर्वेऽपि।

तस्माद् गुर्वाराधनपरेण हितकांक्षिणा भाव्यम्।। (69)

सारी शास्त्रप्रवृतियाँ गुरुजनों के अधीन होती है, अतः हिताकांक्षी (मनुष्य को) गुरु की आराधना में उपयुक्त होना चाहिए।

धनस्योपरिनिपतत्यहितसमाचरणधर्मनिर्वापी।

गुरुवदनमलयनिसृतो वचनसरसचन्दनस्पर्शः।। (70)

अहितकारी क्रियानुष्ठान के ताप को दूर करने में समर्थ गुरु के वदनरूप मलयाचल से निकला वचनरूप आर्द्र चन्दन का स्पर्श धन्य (पुण्यशाली) पर गिरता है।

दुष्प्रतिकारी मातापितरौ स्वामी गुरुश्च लोकेऽस्मिन्।

तत्र गुरुरिहामुत्र च सुदुष्करतप्रतिहारः।। (71)

इस लोक में माता, पिता, स्वामी (राजा वगैरह) और गुरु दुष्प्रतिकार्य हैं, उसमें भी गुरु तो इस लोक में और परलोक में अत्यन्त दुर्लभ प्रतिकार्य है।

सर्व-कल्याण का मूलः विनय

विनयंफल शुश्रूषा गुरु शुश्रूषाफलं श्रुतज्ञानम्।

ज्ञानस्य फलं विरतिर्विरतिफलं चाश्रवनिरोधः।। (72)

संवरफलं तपोबलमथ तपसो निर्जराफलं दृष्टम्।

तस्मात्क्रियानिवृत्तिः क्रियानिवृत्तेरयोगित्वम्।। (73)

योगनिरोधाद् भवसन्ततिक्षयः सन्ततिक्षायान्मोक्षः।

तस्मात्कल्याणनां सर्वेषां भाजनं विनयः।। (74)

विनय का फल श्रवण, श्रवण (गुरु के समीप किया हुआ) का फल आगमज्ञान, आगमज्ञान, आगमज्ञान का फल विरति (नियम), विरति का फल संवर (आस्रव निवृत्ति)

संवर का फल तपःशक्ति, तप का फल निर्जरा, निर्जरा का फल क्रिया-निवृत्ति, क्रियानिवृत्ति से योगानिरोध।

योगनिरोध होने से भवपंरपरा का क्षय होता है, परंपरा (जन्मादि की) के क्षय से मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसलिये सारे कल्याणों का (पारम्परिक) भाजन विनय है।

अविनीतों का पतन

विनयव्यपेतमनसो गुरुविद्वत्साधुपरिभवनशीलाः।

त्रुटिमात्रविषयसंगादजरामरवन्निरूद्विग्नाः।। (75)

विनयरहित मन वाले, गुरुजन, विद्वज्जन और साधु पुरुषों का अनादर करनेवाले (जीव) अति अल्प मात्र विषयासक्ति से अजर-अमर की भांति उद्वेग रहित होते हैं।

केचित्सातर्द्धिरसातिगौरवात् सांप्रतेक्षिणः पुरुषाः।
मोहात्समुद्रवायसवदामिषपरा विनश्यन्ति।। (76)

शाता, ऋद्धि और रस में अति आदर के कारण केवल वर्तमान काल को ही देखनेवाले पुरुष (परमार्थ को नहीं समझने वाले) अज्ञान से (अथवा मोहनीय कर्म के उदय से) समुद्र के कौए की भांति मांसलोलुपी, (ऐसे वे) विनाश पाते हैं।

ते जात्यहेतुदृष्टान्तसिद्धमविरुद्धमजरमभयकरम्।
सर्वज्ञवागरसायनमुपनीतं नाभिनन्दन्ति।। (77)

श्रेष्ठ हेतु एवं दृष्टांत से सिद्ध (प्रतिष्ठित), अविरुद्ध (संवादी) अमर करनेवाला, ऐसा सर्वज्ञ वाणी का रसायन मिलने पर भी वे (रस-ऋद्धि और शाता में आसक्त) परितुष्ट नहीं होते हैं (उस रसायन का उपयोग नहीं कर पाते हैं।)

अविनीत और जिनवचन

यद्वत् कश्चित् क्षीरं मधुशर्करया संस्कृतं हृद्यम्।
पित्तार्दितेन्द्रियत्वाद्वितथमतिर्मन्यते कटुकम्।। (78)
तद्वन्निश्चयमधुरमनुकंपया सद्भिरभिहितं पथ्यम्।
तथ्यमवमन्यमाना रागद्वेषोदयोद्वृत्ताः।। (79)
जातिकुलरूपबललाभबुद्धिवाल्लभ्यकश्रुतमदान्धाः।
क्लीबाः परत्र चेह च हितमप्यर्थं न पश्यन्ति।। (80)

मीठी शक्कर युक्त, संस्कारित (मसाले डालकर उकाला हुआ) और हृदय को प्रिय दूध को, जिसकी इन्द्रियाँ पित्त से व्याकुल हैं ऐसा विपरीत बुद्धिवाला कोई (मनुष्य) जैसे कडुआ मानता है (मधुर होने पर भी)। वैसे सज्जनों द्वारा (गणधर वगैरह) अनुकंपा से कथित, परिणाम में सुन्दर, योग्य और सत्य का अनादर करनेवाले, राग द्वेष से स्वच्छंदाचारी। जाति-कुल-रूप-बल-लाभ-बुद्धि-जनप्रियत्व और श्रुत के मद से अंध बने और निःसत्व, इस भव में और परभव में उपकारी ऐसे अर्थों को (सर्वज्ञ वाणीरूप) देखते नहीं हैं।

जातिमद

ज्ञात्वा भवपरिवर्ते जातिनां कोटिशतसहस्रेषु।
हीनोत्तममध्यत्वं को जातिमदं बुधः कुर्यात्।। (81)
नैकान् जातिविशेषानिन्द्रियनिर्वृत्तिपूर्वकान् सत्वाः।
कर्मवशाद् गच्छन्त्यत्र कस्य का शाश्वता जातिः।। (82)

भव के परिभ्रमण में चौरासी लाख जातियों में हीन, उत्तम और मध्यमपन जानकर कौन विद्वान् जाति का मद करेगा।

इन्द्रियरचनापूर्वक की अनेक विविध जातियों में कर्मपरवशता से जीव जाते हैं (ऐसे) इस संसार में किस जीव की कौन-सी जाति शाश्वत है?

रूपबल-श्रुतमति-शीलविभव-परिवर्जितां-स्तथा दृष्ट्वा।
विपुल-कुलोत्पन्नानपि ननु कुलमानः परित्याज्यः।। (83)
यस्याशुद्धं शीलं प्रयोजनं तस्य किं कुलमदेन?
स्वगुणालंकृतस्य हि किं शीलवतः कुलमदेन?।। (84)

लोकप्रसिद्ध उत्तम कुल में पैदा होनेवाले भी रूपरहित, बलरहित, ज्ञानरहित, बुद्धिरहित, सदाचाररहित, और वैभवरहित होते हैं, ऐसा देखकर अवश्य कुल के मद का परिहार करना चाहिए।

जिनका शील (सदाचार) अशुद्ध है उन्हें कुल का मद क्यों करना चाहिए और जो अपने गुणों से विभूषित है उस शीलवान को कुल का अभिमान कैसा?

कः शुक्रशोणितसमुद्भवस्य सततं चयापचयिकस्य।
रोगजरापाश्रयिणो मदावकाशोऽस्ति रूपस्य।। (85)
नित्यं परिशीलनीये त्वग्मांसाच्छादिते कलुषपूर्णे।
निश्चयविनाशधर्मिणि रूप मदकारणं किं स्यात्।। (86)

वीर्य और खून से उत्पन्न, सतत हानि और वृद्धि पानेवाले, रोग एवं वृद्धत्व के स्थानभूत शरीर के रूप के अभिमान को कहां स्थान है?

सदैव जिसका संस्कार करना पड़े, चमडी और मांस से आच्छादित, अशुचि से भरे हुए और निश्चितरूप से विनाश पानेवाले रूप पर अभिमान करने का क्या कारण हो सकता है?

बलमद

बलसमुदितोऽपि यस्मान्नरः क्षणेन विबलम्वमुपयाति।
बलहीनोऽपि च बलवान् संस्कारवशात् पुनर्भवति।। (87)
तस्मादनियतभावं बलस्य सम्यग् विभाव्य बुद्धिबलात्।
मृत्युबले चाबलतां मदं न कुर्याद् बलेनापि।। (88)

बलवान मनुष्य भी पल भर में निर्बल बन जाता है, बलहीन भी संस्कारवश वापस बलवान बन जाता है।

अतः बल के अनियतभाव और मृत्यु के बल के आगे निर्बलता का बुद्धिबल से सम्यक् पर्यालोचन करके बल होने पर भी मद नहीं करना चाहिए।

लाभमद

उदयोपशमनिमित्तौ लाभालाभावनित्यकौ मत्वा।
नालाभे वैक्लव्यं न च लाभे विस्मयः कार्यः।। (89)
परशक्त्यभिप्रासादात्मकेन किंचिदुपयोगयोग्येन।
विपुलेनापि यतिवृषा लाभेन मदं न गच्छन्ति।। (90)

लाभान्तराय कर्म के उदयनिमित्तक अलाभ और लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम निमित्तक लाभ-इस तरह लाभ और अलाभ को अनित्य समझकर अलाभ में दीनता नहीं करना और लाभ में गर्व नहीं करना।

दूसरे की (दाता की) शक्तिरूप और अभिप्रसादरूप कुछ उपभोगयोग्य (पदार्थों) का बहुत लाभ होने पर भी श्रेष्ठ साधु पुरुष अभिमान नहीं करते हैं।

बुद्धिमद

ग्रहणोद्ग्राहणनवकृतिविचारणार्थावदारणाद्येषु।
बुद्ध्यङ्गविधिविकल्पेष्वनन्तपर्यायवृद्धेषु।। (91)
पूर्वपुरुषसिंहानां विज्ञानातिशयसागरानन्त्यम्।
श्रुत्वा साम्प्रतपुरुषाः कथं स्वबुद्ध्या मदं यान्ति?।। (92)

ग्रहण (नये सूत्रार्थ को ग्रहण करने में सक्षम) उद्ग्राहण (दूसरों को सूत्रार्थ देने में समर्थ) नवकृति (अभिनव शास्त्र बनाने में समर्थ) विचारणा (सूक्ष्म पदार्थ जैसे ही

आत्मा, कर्म इत्यादि में युक्तिपूर्वक जिज्ञासा) अर्थावधारणा (आचार्यादि के मुखकमल से निसृत शब्दार्थ को एक ही बार में ग्रहण करने में सक्षम) आदि (धारणा) होने पर भी, बुद्धि के अंगों के (सुश्रूषा, प्रतिप्रश्न, ग्रहण इत्यादि) के जो विकल्प, कि जो विकल्प अनंत पर्यायों ने वृद्ध (क्षयोपशम-जनित विशिष्ट बुद्धि प्रकार) हैं उनके होने पर भी।

पूर्वकाल के पुरुषसिंहो के (गणधर-चौदह पूर्वधर वगैरह के) विज्ञान के प्रकर्षरूप सागर का अनंतपना जानकर, वर्तमानकालीन (पंचम आरे के) पुरुष कैसे अपनी बुद्धि का अभिमान कर सकते है?

लोकप्रियता-मद

द्रमकैरिव चाटुकर्मकमुपकारनिमित्तकं परजनस्य।
कृत्वा यद्वाल्लभ्यकमवाप्यते को मदस्तेन?।। (93)
गर्व परप्रासादात्मकेन वाल्लभ्यकेन यः कुर्यात्।
तद्वाल्लभ्यकविगमे शोकसमुदयः परामृशति।। (94)

भीखारियों की तरह, उपकारनिमित्तक दूसरे व्यक्ति का चाटुकर्म (प्रिय भाषण) करके लोकप्रियता मिलती है, उससे क्या मद करना?

दूसरों की कृपारूप लोकप्रियता से जो अभिमान करता है, लोकप्रियता जाते ही उसे शोक आ घेरता है।

श्रुतमद

माषतुषोपाख्यानं श्रुतपर्यायप्ररुपणां चैव।
श्रुत्वातिविस्मयकरं विकरणं स्थूलभद्रमुनेः।। (95)
संपर्केद्यिमसुलभं चरणकरणसाधकं श्रुतज्ञानम्।
लब्ध्वा सर्वमदहरं तेनैव मदः कथं कायः?।। (96)

माषतुष मुनि का कथानक (सुनकर) तथा आगम के भेदों की प्ररूपणा सुनकर, अति विस्मयजनक स्थूलभद्र मुनि का विकरण (वैक्रिय सिंह रूप का निर्माण एवं श्रुतसंप्रदायविच्छेद) सुनकर।

सम्पर्क (बहुश्रुत आचार्यादि के साथ) और उद्यम के सुलभ, चरण-करण का साधक श्रुतज्ञान जो कि जात्यादि सभी मदों का नाश करनेवाला है, उसे पाकर उससे ही क्या मद करना?

मदों का परिणाम

एतेषु मदस्थानेषु निश्चयेन च गुणोस्ति कश्चिदपि।

केवलमुन्मादः स्वहृदयस्य संसारवृद्धिश्च।। (97)

इन जाति आदि आठों मदस्थानों में परमार्थदृष्टि से तो सचमुच कोई गुण है ही नहीं, यदि कुछ भी है तो मात्र अपने हृदय का उन्माद और संसार की वृद्धि।

जात्यादिमदोन्मत्तः पिशाचवद् भवति दुःखितश्चेह।

जात्यादिहीनतां परभवे च निःसंशयं लभते।। (98)

जाति वगैरह के मद से उन्मत्त (मनुष्य) इस भव में पिशाच की भांति दुःखी होता है और परलोक में अवश्यमेव हीन जाति को प्राप्त करता है।

मदत्याग के उपाय

सर्वमदस्थानानां मूलोद्घातार्थिना सदा यतिना।

आत्मगुणैरुत्कर्षः परपरिवादश्च सन्त्याज्यः।। (99)

सारे मदस्थानों का मूल जो (गर्व) है उसका विनाश चाहते हुए साधु को सदैव अपने गुणों से गर्वित नहीं बनना चाहिए और दूसरों का अवर्णवाद छोड़ देना चाहिए।

मदों से पारलौकिक नुकसान

परपरिभवपरिवादात्मोत्कर्षाच्च बध्यते कर्म।

नीचैर्गोत्रं प्रतिभवमनेकभवकोटिदुर्मोचम्।। (100)

दूसरों का पराभव (तिरस्कार) करने से और परिवाद (निन्दा) करने से तथा अपने उत्कर्ष से 'नीचगोत्र कर्म' करोड़ों भवों में भी न छूटे ऐसा जनम-जनम तक बंधता रहता है।

कर्मादयनिर्वृत्तं हीनोत्तममध्यमं मनुष्याणाम्।

तद्विधमेव तिरश्चां योनिविशेषान्तरविभक्तम्।। (101)

कर्म (गोत्र) के उदय से मनुष्यों का नीचपन, ऊंचपन और मध्यमपन निष्पन्न है, उसी तरह तीर्यंचों को (हीनत्व इत्यादि) अलग-अलग योनि के भेद से अलग-अलग होता है।

वैराग्य के कारण

देशकुलदेहविज्ञानायुर्बलभोगभूतिवैषम्यम्।

दृष्ट्वा कथमिह विदुषां भवसंसारे रतिर्भवति।। (102)

देश, कुल, शरीर, विज्ञान, आयुष्य, बल, भोग और वैभव की विषमता देखकर विद्वानों को इस (नरकादिरूप) भवसंसार में किस तरह से प्रीति हो?

अपरिगणितगुणदोषः स्वपरोभयबाधको भवति यस्मात्।
पञ्चेन्द्रियबलविबलो रागद्वेषोदयनिबद्धः।। (103)

गुण व दोष का विचार नहीं करने वाला, पांच इन्द्रियों के बल से विबल और रागद्वेष के उदय से बद्ध (जीवात्मा) स्व और पर दोनों को कष्टदायी बनता है।

शुभ विचारधारा बहती रहे

तस्माद् रागद्वेषत्यागे पञ्चेन्द्रियप्रशमने च।
शुभपरिणामावस्थितिहेतीर्यत्नेन घटितव्यम्।। (104)

इसलिये, शुभ विचारों की स्थिरता के लिये, राग और द्वेष के त्याग में, और पांच इन्द्रियों को शान्त करने के लिये प्रयत्न करना चाहिए।

दूसरों की बुराई करने से उत्साह और रचनात्मकता कम हो जाती है

दूसरों के विचारों की बुराई करने से आपकी रचनात्मकता और उत्साह खत्म हो सकते है। लेकिन यदि आप सही तरीके से आलोचना करेंगे तो टीम भी नए और बेहतर विचारों के साथ आएगी। जैसे, यदि आपको अपने किसी साथी का विचार ठीक नहीं लगता, कमजोर लगता है, तो ये ना कहें कि ये विचार कभी नहीं चल सकेगा। उनके विचार सुनें और उसके बाद उन्हें ये बताएं कि उसमें क्या कमी है और फिर सुधार के लिए उन्हें प्रोत्साहित भी करें। आपकी सलाह पर बाकि लोगों को भी यही करना चाहिए। इसी तरह यदि आपको किसी का विचार बहुत पसंद आ जाता है, तो भी ये ना कहें कि बढ़िया विचार है। इसे और बेहतर बनाने के लिए टीम के अन्य सदस्यों से बात करें। इस तरह की रचनात्मक बीतचीत से नकारात्मक फीडबैक भी मिल सकते हैं। इसलिए आपका चिंतन करना भी बहुत जरूरी है जिससे एकसाथ कई महान् विचार पैदा हो सकें।

गुरु नानक देवजी का सबसे बड़ा संदेश

हर व्यक्ति में, हर दिशा, हर कण में है ईश्वर

1499 ईस्वी में जब गुरु नानक देवजी 30 साल के हो गए थे, तब उनमें अध्यात्म परिपक्व हो चुका था। आज जिसे हम पवित्र गुरुग्रंथ साहिब के नाम से जानते हैं, उसके शुरुआती 940 दोहे नानक जी के ही हैं। आदिग्रंथ की शुरुआत मूल मंत्र से होती है, जिसमें 'एक ओंकार' से हमारा साक्षात्कार होता है। मान्यता है कि गुरु नानक देव जी अपने समय के सारे धर्मग्रन्थों से भली-भांति परिचित थे। उनकी सबसे बड़ी सीख थी-हर व्यक्ति में, हर दिशा में, हर जगह ईश्वर मौजूद है। जीवन के प्रति उनका नजरिया और सीख इन किस्सों से आसानी से समझी जा सकती हैं-

ईश्वर हर दिशा में हैं...

जिधर नानकजी के चरण किए उस दिशा में खुदा नजर आया

गुरु नानक देव जी ने 1519 से 1521 के बीच अरब देशों की यात्रा की। मक्का पहुंचने से पहले नानक एक आरामगाह में रुके। सोते समय उनके पैर काबा की तरफ थे। यह देख जियोन नाम का शक्स नाराज हो गया और बोला-आप काबा की तरफ चरण करके क्यों सो रहे है? नानक बोले-'अगर तुम्हें अच्छा नहीं लग रहा, तो खुद ही मेरे चरण उधर कर दो, जिधर खुदा न हो।' इससे जियोन निरुत्तर हो गया। तब गुरु नानक देव जी ने उसे समझाया-'हर दिशा में खुदा है। सच्चा साधक वही है जो अच्छे काम करता हुआ खुदा को हमेशा याद रखता है और दूसरों की भलाई में खुद को समर्पित रखता है'।

ईश्वर हर व्यक्ति में हैं...

बुरे लोगों को एक जगह रहने, अच्छों को फैलने का आशीर्वाद

नानक जी अपने शिष्य मरदाना के साथ लाहौर यात्रा पर थे। जब वह कंगनवाल पहुंचे तो उन्होंने देखा कि कुछ लोग जनता को परेशान कर रहे हैं। नानक जी ने उन्हें आशीर्वाद दिया-बसते रहो यानी यहीं आबाद रहो। दूसरे गांव पहुंचे, तो लोगों ने उनका काफी आदर-सत्कार किया। गांव वालों को नानक जी ने आशीर्वाद दिया-उजड़ जाओ। इस पर मरदाना को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा-जिन्होंने अपशब्द

कहे, उन्हें बसने का और जिन्होंने सत्कार किया, उन्हें आपने उजड़ने का आर्शीवाद दिया, ऐसा क्यों? नानक जी बोले-बुरे लोग एक जगह रहें, ताकि बुराई न फैले और अच्छे लोग फैले ताकि अच्छाई का प्रसार हो।

ईश्वर कण-कण में हैं...

पश्चिम में अर्घ्य देकर कहा, पानी प्यासे खेतों तक जाएगा

नानक जी हरिद्वाद गए। वहां गंगा किनारे घाट पर लोगों को पूर्व दिशा में सूर्य को अर्घ्य देते देखा। नानक जी इसके उलट पश्चिम में जल डालने लगे। लोगों ने पूछा-आप क्या कर रहे है? नानक जी ने प्रतिप्रश्न किया-आप क्या कर रहे है? जवाब मिला, हम पूर्वजों को जल दे रहे हैं। नानक जी बोले-'मैं पंजाब में खेतों को पानी दे रहा हूँ।' लोगे बोले-इतनी दूर पानी खेतों तक कैसे जाएगा?

इस पर नानक जी बोले-जब हरिद्वार में जल देने से वह परलोक में रह रहे पूर्वजों तक जा सकता है, तो कुछ सौ मील दूर पंजाब में मेरे खेतों तक क्यों नहीं जाएगा? नानक का उपदेश था-अगर श्रद्धा हो तो ईश्वर हर दिशा, हर कण और हर व्यक्ति में है'।

स्रोत-ताजुद्दीन नक्षबंदी की लिखी 'बाबा नानक शाह फकीर' और डॉ. कुलदीप चंद की किताब 'श्री गुरु नानक देवजी' से।

गुरु नानक देव जी की तीन बड़ी सीख-नाम जपो, ईमानदारी से काम करो और दान दो

गुरु नानक देव जी की तीनों बड़ी शिक्षाएं इंसानी जीवन को खुशहाली से जीने का मंत्र देती हैं। ये शिक्षाएं हैं किरत करो, वंह छको और नाम जपो। आज इन्हीं तीन मंत्रों पर सिख धर्म चलता है। ये सीखें कर्म से जुड़ी हुई हैं। कर्म में श्रेष्ठता लाने की ओर ले जाती है। यानी मन को मजबूत, कर्म को ईमानदार और कर्मफल के सही इस्तेमाल की सीख देती हैं।

मौन धारण कर नाम जपो, क्योंकि इसी से आध्यात्मिक और मानसिक शक्ति मिलती है, तेज बढ़ता है

नाम जपो-गुरु नानक जी ने कहा है-'सोचै सोचि न होवई, जो सोची लखवार। चुपै चुपि न होवई, जे लाई राहलिवतार।' यानी ईश्वर का रहस्य सिर्फ सोचने से नहीं जाना जा सकता है, इसलिए नाम जपो। नाम जपना यानी ईश्वर का नाम बार-बार सुनना और दोहराना। नानक जी ने इसके दो तरीके बताए हैं-संगत में रहकर जप किया जाए। संगत यानी पवित्र संतों की मंडली। या एकांत में जप किया जाए। जप से चित्त एकाग्र होता है और आध्यात्मिक-मानसिक शक्ति मिलती है। मनुष्य का तेज बढ़ जाता है।

ईमानदारी से श्रम करो, आजीविका वही सही

किरत करो-यानी ईमानदार श्रम से आजीविका कमाना। श्रम की भावना सिख अवधारणा का केंद्र है। इसे स्थापित करने के लिए नानक जी ने एक अमीर जमींदार के शानदार भोजन की तुलना में कठिन श्रम के माध्यम से अर्जित मोटे भोजन को प्राथमिकता दी थी।

जो मिले, वो साझा करो...इसी सीख पर सिख आय का दसवां हिस्सा दान करते हैं

वंड छको-एक बार गुरुनानक जी दो बेटों और लेहना (गुरु अंगददेव) के साथ थे। सामने कुछ ढंका हुआ था। नानक जी ने पूछा-इसे कौन खाएगा। बेटे मौन थे। लेहना ने कहा-मैं खाऊंगा। उन्हें गुरु पर विश्वास था। कपड़ा हटाने पर पवित्र भोजन मिला। लेहना ने इसे गुरु को समर्पित कर ग्रहण किया। नानक जी ने कहा लेहना को पवित्र भोजन मिला, क्योंकि उसमें समर्पण का भाव और विश्वास की ताकत है। सिख इसी आधार पर आय का दसवां हिस्सा साझा करते हैं, जिसे दसवंध कहते हैं। इसी से लंगर चलता है।

मैं हूँ अद्वितीय (एकला) सदा सर्वत्र

(मेरे बिना मेरे सप्त तत्त्व-नव पदार्थ असंभव)

(मैं हूँ मौलिक-स्वतन्त्र-स्वयंभू-शाश्वत अनन्त आत्मा)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1.आत्मशक्ति....2.क्या मिलिये....)

मैं हूँ एकला मैं हूँ अद्वितीय एकत्वविभक्त में मैं ही हूँ।

मेरे ही नवपदार्थ में मेरा ही अस्तित्व में भी मैं ही हूँ।।
मेरा अस्तित्व अनादिकाल से तथाहि रहेगा अनन्त तक।
निगोदिया से सिद्ध पर्यन्त, चौरासी लक्ष्य योनियों से मोक्ष तक।। (1)
एक निगोदिया शरीर में अनन्त निगोदिया तथापि मेरा अस्तित्त्व स्वतन्त्र।
एक सिद्ध में भी अनन्तानंत सिद्ध, तथापि मेरा अस्तित्व स्वतन्त्र।।
षट्द्रव्य व सप्त तत्त्व नव पदार्थ में, अन्योन्य प्रवेश से ले संश्लेष बन्ध।
तथापि मेरा स्वभाव अभाव न होता, अनन्तानंत कर्म परमाणु भी हो बन्ध।। (2)
मेरे ही अशुभ शुभ शुद्ध भाव से, मेरे ही होता पाप-पुण्य मोक्ष।
मेरे भाव के फल मैं ही भोगता हूँ, सांसारिक दुःख सुख व आत्मसुख।।
मेरे कर्म की समस्त अवस्थायें भी, मुझ में ही घटित भी होती।
उन उन में मेरी ही अवस्थायें, मेरी ही भाग्य व पुरुषार्थ से होती।। (3)
द्रव्य क्षेत्र काल भव भाव रूपी पंच परिवर्तन, मेरे जो हुए मेरे बिना न संभव।
पंचलब्धि प्राप्ति से सम्यक्त्व उत्पत्ति, मुझ में ही उत्पन्न संभव।।
मेरे आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र भी, मुझे में ही उत्पन्न मेरे द्वारा हुए।
मुझे में ही मेरा मोक्ष मार्ग हुआ प्रारंभ, मेरे पुरुषार्थ से मुझ में होगा पूर्ण।। (4)
मेरी ही आत्मविशुद्धि से समता प्रारंभ, मेरी आत्मविशुद्धि वृद्धि से समता वृद्धि।
समता वृद्धि से बढ़ रही आत्मिक शान्ति, समतापूर्ण से होगी पूर्णतः/(अनन्त) शांति।।
तप त्याग व ध्यान अध्ययनादि, मेरे द्वारा ही मुझे में हो रही वृद्धि।
जिससे निस्पृहता वीतरागता की वृद्धि, जिससे दूर हो रही मेरी पर प्रवृत्ति।। (5)
एकत्व की वृद्धि से हो रही अन्यत्व हानि, पूर्ण एकत्व से मिलेगी अन्यत्व से मुक्ति।
''कृत्स्नकर्म विप्रमोक्ष से मोक्ष'' ''कम्मरयविप्पमुक्को से मुत्ति''।।
अतएव मुझे मेरे द्वारा सेवनीय, आराधनीय पूजनीय व ध्येय।
अन्य द्रव्यभाव नोकर्म पर द्रव्य, त्यजनीय स्वयं में ही स्वयं में स्थित/(लीन)।। (6)
यह ही परम साम्यावस्था, स्वास्थ्य, समाधियोग, चित्त निरोध, ध्यान।
निर्विकल्प, अचल, निर्मल, निर्द्वन्द्व, टंकोत्कीर्ण ज्ञायक, स्वभाव सिद्ध।।
इस हेतु ही समस्त ही यम नियम, तप त्याग संयम ध्यान अध्ययन।
शेष अनुप्रेक्षा भी एकत्व हेतु ही, एकत्व बिना सभी व्यर्थ सदा ही।। (7)

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए।
बंध कहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि।। (3) समयसार
जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णयं णियदं।
अविसेसमसंजुत्तं तं सुद्धणय वियाणीहि।। (14) समयसार
दंसणणाण चरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणां णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो।। (16) समयसार

एकत्व से अन्यत्व होना ही संसार, अन्यत्व से एकत्व होना मोक्ष।
मोक्ष का अर्थ अन्य से विमुक्त, एकत्व विभक्त होना ही 'कनक' का लक्ष्य।।
मेरे समान ही सभी जीव व द्रव्य, अणु से लेकर सम्पूर्ण विश्व।
परस्पर उपकारी भी होते निमित्त से, अस्तित्त्व वस्तुत्त्व अगुरुलघु गुणों से पृथक्/
(अन्यत्व, एकत्व)।। (8)

नन्दौड़ दि, 14-09-2019 रात्रि 9.05

संदर्भ-

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो तं हि ससमयं जाण।
पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं।। (2) स.सार

गाथार्थः-हे भव्य! **(जीवः)** जो जीव **(चरित्रदर्शनज्ञानस्थितः)** दर्शन, ज्ञान चारित्र में स्थित हो रहा है **(तं)** उसे **(हि)** निश्चय से (वास्तव में) **(स्वसमयं)** स्व समय **(जानीहि)** जानो **(च)** और जो जीव **(पुद्गलकर्मप्रदेशास्थितं)** पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित है **(तं)** उसे **(परसमयं)** परसमय (जानीहि) जानो।

टीकाः-'समय' शब्द का अर्थ इस प्रकार हैः-'सम्' उपसर्ग है, जिसका अर्थ 'एकपना' है, और 'अय् गतौ' धातु है, जिसका अर्थ गमन और ज्ञान भी है; इसलिए एक साथ ही (युगपद्) जानना और परिणमन करना-यह दोनों क्रियायें एकत्वपूर्वक करे यह समय है। यह जीव नामक पदार्थ एकत्व पूर्वक एक ही समय में परिणमन भी करता है और जानता भी है। इसलिये वह समय है। यह जीव पदार्थ सदा ही परिणामस्वरूप स्वभाव में रहता हुआ होने से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकतारूप अनुभूति लक्षणयुक्त सत्ता सहित है। (इस विशेष से जीव की सत्ता को न माननेवाले नास्तिकवादियों का मत खण्डन हो गया; तथा पुरुषको-जीव को अपरिणामी माननेवाले

सांख्यवादियों का मत परिणमन स्वभाव कहने से खण्डित हो गया। नैयायिक और वैशेषिक सत्ता को नित्य ही मानते हैं, और बौद्ध क्षणिक ही मानते हैं; उनका निराकरण, सत्ता को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप कहने से हो गया।) और जीव चैतन्यस्वरूपता से नित्य उद्योतरूप निर्मल स्पष्ट दर्शनज्ञानज्योतिस्वरूप है; (क्योंकि चैतन्य का परिणमन दर्शनज्ञानस्वरूप है)। (इस विशेषण से चैतन्य को ज्ञानाकारस्वरूप न माननेवाले सांख्यमतवालों का निराकरण हो गया।) और वह जीव, अनन्त धर्मों में रहनेवाला जो एकधर्मीपना है उसके कारण जिसे द्रव्यत्व प्रगट है; ऐसा है; (क्योंकि अनन्त धर्मों की एकता द्रव्यत्व है)। (इस विशेषण से, वस्तु को धर्मों से रहित माननेवाले बौद्धमतियों का निषेध हो गया।) और वह क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान अनेक भाव जिसका स्वभाव होने से जिसने गुणपर्यायों को अंगीकार किया है-ऐसा है। (पर्याय क्रमवर्ती होती है और गुण सहवर्ती होता है; सहवर्ती को अक्रमवर्ती भी कहते हैं।) (इस विशेषण से पुरुष को निर्गुण माननेवाले सांख्यमतवालों का निरसन हो गया।) और वह, अपने और परद्रव्यों के आकारों को प्रकाशित करने की सामर्थ्य होने से जिसने समस्तरूप को प्रकाशनेवाली एकरूपता प्राप्त की है,-ऐसा है, (अर्थात् जिसमें अनेक वस्तुओं के आकार प्रतिभासित होते हैं, ऐसे एक ज्ञान के आकाररूप है) इस विशेषण से, ज्ञान अपने को ही जानता है पर को नहीं;-इस प्रकार एकाकार को ही माननेवाले का, तथा अपने को नहीं जानता किन्तु पर को जानता है, इस प्रकार अनेकाकार को ही मानने वाले का व्यवच्छेद हो गया। और वह, अन्य द्रव्यों के जो विशिष्ट गुण-अवगाहन-गति-स्थिति-वर्तना-हेतुत्व और रूपत्वि हैं, उनके अभाव के कारण और असाधारण चैतन्यरूपतास्वभाव के सद्भाव के कारण आकाश, धर्म, अधर्म, काल और पुद्गल-इन पांच द्रव्यों से भिन्न है। (इस विशेषण से एक ब्रह्मवस्तु को ही माननेवाले का खण्डन हो गया।) और वह, अनन्त अन्य द्रव्यों के साथ अत्यन्त एक-क्षेत्रावगाहरूप होने पर भी, अपने स्वरूप से न छूटने से टंकोत्कीर्ण चैतन्यस्वभावरूप है। (इस विशेषण से वस्तु-स्वभाव का नियम बताया है।)-ऐसा जीव नामक पदार्थ समय है।

जब यह (जीव), सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ केवलज्ञान को उत्पन्न करने वाली भेदज्ञानज्योतिका उदय होने से, सर्व परद्रव्यों से

छूटकर दर्शन-ज्ञानस्वभाव में नियत वृत्तिरूप (अस्तित्वरूप) आत्मत्त्व के साथ एकत्वरूप में लीन होकर प्रवृत्ति करता है तब दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित होने से अपने स्वरूप को एकत्वरूप से एक ही समय में जानता तथा परिणमता हुआ वह 'स्वसमय' है, इस प्रकार प्रतीत किया जाता है; किन्तु जब वह, अनादि अविद्यारूपी केले के मूल की गांठ की भाँति (पुष्ट हुआ) मोह उसके उदयानुसार प्रवृत्ति की आधीनता से, दर्शनज्ञानस्वभाव में नियत वृत्तिरूप आत्मतत्त्व से छूटकर परद्रव्य के निमित्त से उत्पन्न मोहरागद्वेषादि भावों में एकतारूप से लीन होकर प्रवृत्त होता है तब पुद्गलकर्म के (कार्माणस्कन्धरूप) प्रदेशों में स्थित होने से युगपद् पर को एकत्वपूर्वक जानता और पररूप से एकत्वपूर्वक परिणमित होता हुआ 'परसमय' है, इस प्रकार प्रतीति की जाती है। इस प्रकार जीव नामक के पदार्थ की स्वसमय और परसमयरूप द्विविधता प्रगट होती है।

भावार्थ-जीव नामक वस्तु को पदार्थ कहा है। 'जीव' इस प्रकार अक्षरों का समूह 'पद' है और उस पद से जो द्रव्यपर्यायरूप अनेकांतस्वरूपता निश्चित की जाये वह पदार्थ है। वह जीवपदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी सत्तास्वरूप है, दर्शनज्ञानमयी चेतनास्वरूप है, अनंतधर्मस्वरूप द्रव्य है, द्रव्य होने से वस्तु है, गुणपर्यायवान है, उसका स्वपरप्रकाशक ज्ञान अनेकाकाररूप एक है, और वह (जीव-पदार्थ) आकाशादि से भिन्न असाधारण चैतन्यगुणस्वरूप है, तथा अन्य द्रव्यों के साथ एक क्षेत्र में रहने पर भी अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता। ऐसा जीव नामक पदार्थ समय है। जब वह अपने स्वभाव में स्थित हो तब स्वसमय है, और परस्वभाव-रागद्वेषमोहरूप होकर रहे तब परसमय है। इस प्रकार जीव के द्विविधता आती है।

समय की द्विविधता में आचार्य बाधा बतलाते हैः-

एयत्तणिच्छयगदो समझो सव्वत्थ सुन्दरो लोए।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि।। (3)

गाथार्थः-(एकत्वनिश्चयगतः) एकत्व निश्चय को प्राप्त जो **(समयः)** समय है वह **(लोके)** लोक में **(सर्वत्र)** सब जगह **(सुन्दरः)** सुन्दर है (तेन) इसलिये **(एकत्वे)** एकत्व में **(बंधकथा)** दूसरे के साथ बंध की कथा **(विसंवादिनी)** विसंवाद-विरोध करनेवाली **(भवति)** है।

टीका:-यहाँ 'समय' शब्द से सामान्यतया सभी पदार्थ कहे जाते हैं, क्योंकि व्युत्पत्ति के अनुसार 'समयते' अर्थात् एकीभाव से (एकत्वपूर्वक) अपने गुण-पर्यायों को प्राप्त होकर जो परिणमन करता है सो समय है। इसलिये धर्म-अधर्म-आकाश-काल-पुद्गल-जीवद्रव्यस्वरूप लोक में सर्वत्र जो कुछ जितने जितने पदार्थ है वें सभी निश्चय से (वास्तव में) एकत्व निश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को पाते हैं, क्योंकि अन्य प्रकार से उसमें सर्वसंकर आदि दोष आ जायेंगे। वे सब पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहने वाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं-स्पर्श करते हैं तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते, अत्यन्त निकट एकक्षेत्रावगाहरूप से तिष्ठ रहे हैं तथापि वे सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते, पररूप परिणमन न करने से अनन्त व्यक्तिता नष्ट नहीं होती इसलिये वे टंकोत्कीर्ण की भांति (शाश्वत) स्थित रहते हैं और समस्त विरुद्ध कार्य तथा अविरुद्ध कार्य दोनों की हेतुता से वे सदा विश्व का उपकार करते हैं-टिकाये रखते हैं। इस प्रकार सर्व पदार्थों का भिन्न 2 एकत्व सिद्ध होने से जीव नामक समय को बंध की कथा से ही विसंवाद की आपत्ति आती है; तो फिर बंध जिसका मूल है ऐसा जो पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित होना, वह जिसका मूल है ऐसा-परसमयपना, उससे उत्पन्न होनेवाला (परसमय-स्वसमयरूप) द्विविधपना उसको (जीव नाम के समय को) कहां से हो? इसलिये समय के एकत्व का होना ही सिद्ध होता है।

भावार्थ:-निश्चय से सर्व पदार्थ अपने 2 स्वभाव में स्थित रहते हुए भी शोभा पाते हैं। परन्तु जीव नामक पदार्थ की अनादि काल से पुद्गल कर्म के साथ निमित्तरूप बंध-अवस्था है; उससे इस जीव में विसंवाद खड़ा होता है, इसलिये वह शोभा को प्राप्त नहीं होता। इसलिये वास्तव में विचार किया जाये तो एकत्व ही सुन्दर है; उससे यह जीव शोभा को प्राप्त होता है।

एकत्व की असुलभता बताते है:-

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।। (4)

गाथार्थ:-(सर्वस्य अपि) सर्वलोकको **(कामभोगबन्धकथा)** कामभोगसंबंधी बन्ध की कथा तो **(श्रुतपरिचितानुभूता)** सुनने में आगई है, परिचय में आगई है, और

अनुभव में भी आगई है, इसलिये सुलभ है; किन्तु **(विभक्तस्य)** भिन्न आत्मा का **(एकत्वस्य उपलंभः)** एकत्व होना कभी न तो सुना है, न परिचय में आया है, और न अनुभव में आया है, इसलिये **(केवलं)** एकमात्र वही **(न सुलभः)** सुलभ नहीं है।

टीकाः-इस समस्त जीवलोकको, कामभोगसम्बन्धी कथा एकत्व विरुद्ध होने से अत्यन्त विसंवाद करानेवाली है (आत्मा का अत्यन्त अनिष्ठ करनेवाली है) तथापि पहले अनन्त बार सुनने में आई है, अनन्त बार परिचय में आई है, और अनन्त बार अनुभव में आई है। वह जीवलोक, संसाररूपी चक्र के मध्य में स्थित है, निरन्तर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप अनन्त परावर्तन के कारण भ्रमण को प्राप्त हुआ है, समस्त विश्व को एकछत्र राज्य से वश करनेवाला महा मोहरूपी भूत जिसके पास बैल की भांति भार वाहन कराता है, जोर से प्रगट हुए तृष्णारूपी रोग के दाह से अंतरंग में पीड़ा प्रगट हुई है, आकुलित हो होकर मृगजल को भांति विषयग्राम को (इन्द्रियविषयों के समूह को) जिसने घेरा डाल रखा है, और वह परस्पर आचार्यत्व भी करता है (अर्थात् दूसरों से कहकर उसी प्रकार अंगीकार करवाता है)। इसलिये कामभोग की कथा तो सबके लिये सुलभ है। किन्तु निर्मल भेदज्ञान रूपी प्रकाश से स्पष्ट भिन्न दिखाई देनेवाला यह मात्र भिन्न आत्मा का एकत्व ही है,-जो कि सदा प्रगटरूप से अन्तरङ्ग में प्रकाशमान है, तथापि कषायचक्र (कषायसमूह) के साथ एकरूप जैसा किया जाता है, इसलिये अत्यन्त तिरोभाव को प्राप्त हुआ है (ढक रहा है) वह, अपने में अनात्मज्ञता होने से (स्वयं आत्मा को न जानने से) और अन्य आत्माको जाननेवालों की संगति-सेवा न करने से, न तो पहले कभी सुना है, न परिचय में आया है और न कभी अनुभव में आया है, इसलिये भिन्न आत्मा का एकत्व सुलभ नहीं है।

भावार्थः-इस लोक में समस्त जीव संसाररूपी चक्रपर चढ़कर पंच परावर्तनरूप भ्रमण करते हैं। वहां उन्हें मोहकर्मोदयरूपी पिशाच के द्वारा जोता जाता है, इसलिये वे विषयों की तृष्णारूपी दाह से पीड़ित होते हैं; और उस दाह का इलाज (उपाय) इन्द्रियों के रूपादि विषयों को जानकर उनकी ओर दौड़ते हैं; तथा परस्पर भी विषयों का ही उपदेश करते हैं। इस प्रकार काम तथा भोग की कथा तो अनन्तबार सुनी, परिचय में प्राप्त की और उसी का अनुभव किया इसलिये वह सुलभ है। किन्तु सर्व

परद्रव्यों से भिन्न एक चैतन्यचमत्कारस्वरूप अपने आत्मा की कथा का ज्ञान अपने को अपने से कभी नहीं हुआ, और जिन्हें वह ज्ञान हुआ है उनकी कभी सेवा नहीं की; इसलिये उसकी कथा न तो कभी सुनी, न परिचय किया और न अनुभव किया इसलिये उसकी प्राप्ति सुलभ नहीं, दुर्लभ है।

खादिपञ्चकनिर्मुक्तं कर्माष्टकविवर्जितम्।

चिदात्मकं परंज्योतिर्वन्दे देवेन्द्रपूजितम्।। (2) श्री पद्मनन्दी.

जो चैतन्यस्वरूपतेज पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश काल से सर्वथा भिन्न है तथा ज्ञानावरणादिकर्मों से रहित है और जिसका बड़े-बड़े देव तथा इन्द्र आदिक सदा पूजन करते हैं ऐसा वह चैतन्यस्वरूप 'उत्कृष्ट तेज' मेरी रक्षा करे अर्थात् उस चैतन्यस्वरूपतेज को मस्तक नवाकर मैं नमस्कार करता हूं।

यदव्यक्तमबोधानां व्यक्तं सद्बोधचक्षुषाम्।

सारं यत्सर्ववस्तूनां नमस्तमै चिदात्मने।। (3)

जिस चैतन्यस्वरूप आत्मा को ज्ञानरहित अज्ञानीपुरुष अनुभव नहीं कर सकते हैं तथा अखंड ज्ञान के धारक ज्ञानी जिसका सदा अनुभव करते हैं और समस्त पदार्थों में जो सारभूत है ऐसे उस चैतन्य स्वरूप आत्मा के लिये मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूं।

चित्तत्वं तत्प्रतिप्राणिदेह एव व्यवस्थितम्।

तमश्छत्रा न जानन्ति भ्रमन्ति च बहिर्बहिः।। (4)

यद्यपि प्रत्येकप्राणी की देह में यह निर्मलचैतन्यरूपीतत्त्व विराजमान है तो भी जिनमनुष्यों की आत्मा अज्ञानान्धकार से ढ़की हुई है वे इसको कुछ भी नहीं जानते हैं तथा चैतन्यसेभिन्न बाह्यपदार्थों में ही चैतन्य के भ्रम से भ्रान्त होते हैं।

भ्रमतोऽपि सदा शास्त्रजाले महति केचन।

न विदन्ति परं तत्त्वं दारुणीव हुताशनम्।। (5)

कई एक मनुष्य अनेक शास्त्रों का स्वाध्याय भी करते हैं तो भी तीव्रमोहनीय कर्म के उदय से भ्रान्तहोकर लकड़ी में जिस प्रकार अग्नि नहीं मालूम होती उसी प्रकार चैतन्यस्वरूप आत्मा को अंशमात्र भी नहीं जानते।

केचित् केन्येपि कारुण्यात्कथ्यमानमपि स्फुटम्।

न मन्यन्ते न शृण्वन्ति महामोहमलीमसाः।। (6)

प्रबलमोहनीयकर्म से अज्ञानीहुवे अनेकमनुष्य उत्तमपुरुषोंकर बताये हुवेभी आत्मतत्त्व को न तो मानते ही हैं तथा न सुनते ही हैं।

धुरि धर्मात्मकं तत्त्वं दुःश्रुतेर्मन्दबुद्धयः।

जात्यन्धहस्तिरूपेण ज्ञात्वा नश्यन्ति केचन।। (7)

यद्यपि वस्तु का स्वरूप अनेकान्तस्वरूप है तोभी अनेक जड़बुद्धिमनुष्य, जन्मांध जिस प्रकार हाथी के एक एक भागको ही समझ लेते हैं तथा नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार एकान्त स्वरूप मानकर ही नष्ट होते हैं।

केचित्किञ्चित्परिज्ञाय कुतश्चिद् गर्विताशयाः।

जगन्मन्दं प्रपश्यन्तो नाश्रयान्ति मनीषिणः।। (8)

कई एक मनुष्य कहीं से कुछ थोड़ी सी बात जानकर अपने को बड़ा विद्वान मान लेते हैं तथा अपने सामने जगत् भर के विद्वानों को मूर्ख समझते हैं अतएव अहंकार से वे विद्वानों की संगति भी नहीं करना चाहते।

धर्म को परीक्षाकर के ग्रहण करना चाहिये

जन्तुमुद्धरते धर्मः पतन्तं जन्मशङ्कटे।

अन्यथा स कृतो भ्रान्त्या लोकैर्ग्राह्यः परीक्षितः।। (9)

संसार संकट में फँसे हुवे प्राणियों का उद्धार करनेवाला धर्म है किन्तु स्वार्थीदुष्टों ने उसको विपरीत ही कर दिया है अर्थात् उनका मानाहूवा धर्म का स्वरूप संसार में केवल डुबाने वाला ही है इसलिये भव्यजीवों को चाहिये कि वे भलीभांति परीक्षाकर धर्म को ग्रहण करें।

कौन धर्म प्रमाण करने योग्य

सर्वविद्वीतरागोक्तो धर्मः सूनृततां व्रजेत्।

प्रामाण्यतो यतः पुन्सो वाचः प्रामाण्यमिष्यते।। (10)

समस्त लोकालोक के पदार्थों के जाननेवाले तथा वीतरागी मनुष्य का कहा हुआ ही धर्म प्रमाणीक होता है क्योंकि मनुष्य के प्रामाण्य से ही वचनों में प्रमाणता समझी जाती है इसलिये जब वीतराग तथा सर्वज्ञ प्रमाणीक पुरुष हैं तब उनका कहाहुवा धर्म भी प्रमाणीक ही है ऐसा समझना चाहिये।

बहिर्विषयसंबन्धः सर्वः सर्वस्य सर्वदा।

अतस्तद्भिन्नचैतन्यबोधयोगौ तु दुर्लभौ।। (11)

समस्तबाह्यविषयों का संबंध तो सबजीवों के सदाकालही रहता है किन्तु बाह्य पदार्थों के संबंध से जुदा जो ज्ञानानन्द स्वरूप चैतन्य का ज्ञान तथा संबंध है वह अत्यंत दुर्लभ है।

लब्धिपञ्चकसामिग्रीविशेषात्पात्रतां गतः।

भव्यः सम्यग्दृगादीनां यः सः मुक्तिपथे स्थितः।। (12)

जिसको सिद्धि होनेवाली है ऐसा जो भव्य, वह देशना 1 प्रायोग्य 2 विशुद्धि 3 क्षयोपशम 4 तथा करणलब्धि इस प्रकार इन पांचलब्धिस्वरूप सामग्री के विशेष से सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र रूपी रत्नत्रयका पात्र बनता है अर्थात् रत्नत्रय को धारण करता है वही मोक्ष में स्थित है ऐसा समझना चाहिये।

भावार्थ–सत्यउपदेशका नामतो देशना है तथा पंचेद्रीपना सैनीपना गर्भजपना मनुष्यपना ऊंचा कुल यह प्रायोग्य नामक लब्धि है तथा सर्वघातीप्रकृतियोंकातो उदयाभावीक्षय तथा देशघाती प्रकृतियों का उपशम यह क्षयोपशमलब्धि है तथा परिणामों की है तथा परिणामों की विशुद्धताकानाम विशुद्धिलब्धि है और अधः करण अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण यह करणलब्धि है इन पांचप्रकार की लब्धियों के विशेष से जो रत्नत्रयकाधारी है वही भव्यपुरुष शीघ्र मुक्ति को जाता है।

सम्यग्दृग्बोधचारित्रं त्रितयं मुक्तिकारणम्।

मुक्तावेव सुखं तेन तत्र यत्नो विधीयताम्।। (13)

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र इन तीनों का समुदाय ही मुक्ति का कारण है और वास्तविक सुख की प्राप्ति मोक्ष में ही है इसलिये भव्यजीवों को उसी के लिये प्रयत्न करना चाहिये।

सम्यग्दर्शनादि का स्वरूप

दर्शनं निश्चयः पुंसि बोधस्तद्बोध इष्यते।

स्थितिरत्रैव चारित्रमितियोगः शिवाश्रयः।। (14)

आत्मा का निश्चय तो सम्यग्दर्शन है तथा आत्मकाज्ञान सम्यग्ज्ञान है और आत्मा में निश्चल रीति से रहना सम्यक्चारित्र है तथा इन तीनों की जो एकता वही मोक्ष का कारण है।

एकमेव हि चैतन्यं शुद्धनिश्चयतोऽथवा।

कोऽवकाशो विकल्पानां तत्राखण्डैकवस्तुनि।। (15)

अथवा शुद्धनिश्चयनय से एक चैतन्य ही मोक्ष का मार्ग है क्योंकि आत्मा एक अखंड पदार्थ है इसलिये उसमें सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र आदि भेदों का अवकाश नहीं है अर्थात् अखंड तथा एक आत्मा के सम्यग्दर्शन आदि टुकड़े नहीं हो सकते।

प्रमाणनयनिक्षेपा अर्वाचीने पदे स्थिताः।

केवले च पुनस्तस्मिंस्तदेकः प्रतिभासते।। (16)

जब तक आत्मा शुद्धात्मा नहीं हुवा है तभी तक इसमें प्रमाण तथा नय और निक्षेप भिन्न 2 हैं ऐसे मालूम पड़ते हैं किन्तु जिससमय यह आत्मा शुद्धात्मा हो जाता है उस समय इसमें केवल चैतन्यस्वरूप आत्माही प्रतिभासता है।

निश्चयैकदृशा नित्यं तदेवेकं चिदात्मकम्।

प्रपश्यामि गतिभ्रान्तिर्व्यवहारदृशा परम्।। (17)

शुद्धनिश्चयनय से यह आत्मा एक है नित्य है तथा चैतन्य स्वरूप है ऐसा मैं अनुभवकरने वाला अनुभव करता हूँ किन्तु व्यवहारनय से प्रमाणस्वरूप तथा नय और निक्षेपस्वरूप भी मैं इस आत्मा को भलीभांति देखता हूँ।

अजमेकं परं शान्तं सर्वोपाधिविवर्जितम्।

आत्मानमात्मना ज्ञात्वा तिष्ठेदात्मनि यः स्थिरः।। (18)

स एवामृतमार्गस्य सएवामृतश्नुते।

सएवार्हन् जगन्नाथः सएवप्रभुरीश्वरः।। (19)

जो पुरुष जन्मरहित और एक तथा शान्तिस्वरूप और समस्तकर्मोंकररहित अपने को अपने ही से जानकर अपने में ही निश्चलरीति से ठहरता है वही पुरुष मोक्ष को जानेवाला है तथा वही मनुष्य मोक्ष सुख को प्राप्त होता है और वही अर्हन्त तथा जगन्नाथ और प्रभु तथा ईश्वर कहलाता है इसलिये भव्यजीवों को अपनी आत्मा में अवश्य निश्चलरीति से ठहरना चाहिये।

केवलज्ञानदृक्सौख्यस्वभावं तत्परं महः।

तत्र ज्ञातेन किं ज्ञातं दृष्टे दृष्टं श्रुते श्रुतम्।। (20)

जो उत्कृष्ट आत्मस्वरूपतेज है वह केवलदर्शन, तथा केवलज्ञान और अनंतसुखस्वरूप ही है इसलिये जिसने इस तेज को जान लिया उसने सब कुछ जानलिया और जिसने इस तेज को देख लिया उसने सब कुछ देख लिया तथा जिसने इस तेज को सुन लिया उसने सब कुछ सुनलिया ऐसा समझना चाहिये।

इति ज्ञेयं तदेवैकं श्रवणीयं तदेव हि।

दृष्टव्यञ्च तदैवैकं नान्यन्निश्चतो बुधैः।। (21)

इसलिये भव्यजीवों को निश्चय से एक चैतन्यस्वरूप ही जाननेयोग्य है तथा वही एक सुनने योग्य है और वही देखने योग्य है किन्तु उससे भिन्न कोई भी वस्तु न तो जानने योग्य है तथा न सुनने योग्य है और न देखने ही योग्य है ऐसा समझना चाहिये।

गुरूपदेशतोऽभ्यासाद्वैराग्यादुपलभ्य यत्।

कृतकृत्यो भवेद्योगी तदेवैकं नचापरम्।। (22)

गुरु के उपेदश से तथा शास्त्र के अभ्यास से और वैराग्य से जिसको पाकर योगीश्वर कृतकृत्य हो जाते हैं वह यही चैतन्यस्वरूपतेज है और कोई नहीं है।

तत्प्रति प्रीतिचित्तेन येन वार्तापि हि श्रुता।

निश्चितं स भवेद्भव्यो भाविनिर्वाणभाजनम्।। (23)

जिस मनुष्य ने प्रसन्नचित्त से इसचैतन्यस्वरूप आत्मा की बात भी सुन ली है वह भव्यपुरुष होने वाली मुक्ति का निश्चय से पात्र होता है अर्थात् वह नियम से मोक्ष को जाता है इसलिये मोक्षाभिलाषियों को अवश्य ही इस चैतन्यस्वरूप आत्मा का अनुभव करना चाहिये।

जानीते यः परं ब्रह्म कर्मणः पृथगेकताम्।

गतं तद्गतबोधात्मा तत्स्वरूपं स गच्छति।। (24)

जो मनुष्य शुद्धात्मा में लीन होकर कर्मों से भिन्न तथा एक ऐसे उस परब्रह्म परमात्मा को जानता है वह पुरुष परब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है इसलिये भव्यजीवों को परमात्मा का अवश्य ध्यान करना चाहिये।

केनापि परेण स्यात्संबन्धो बंधकारणम्।

परैकत्वपदे शान्ते मुक्तये स्थितिरात्मनः।। (25)

अन्य पदार्थों के साथ जो आत्मा का संबंध होना है उससे केवल बंध ही होता है तथा उसी आत्मा का जो उत्कृष्ट शान्त और एकतारूप स्थान में ठहरना है उससे मोक्ष ही होता है इसलिये मोक्षाभिलाषियों को परपदार्थों से ममत्व छोड़कर स्वस्वरूप में ही लीन होना चाहिए।

विकल्पोर्मिभरत्यक्तः शान्तः कैवल्यमाश्रितः।
कर्माभावे भवेदात्मा वाताभावे समुद्रवत्।। (26)

पवन के थंम जाने पर जिस प्रकार समुद्र लहरियों से रहित तथा क्षोभ रहित शांत हो जाता है उसी प्रकार जब इस आत्मा से सर्वथा कर्मों का संबंध छूट जाता है उस समय यह आत्मा भी समस्त प्रकार के विकल्पोंकर रहित तथा केवलज्ञानकर सहित-शान्त हो जाता है।

संयोगेन यदा यातं मत्तस्तत्सकलं परम्।
तत्परित्यागयोगेन मुक्तोऽहमिति मे मतिः।। (27)

सम्यग्दृष्टि इस प्रकार का चिंतवन करता रहता है कि जो वस्तु संयोग से उत्पन्न हुई हैं वे सब मुझसे जुदी हैं तथा मुझे इस बात का ज्ञान है कि उन संयोग से पैदा हुई समस्त वस्तुओं के त्याग से मैं मुक्त हूँ मेरी आत्मा में किसी प्रकार के कर्म का संबंध नहीं है।

किं मे करिष्यतः क्रूरौ शुभाशुभनिशाचरौ।
रागद्वेषपरित्यागमोहमन्त्रेण कीलितौ।। (28)

रागद्वेषरूपीप्रवलमंत्र से कीलितहुवे तथा क्रूर ऐसे शुभ तथा अशुभ कर्मरूपी राक्षस मेरा क्या करेंगे? कुछ भी नहीं कर सकते।

भावार्थ-रागद्वेषके होने से ही शुभ तथा अशुभकार्मों का बंध होता है यदि रागद्वेष का ही संबंध मेरी आत्मा के साथ न रहेगा तो मेरा शुभ तथा अशुभकर्म कुछ भी नहीं कर सकते ऐसा सम्यग्दृष्टि विचार करता रहता है।

संबन्धेऽपि सति त्याज्यौ रागद्वेषौ महात्मभिः।
विना तेनापि ये कुर्युस्ते कुर्युः किं न वातुलाः।। (29)

सज्जनों को चाहिये कि रागद्वेष के संबंध होने पर भी वे रागद्वेष का त्याग कर देवें किन्तु जो लोग संबंध के न होने पर भी रागद्वेष को करते हैं वे मनुष्य समस्त अनिष्टों को पैदा करते हैं।

भावार्थ-रागद्वेष के होते संते अनेक प्रकार के अनिष्ट होते हैं इसलिये सज्जनों को कदापि रागी तथा द्वेषी नहीं बनना चाहिये।

मनोवाक्कायचेष्टाभिस्तद्विधं कर्म जृम्भते।

उपास्यते तदेवैकं तेभ्योभिन्नं मुमुक्षुभिः।। (30)

मन, वचन, काय की चेष्टा से चेष्टानुसार कर्म वृद्धि को प्राप्त होता है इसलिये मोक्षाभिलाषी भव्य पुरुष, मन, वचन, काय से भिन्न एक चैतन्यमात्र आत्मा की ही उपासना करते हैं।

द्वैततोद्वैतमद्वैतादद्वैतं खलु जायते।

लोहाल्लोहमयं पात्रं हेम्नोहेममयं यथा।। (31)

जिस प्रकार लोह से लोहमय ही पात्र की उत्पत्ति होती है तथा सुवर्ण से सुवर्णमयही पात्र की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार द्वैत से निश्चय से द्वैत ही होता है तथा अद्वैत से अद्वैत ही होता है।

भावार्थ-कर्म तथा आत्मा के मिलाप का नामद्वैत है अतः जबतक कर्म तथा आत्मा का मिलाप रहेगा तबतक जो संसारी ही रहेगा किन्तु जिससमय कर्म तथा आत्मा का मिलाप छूट जावेगा तब मुक्त होजावेगा।

निश्चयेन तदेकत्वमद्वैतममृतं परम्।

द्वितीयेन कृतं द्वैतं संसृतिर्व्यवहारतः।। (32)

निश्चयनय से तो एकतारूप जो अद्वैत है वही मोक्ष है और व्यवहार नय से कर्मोंकर किया हुवा जो द्वैत है वह संसार है।

भावार्थ-जब तक कर्मों का संबंध रहता है तबतक तो संसार है किन्तु जिससमय कर्मों का संबंध छूट जाता है उस समय मोक्ष है।

बंधमोक्षौ रतिद्वेषौ कर्मात्मनौ शुभाशुभौ।

इति द्वैताश्रिता बुद्धिरसिद्धिरभिधीयते।। (33)

बंध और मोक्ष राग और द्वेष कर्म और आत्मा शुभ और अशुभ इस प्रकार द्वैतकर सहित जो बुद्धि है वह असिद्धि है अर्थात् निजानन्द शुद्ध अद्वैतस्वरूप की रोकनेवाली है।

उदयोदीरणासत्ता प्रबन्धः खलु कर्मणः।

बोधात्मधाम सर्वेभ्यस्तदेवैकं परं परम्।। (34)

उदय उदीरणा तथा सत्ता इत्यादि समस्त कर्मों की ही रचना है किन्तु आत्मा इस समस्त रचना से भिन्न है उत्कृष्ट है तथा केवलज्ञान का धारी है।

क्रोधादिकर्मयोगेऽपि निर्विकारं परं महः।

विकारकारिभिर्भेद्यैर्न विकारि नभोभवेत्।। (35)

काले पीले नीले घोड़ा के आकार के हाथी के आकार इत्यादि अनेकविकारसहित बादलों से जिस प्रकार अमूर्तिक आकाश विकृत नहीं होता उसी प्रकार यद्यपि आत्मा के साथ क्रोध आदि कर्मों का संबंध है तो भी आत्मा विकार रहित ही है।

नामापिहि परं तस्मान्निश्चयात्तदनामकम्।

जन्ममृत्यादिचाशेषं वपुर्धर्मं विदुर्बुधाः।। (36)

निश्चयनय से आत्मा का कोई नाम नहीं है वह नाम रहित ही है और जो ये जन्म-मरण आदि धर्म हैं वे शरीर के ही धर्म है ऐसा बड़े 2 विद्वान् कहते हैं।

बोधेनापि युतिस्तस्य चैतन्यस्यतु कल्पना।

सच तच्च तयौरैक्यं निश्चयेन विभाव्यते।। (37)

आत्मा ज्ञानकर सहित है यह तो चैतन्यस्वरूप आत्मा में ही कल्पना ही है क्योंकि शुद्धनिश्चयनय से आत्मा और ज्ञान एक ही पदार्थ हैं ऐसा अनुभव गोचर है।

क्रियाकारकसंबन्धप्रबन्धोज्झित मूर्त्तियत्।

एवं ज्योतिस्तदेवैकं शरण्यं मोक्षकांक्षिणाम्।। (38)

जो चैतन्यरूपी तेज क्रिया और कारक के संबंध की रचना रहित है वही मोक्षाभिलाषी भव्यजीवों का परमशरण है।

भावार्थ-क्रिया कारक के संबंधकर रहित, तथा एक ऐसे चैतन्यस्वरूप तेज की जो भव्यजीव उपासना करते हैं उनको मोक्ष मिलता है इसलिये भव्यजीवों को ऐसे चैतन्य की ही सदा उपासना करनी चाहिये।

तदेकं परमं ज्ञानं तदेकं शुचि दर्शनम्।

चारित्रं च तदेकं स्यात् तदेकं निर्मल तपः।। (39)

वह चैतन्यस्वरूप शुद्ध आत्मा ही तो ज्ञान है तथा वही दर्शन है और वही

चारित्र है तथा वही तप है किन्तु उस शुद्धात्मा से भिन्न न कोई ज्ञान है तथा न कोई दर्शन है और न कोई चारित्र है तथा न कोई तप ही है इसलिये भव्यजीवों को आत्मा का ही ज्ञान श्रद्धान आचरण आदि करना चाहिये।

नमस्यञ्च तदेवैकं तदेवैककञ्च मंगलम्।

उत्तमञ्च तदेवैकं तदेव शरणं सताम्।। (40)

वही एक चैतन्यस्वरूप आत्मा नमस्कार करने योग्य है तथा वही मंगलस्वरूप है और वही सर्व पदार्थों में श्रेष्ठ है तथा वही भव्यजीवों का शरण है।

आचारश्च तदेवैकं तदेवावश्यकक्रिया।

स्वाध्यायस्तु तदेवैकमप्रमत्तस्य योगिनः।। (41)

प्रमादरहित योगीश्वरों का जो चिदानन्दस्वरूप आत्मा का ध्यान है वही तो आचार है तथा वही आवश्यक क्रिया है तथा वही स्वाध्याय है किन्तु उससे भिन्न आचार आदि कोई वस्तु नहीं है।

गुणशीलानि सर्वाणि धर्मश्चात्यन्तनिर्मलः।

सम्भाव्यते परं ज्योतिस्तदेकमनुतिष्ठतः।। (42)

जो पुरुष उसचैतन्यस्वरूप आत्मा का ध्यान करनेवाला है वही पुरुष चौरासीलाख उत्तरगुणों का धारी है तथा वही अठारह हजार शीलव्रतों का धारी है और उसी पुरुष के निर्मलधर्म हैं ऐसा निश्चय है।

तदेवैकं परं रत्नं सर्वशास्त्रमहोदधेः।

रमणीयेषु सर्वेषु तदेकं पुरतः स्थितम्।। (43)

समस्तशास्त्ररूपीविस्तीर्णसमुद्र का उत्कृष्ट रत्न यह चैतन्यस्वरूप आत्मा ही है अर्थात् इसी रत्न की प्राप्ति के लिये शास्त्रों का अध्ययन किया जाता है तथा संसार में जितनेभर मनोहरपदार्थ हैं उन पदार्थों में मनोहर तथा उत्कृष्ट पदार्थ यह चैतन्यस्वरूप आत्मा ही है इसलिये भव्यजीवों को इस चैतन्यस्वरूप आत्मा का ही अच्छीतरह से ध्यान करना चाहिये।

तदेवैकं परं तत्त्वं तदेवैकं परं पदम्।

भव्याराध्यं तदेवैकं तदेवैकं परं महः।। (44)

वह चैतन्यस्वरूप आत्मा ही एक उत्तमतत्त्व है तथा वही एक उत्कृष्टस्थान है और वही एक भव्यजीवों के आराधना करने योग्य है तथा वही एक अद्वितीय उत्तमतेज है।

शास्त्रं जन्मतरुच्छेदि तदेवैकं सतां मतम्।
योगिनां योगिनिष्ठानां तदेवैकं प्रयोजनम्।। (45)

और वही चैतन्यस्वरूपीआत्मा जन्मरूपीवृक्ष के नाश करने के लिये शस्त्र के समान है अर्थात् चैतन्यस्वरूप आत्मा के भलीभांति ध्यान के करने से सर्व जन्ममरण आदि नष्ट हो जाते हैं तथा वही आत्मारूपी तेज भव्यजीवों का मान्य है और वही ध्यानयुक्तयोगियों का प्रयोजन है अर्थात् उसी की प्राप्ति के लिये योगिगण सदा प्रयत्न करते रहते हैं।

मुमुक्षूणां तदेवैकं मुक्तेः पन्था न चापरः।
आनन्दोऽपि न चान्यत्र तद्विहाय विभाव्यते।। (46)

मोक्षाभिलाषियों के लिये चैतन्यस्वरूप आत्मा ही मोक्ष का मार्ग है आत्मा से अन्य कोई भी मोक्ष मार्ग नहीं है तथा आनंद भी आत्मा में ही है किन्तु उसके सिवाय और कहींपर भी आनन्द नहीं प्रतीत होता इसलिये भव्यजीवों को इसी का ध्यान करना चाहिये।

संसारघोरघर्मेण सदा तप्तस्य देहिनः।
यन्त्रधारागृहं शान्तं तदेव हिमशीतलम्।। (47)

संसाररूपीप्रबलताप से निरंतर संतप्तप्राणियों को वह चैतन्यस्वरूप आत्मा ही शांत तथा बर्फ के समान ठंडा, फवारासहित मकान है, अर्थात् जिसप्रकार धूप से संतप्तमनुष्यों को फवारासहित शीतल मकान में आराम मिलता है उसी प्रकार संसार के संताप से खिन्नजीवों को इस शांत आत्मा में लीन होने से ही आराम मिलता है इसलिये भव्यजीवों को सदा चैतन्यस्वरूप आत्मा का ही अनुभव करना चाहिये।

तदेवैकं परं दुर्गमगम्यं कर्मविद्विषाम्।
तदेवैतत्तिरस्कारकारि सारं निजं बलम्।। (48)

तथा वही चैतन्यस्वरूप आत्मा एक ऐसा किला है कि जिसमें कर्मरूप वैरी कदापि प्रवेश नहीं कर सकते और उनकर्मरूपी शत्रुओं का अपमान करनेवाला वही चैतन्य स्वरूप आत्मा एक उत्कृष्ट बल है।

भावार्थ-जो मनुष्य चैतन्यस्वरूप आत्मा का ध्यान करते हैं उनका कर्मरूपी वैरी कुछ नहीं कर सकते इसलिये भव्यजीवों को शुद्धात्मा का ही ध्यान करना चाहिये।

तदेव महती विद्या स्फुरन्मन्त्रस्तदेव हि।
औषधं तदपि श्रेष्ठं जन्मव्याधिविनाशनम्।। (49)

और वही चैतन्यस्वरूपीतेज प्रबलविद्या है तथा वही स्फुरायमान मंत्र है और समस्त जन्म जरा आदि को नाश करनेवाली वही एक परमऔषधि है।

अक्षयस्याक्षयानन्दमहाफलभरश्रियः।
तदवैकं परं बीजं निः श्रेयसलसत्तरोः।। (50)

और उसी शुद्धात्मारूपी तेज से अविनाशी तथा अक्षय सुखरूपी उत्तमफल के देने वाले मोक्षरूपी मनोहर वृक्ष की उत्पत्ति होती है।

भावार्थ-जो पुरुष उस शुद्धात्मा का अनुभव, मनन, ध्यान करते हैं उनको अक्षय सुख को देने वाली मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति होती है इसलिये भव्यजीवों को सदा उस आत्मा का ही चिंतवन करते रहना चाहिये।

तदेवैकं परं विद्धि त्रैलोक्यगृहनायकम्।
येनैकेन विना शङ्के वसदप्येतदुद्वसम्।। (51)

आचार्य कहते हैं कि हे भव्यजीवों! तीन लोकरूपी घर का स्वामी उसी चैतन्यस्वरूप तेज को तुम समझो क्योंकि मैं ऐसी शंका करता हूँ कि इस एक चैतन्यस्वरूप तेज के बिना यह तीनलोकरूपी घर भी वन के समान है।

भावार्थ-यद्यपि यह लोक जीवाजीवादि छः द्रव्यों से भरा हुआ है तो भी इसमें जानने वाला एक आत्मा ही है और इसके सिवाय समस्त लोक जड़ ही है इसलिए यह आत्मा ही तीनलोकों का राजा है अतः उत्तम फल के चाहने वाले भव्यजीवों को इसी में लीन रहना चाहिए।

शुद्धं यदेव चैतन्यं तदेवाहं न संशयः।
कल्पनयाननाप्येतद्धीनमानन्दमन्दिरम्।। (52)

जो निराकार, निरंजन, शुद्ध, चिद्रूप है सो मैं ही हूँ इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है इस प्रकार की कल्पना से भी वह आनन्दस्वरूप शुद्धात्मा रहित है।

भावार्थ-जो शुद्ध चैतन्य स्वरूप है वह मैं ही हूँ इसमें किसी प्रकार का संशय

नहीं, इस प्रकार की भी कल्पना उस शुद्धात्मा में नहीं है इसलिये शुद्धात्मा समस्त प्रकार की कल्पनाओं से रहित ही है।

मोक्ष के लिये की हुई इच्छा भी ठीक नहीं ऐसा आचार्य बताते हैं।

स्पृहा मोक्षेऽपि मोहोत्था तन्निषेधाय जायते।

अन्यस्मै तत्कथं शान्ता स्पृहयन्ति मुमुक्षवः।। (53)

मोह के होते सन्ते ही इच्छा होती है इसलिये आचार्य उपदेश देते हैं कि यदि मोक्ष के लिये भी मोह से पैदा हुई इच्छा हो जावे तो वही जब मोक्ष के रोकने वाली हो जाती है तब शान्त तथा मोक्षाभिलाषी मनुष्य अन्यपदार्थों के लिये कैसे इच्छा कर सकते हैं।

ज्ञानी मनुष्य इस का विचार करते हैं।

अहं चैतन्यमेवैकं नान्यत्किमपि जातुचित्।

सबन्धोऽपि न केनापि दृढपक्षो ममेदृशः।। (54)

मैं एक चैतन्यस्वरूपही हूँ चैतन्य से भिन्न नहीं हूँ और मेरा निश्चयनय से किसी दूसरे पदार्थ के साथ संबंध भी नहीं है यह मेरा प्रबल सिद्धान्त है।

शरीरादिवहिश्चिन्ताचक्रसम्पर्कवर्जितम्।

विशुद्धात्मस्थितं चित्तं कुर्वन्नास्तेनिरन्तम्।। (55)

बाह्य शरीर आदि पदार्थों की चिन्ता छोड़कर रागद्वेष आदिमलों से रहित तथा निर्मल अपनी आत्मा में ही चित्त को लगाते हैं।

एवं सति यदेवास्ति तदस्तु किमिहापरैः।

आसाद्यात्मन्निदं तत्त्वं शान्तो भव सुखी भव।। (56)

इस प्रकार पूर्वोक्तरीति से आत्मा के चिंतवन से जो होता है सो हो दूसरे 2 विचारों से क्या प्रयोजन है इस प्रकार के वास्तविकस्वरूप को प्राप्त होकर अरे आत्मा! तू शान्त हो तथा सुखी हो इस प्रकार ज्ञान अपनी आत्मा को शिक्षा देता रहता है।

आपारजन्मसन्तानपथभ्रान्तिकृतश्रमम्।

तत्त्वामृतमिदं पीत्वा नाशयन्तु मनीषिणः।। (57)

आचार्य उपदेश देते हैं कि हे भव्यपुरुषों! इस कहे हुवे चैतन्यामृत का पान करो तथा इस अपार संसार में अनन्त तिर्यंच नरक आदि पर्यायों में भ्रमण करने से जो खेद हुवा है उसको शान्त करो।

अतिसूक्ष्ममतिस्थूलमेकं चानेकमेव तत्।
स्वसंवेद्यमेवद्यञ्च यदक्षरमनक्षरम्।। (58)
अनौपम्यमनिर्देश्यमप्रमेयमनाकुलम्।
शून्यं पूर्णं च यन्नित्यमनित्यं च प्रचक्ष्यते।। (59)
निश्शरीरं निरालम्बं निश्शब्दं निरुपाधि यत्।
चिदात्मकं परंज्योतिरवाङ्मानसगोचरम्।। (60)
इत्यत्र गहनेऽत्यन्तदुर्लक्ष्ये परमात्मनि।
उच्यते यत्तदाकाशं प्रत्यालेख्यं विलिख्यते।। (61)

आचार्य कहते हैं कि चैतन्यरूपीतेज अत्यन्त सूक्ष्म भी है और अन्यन्त स्थूल भी है, और एक भी है अनेक भी है, स्वसंवेद्य भी है अवेद्य भी है, अक्षर भी है, अनक्षर भी है, तथा उपमा रहित है, अवक्तव्य है, अप्रमेय है, आकुलता रहित है, और शून्य भी है, पूर्ण भी है, नित्य भी है, अनित्य भी है, और शरीर सहित है, आश्रय रहित है शब्दरहित है, उपाधिरहित है, तथा चैतन्यस्वरूपपरमतेजका धारी है, और न उसको वचन से ही कह सकते हैं तथा न उसका मन से चिंतवन कर सकते हैं, इस प्रकार यह परमात्मा अगम्य तथा दृष्टि के अगोचर है इसलिये जिस प्रकार अमूर्तीक आकाश पर चित्र लिखना कठिन है उसी प्रकार परमात्मा का वर्णन करना भी अत्यंत कठिन है।

भावार्थ-इस अमूर्तीक परमात्मा को इन्द्रियों से नहीं देख सकते इसलिये तो वह सूक्ष्म है और केवल दर्शन तथा केवलज्ञान से देखा और जाना जा सकता है इसलिये वह स्थूल भी है तथा सदा अपने स्वरूप में विद्यमान रहता है और परपदार्थों से भिन्न है इसलिये शुद्ध निश्चयनय से यह एक भी है और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा इसकी अनेक ज्ञान दर्शन आदि पर्याय मौजूद हैं इसलिये यह अनेक भी है, तथा अहम् 2 इत्याकारक स्वसंवेदनप्रत्यक्ष के गोचर है अर्थात् अपने से जाना जाता है इसलिये तो स्वसंवेद्य है और इन्द्रियों से यह नहीं जाना जा सकता इसलिये यह अवेद्य भी है तथा व्यवहारनय से बचने से कुछ कहा जाता है इसलिये तो यह अक्षर है किन्तु शुद्धनिश्चयनय से इसको कुछ भी नहीं कह सकते इसलिये यह अनक्षर भी है अथवा ''जिसका नाश न होवे वह अक्षर है'' यदि ऐसा अक्षर शब्द का अर्थ करेंगे तो भी

शुद्धनिश्चय से तो यह अक्षर ही है क्योंकि शुद्धनिश्चयनय से इसका कुछ भी नाश नहीं होता तथा व्यवहारनय से यह अनक्षर (विनाशीक) भी है क्योंकि प्रतिसमय इसकी पर्याय पलटती रहती हैं और इसकी समानता को धारण करनेवाला कोई पदार्थ नहीं है इसलिये यह उपमा रहित भी है तथा इसके वास्तविक स्वरूप को कुछ भी नहीं सकते इसलिये यह अवक्तव्य भी है और इसके केवलज्ञानरूपी, गुणों का किसी क्षेत्र आदि के द्वारा परिमाण नहीं किया जा सकता अर्थात् वह समस्त लोक तथा अलोक का प्रकाश करनेवाला है इसलिये यह अप्रमेय भी है और यह अचिंत्य सुख का भण्डार है इसलिये आकुलता रहित भी है तथा यह परद्रव्य क्षेत्र काल भाव की अपेक्षा से रहित है इसलिये शून्य भी है और समस्त ज्ञान, दर्शन, सुख आदि गुणों से भराहुवा है इसलिये यह पूर्ण भी है और द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा इसका विनाश नहीं होता इसलिये यह नित्य भी है तथा पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा इसका प्रतिसमय विनाश होता रहता है इसलिये वह अनित्य भी है और इसका कोई शरीर नहीं इसलिये यह शरीरहित है और इसका कोई आश्रय (आधार) नहीं इसलिये यह आश्रय रहित भी है और यह तो चेतन है तथा शब्द पुद्गल है इसलिये यह शब्दरहित भी है तथा इसके साथ निश्चयनय से किसी प्रकार की कर्मों की उपाधि नहीं लगी हुई है इसलिये यह उपाधि रहित है और यह चैतन्यस्वरूप ज्योति है और इसको वचन से कह नहीं सकते तथा मन से विचार नहीं सकते इसलिये यह वाणी तथा मन का अगोचर भी है इसलिये इस प्रकार के शुद्धात्मा का वर्णन करना अल्पज्ञानियों के लिये कठिन है।

अस्तां तत्र स्थितो यस्तु चिंतामात्रपरिग्रहः।
तस्यात्र जीवितं श्लाघ्यं देवैरपि स पूज्यते।। (62)

जो पुरुष उस शुद्धातमा में तिष्ठने वाला है वह तो दूर रहा किंतु जो पुरुष इस शुद्धात्मा का चिंतवन करने वाला है उसका भी जीवन इस संसार में अत्यंतप्रशंसनीय है तथा उसकी बड़े-बड़े देव आकर पूजा सेवा आदि करते हैं इसलिये भव्यजीवों को सदा शुद्धात्मा का ही ध्यान करना चाहिये।

सर्वविद्भिरसंसारै सम्यग्ज्ञानविलोचनैः।
एतस्योपासनोपायः साम्यमेकमुदाहृतम्।। (63)

समस्त पदार्थों के जाननेवाले तथा कर्मोंकररहित तथा केवलज्ञानरूपी नेत्र के धारी केवली भगवान् इस शुद्धात्मा की उपासना करने का उपाय समता ही है ऐसा कहते हैं।

भावार्थ-समस्त पदार्थों में समता रखने से ही इस आत्मा की भलीभांति आराधना हो सकती है इसलिये आत्मा की उपासना करने वाले भव्यजीवों को समस्तपदार्थों में अवश्य समता रखनी चाहिये।

साम्यं स्वास्थ्यं समाधिश्च योगश्चेतोनिरोधनम्।

शुद्धोपयोग इत्येते भवन्त्येकार्थवाचकाः।। (64)

साम्य, स्वास्थ्य, समाधि, योग, चित्त, निरोध, शुद्धोपयोग, ये सर्वशब्द एक ही अर्थ के कहनेवाले हैं अर्थात् इन शब्दों के नाम जुदे-जुदे हैं किन्तु अर्थ एक ही है।

आचार्यवर साम्यही के स्वरूप का वर्णन करते हैं।

नाकृतिर्नाक्षरं वर्णो नो विकल्पश्च कश्चन्।

शुद्धचैतन्यमेवैकं यत्र तत्साम्यमुच्यते।। (65)

जिसमें न कोई आकार है और कोई अक्षर है और न कोई नीला आदि वर्ण है और न जिसमें कोई विकल्प है किन्तु केवल एक चैतन्यही है वही साम्य है।

साम्यमेकं परं कार्यं साम्यं तत्त्वं परं स्मृतम्।

साम्यं सर्वोपदेशानामुपदेशो विमुक्तये।। (66)

साम्यही एक उत्कृष्ट कार्य है और साम्यही एक उत्तम तत्त्व है तथा साम्यही मुक्ति के लिये समस्त उत्तम उपदेशों से उपदेश है।

साम्यं सद्बोधनिर्माणं शश्वदानन्दमन्दिरम्।

साम्यं शुद्धात्मनोरूपं द्वारं मोक्षैकसद्मनः।। (67)

इस साम्य से ही भव्यजीवों को सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होती है तथा इस साम्य से ही अविनाशी सुख मिलता है और यह साम्य ही शुद्धात्मा का स्वरूप है तथा यह साम्य ही मोक्षरूपी मकान का द्वार है।

साम्यं निश्शेषशास्त्राणां सारमाहुर्विपश्चितः।

साम्यं कर्ममहादावदाहे दावानलायते।। (68)

समस्तशास्त्रों का सारभूत यह साम्यही है और यही साम्य समस्तकर्मरूपीवन में जलाने में दावानल के समान है ऐसा गणधर आदि देव कहते हैं।

भावार्थ-शास्त्र के अध्ययन करने से समता की प्राप्ति होती है तथा समता के होने पर समस्तकर्मों का नाश हो जाता है इसलिये भव्यजीवों को साम्यकी और अवश्य ऋजु होना चाहिये।

साम्यं शरण्यमित्याहुर्योगिनां योगगोचरम्।
उपाधिरचिताशेषं दोषक्षपणकारणम्।। (69)

और यह साम्यही समस्तदुःखों को दूर करने में समर्थ है तथा ध्यानीपुरुष ही इसका ध्यान करते हैं और यह साम्य ही आत्मा और कर्मों के संबंध से उत्पन्नहुवे जो रागादिदोष उनको सर्वथा नष्ट करने वाला है इसलिये भव्यजीवों को सदा साम्यकाही ही मनन करना चाहिये।

निस्पृहायाणिमाद्यब्जखण्डे साम्यसरोजुषे।
हंसाय शुचये मुक्तिहंसीदत्तदृशे नमः।। (70)

अणिमा महिमा आदि रूप जो कमलखण्ड उसकी जिसको अंशमात्र भी इच्छा नहीं है तथा जो समतारूपीसरोवर में सदा प्रीतिपूर्वक रमण करनेवाला है और जिसकी दृष्टि मोक्षरूपी हंसिनी में लगी हुई है और जो अत्यंतपवित्र है ऐसे परमहंस उस शुद्धात्मा के लिये मेरा नमस्कार है।

ज्ञानिनोमृतसंगाय मृत्युस्तापकरोऽपि सन्।
आमकुम्भस्य लोकेस्मिन् भवेत् पाकविधिर्यथा।। (71)

जिस प्रकार मिट्टी के कच्चे घड़े के लिये पकाने की विधि एक प्रकार से ताप को ही उपजानेवाली है तो भी वह पाक विधि घड़े को अमृत (जल) के संगमकराने वाली होती है अर्थात् पकजाने पर ही घड़ा पानी के भरने के योग्य होता है उसी प्रकार यद्यपि बहिरात्माओं को मृत्यु, दुःख के देनेवाली है तो भी ज्ञानियों के लिये वह अमृत (मोक्ष) के समागम के ही लिये होती हैं अर्थात् ज्ञानीपुरुष सदा मृत्यु के नाश के लिये ही प्रयत्न करते रहते हैं तथा चैतन्य स्वरूप से भिन्न ही मृत्यु को मानते हैं इसलिये मृत्यु के होने पर भी उनको दुःख नहीं होता।

मानुष्यं सत्कुले जन्म लक्ष्मीर्बुद्धिः कृतज्ञता।
विवेकेन विना सर्वं सदप्येतन्न किञ्चन।। (72)

जो मनुष्य विवेकी नहीं है उसका मनुष्यपना, उत्तमकुल में जन्म, धन, ज्ञान और कृतज्ञपना, होकर भी, निष्फल ही है इसलिये मनुष्यों को विवेकी अवश्य होना चाहिये।

विवेक किसको कहते हैं

चिदचिद्द्वे परे तत्त्वे विवेकस्तद्विवेचनम्।

उपादेयमुपादेयं हेयं हेयञ्च कुर्वतः।। (73)

संसार में चेतन तथा अचेतन दो प्रकार के तत्त्व है उनमें ग्रहणकरने योग्य को ग्रहणकरनेवाले तथा त्यागकरनेयोग्य को त्यागकरनेवालेपुरुष का जो विचार है उसी को विवेक कहते हैं।

भावार्थ-चैतन्यस्वरूप आत्मा तो ग्रहण करने योग्य है तथा जड़ शरीर आदि त्यागने योग्य है ऐसा जो विचार है उसी का नाम विवेक है।

दुःखं किञ्चित्सुखं किञ्चिच्चित्ते भाति जडात्मनः।

संसारेऽत्र पुनर्नित्यं सर्वं दुःखं विवेकिनः।। (74)

मूर्ख पुरुषों को तो इस संसार में कुछ सुख तथा कुछ दुःख मालूम पड़ता है किन्तु जो हिताहित के जाननेवाले विवेकी हैं उनको तो इस संसार में सब दुःख ही निरन्तर मालूम पड़ता है।

हेयञ्च कर्मरागादि तत्कार्यञ्च विवेकिनः।

उपादेयं परंज्योतिरुपयोगैकलक्षणम्।। (75)

विवेकीपुरुष को ज्ञानावरणादिकर्मों का तथा उनके कार्यभूत रागादिकों का अवश्य ही त्याग कर देना चाहिये और ज्ञान दर्शन स्वरूप इस उत्कृष्ट आत्मतेज को ही ग्रहण करना चाहिये।

ज्ञानीमनुष्य इस का विचार करते रहते हैं।

यदेव चैतन्यमहं तदेव तदेव जानाति तदेव पश्यति।

तदेव चैकं परमस्ति निश्चयादृतोऽस्मि भावेन तदेकतां परम्।। (76)

जो चैतन्य है सो मैं ही हूँ और वही चैतन्य पदार्थों को जानता है तथा देखता है और वही एक उत्कृष्ट है और निश्चयनय से स्वभाव से मैं तथा चैतन्य अत्यंत अभिन्न हूं।

एकत्वसप्ततिरियं सुरसिन्धुरुच्चैः श्रीपद्मनन्दिहिमभूधरतः प्रसूता।
यो गाहते शिवपदाम्बु निधिं प्रविष्टमेतां लभेत स नरः परमां विशुद्धिम्।। (77)

यह एकत्वसप्ततिरूपीगंगानदी अत्यंतउन्नत ऐसे श्रीपद्मनन्दीनामक हिमालय पर्वत से पैदा हुई है तथा मोक्षपदरूपीसमुद्र में जाकर मिली है इसलिये जो भव्यजीव उस नदी में स्नान करते हैं इनके समस्तमल नाश हो जाते हैं और वे अत्यन्त विशुद्ध हो जाते है।

भावार्थ-जो भव्यजीव इस एकत्वसप्ततिनामक अधिकार का चिंतवन मनन करते हैं उनके समस्त रागादि दोष दूर हो जाते हैं अतः वे अत्यंत शुद्ध हो जाते हैं और मोक्ष को प्राप्त होते हैं इसलिये उत्तम पुरुषों को सदा इसका ध्यान चिंतवन करना चाहिये।

संसारसागरसमुत्तरणैकसेतुमैवं सतां सदुपेदशमुपाश्रितानाम्।
कुर्यात्पदं मललवोऽपि किमन्तरङ्गे सम्यक् समाधिविधिसन्निधिनिस्तरङ्गे।। (78)

जिन सज्जनपुरुषों ने संसारसमुद्र से पार करने में पुल के समान इस उत्तम उपदेश का आश्रय किया है उन सज्जन पुरुषों के उत्तम आत्मध्यान के करने से क्षोभरहित अंतरंग में किसी प्रकार का रागादिमल नहीं रह सकता।

भावार्थ-इस एकत्वसप्तति अधिकार के उपदेश से जिन भव्यजीवों का मन अत्यन्तनिर्मल हो गया है उन भव्यजीवों के मन में किसी प्रकार का मल-प्रवेश नहीं कर सकता।

निमर्ल चित्त होकर ज्ञानी ऐसा विचार करता है।

आत्मा भिन्नस्तदनुगतिमत्कर्म भिन्न तयोर्या प्रत्यासत्तेर्भवति विकृतिः सापि भिन्ना तथैव।
कालक्षेत्रप्रमुखमपि यत्तच्च भिन्नं मतं मे भिन्नं भिन्नं निजगुणकलालङ्कृतं सर्वमेतत्।।

यह ज्ञानस्वरूप मेरा आत्मा भिन्न है और उसके पीछे चलनेवाला कर्म भी भिन्न है तथा कर्म और आत्मा के संबन्ध से जो कुछ विकार हुवा है वह भी मुझसे भिन्न है और काल क्षेत्र आदिक जो पदार्थ हैं वे भी मुझसे भिन्न हैं इस प्रकार अपने 2 गुण तथा अपनी 2 पर्यायों से सहित जितने भर पदार्थ हैं सर्व मुझसे भिन्न ही भिन्न हैं इस प्रकार ज्ञानीसदा विचार करता रहता है।

येऽभ्यासयन्ति कथयन्ति विचारयन्ति सम्भावयन्ति च मुहुर्मुहुरात्मतत्त्वम्।
ते मोक्षमक्षयमनूननमनन्तसौख्यं क्षिप्रं प्रयान्ति नवकेवललब्धिरूपम्।। (80)

आचार्य उपदेश देते हैं कि जो भव्यजीव उस आत्मतत्त्व का बारंबार अभ्यास करते हैं और कथन करते हैं तथा विचार और अनुभव करते हैं वे भव्यजीव अविनाशी और महान् तथा अनन्तदर्शन, क्षायक ज्ञान और क्षायकचारित्र आदि नौ केवललब्धिस्वरूपसुख के भण्डार ऐसे मोक्षपद को बात की बात में पा लेते हैं इसलिये भव्यजीवों के सदा इस आत्मतत्त्व का चिंतवन करना चाहिये।

तेरहवें गुणस्थान-

केवलणाण दिवायर किरण कलावप्पणासिअण्णाणो।
णवकेवललद्धुग्गम सुजणियपरमप्प ववएसो।। (63)
असहायणाण दंसणसहियो इदि केवली हु जोगेण।
जूत्तो त्ति संजोगजिण, अणाइणिहणारिसे उत्तो।। (64)

जिसका केवलज्ञान रूपी सूर्य की अविभाग प्रतिच्छेद रूप किरणों के समूह (उत्कृष्ट अनन्तानन्त प्रमाण) अज्ञान अंधकार सर्वथा नष्ट हो गया हो और जिसको नव केवललब्धियों के (क्षायिक-सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) प्रकट होने से परमात्मा यह व्यपदेश (संज्ञा) प्राप्त हो गया है, वह इन्द्रियाँ, आलोक आदि की अपेक्षा न रखने वाले ज्ञान दर्शन से युक्त होने के कारण केवली और योग से युक्त रहने के कारण सयोग तथा घाति कर्मो से रहित होने के कारण जिन कहा जाता है, ऐसा अनादिनिधन आर्ष आगम में कहा है।

बाहरवें गुणस्थान का विनाश होते ही जिसके तीन घाति कर्म और अघाति कर्मों की 16 प्रकृति, इस तरह कुल मिलाकर 63 कर्म प्रकृतियों के नष्ट होने से अनन्तचतुष्टय-अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य तथा नव केवललब्धि प्रकट हो चुकी हैं किन्तु साथ ही जो योग से भी युक्त है, उस अरिहन्त परमात्मा को तेरहवें गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

मोक्ष के कारण और लक्षण

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः। (2) मोक्षशा.

मोक्ष Liberation (is) the freedom from all karmic matter, owing to the non-existence of the cause of bondage and to the shedding (of all the Karmas).

बन्ध हेतुओं के अभाव और निर्जरा से सब कर्मों का आत्यन्तिक क्षय होना ही मोक्ष है।

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग रूप बंध के कारणों का निरोध (अभाव) हो जाने पर नूतन कर्मों का आना (आस्रव) रूक जाता है क्योंकि कारण के अभाव में कार्य का अभाव होता ही है।

तप आदि निर्जरा के कारणों का सन्निधान (निकटता) होने से पूर्व अर्जित (संचित) कर्मों का विनाश हो जाता है।

प्रश्न–कर्मबन्ध सन्तान जब अनादि है तो उसका अनन्त नहीं होना चाहिये? क्योंकि जो अनादि होता है उसका अनन्त नहीं होता दृष्ट विपरीत (प्रत्यक्ष से विपरीत) की कल्पना करने पर प्रमाण का अभाव होता है।

उत्तर–अनादि होने से अन्त नहीं होता ऐसा नहीं है, क्योंकि जैसे बीज और अङ्कुर की सन्तान अनादि होने पर भी अग्नि से अन्तिम बीज के जला देने पर उससे अंकुर उत्पन्न नहीं होते हैं, उसी प्रकार ध्यानाग्नि के द्वारा अनादिकालीन मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय आदि कर्मबन्ध के कारणों को भस्म कर देने पर भवाङ्कुर का उत्पाद नहीं होता, अर्थात् भवाङ्कुर नष्ट हो जाता है। यही मोक्ष है, इस दृष्ट बात का लोप नहीं कर सकते। कहा भी है जैसे-

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवाङ्कुरः।।

''बीज के जल जाने पर अङ्कुर उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार कर्म बीज के जल जाने भवाङ्कुर उत्पन्न नहीं होता।''

कृत्स्न (सम्पूर्ण) कर्म का कर्म अवस्था रूप से क्षय हो जाना कर्मक्षय है, क्योंकि 'सत्' द्रव्य का द्रव्यत्वरूप से विनाश नहीं है किन्तु पर्याय रूप से उत्पत्तिमान होने से उनका विनाश होता है तथा पर्याय, द्रव्य को छोड़कर नहीं है अतः पर्याय की अपेक्षा द्रव्य भी व्यय को प्राप्त होता है, ऐसा कह दिया जाता है। क्योंकि पर्यायें उत्पन्न

और विनष्ट होती हैं अतः पर्याय रूप से द्रव्य का व्यय होता है। अतः कारणवशात् कर्मत्वपर्याय को प्राप्त पुद्गल द्रव्य का कर्मबन्ध के प्रत्यनीक (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप) कारणों के सन्निधान होने पर उस कर्मत्वपर्याय की निवृत्ति होने पर उसका क्षय हो जाता है, उस समय वह पुद्गल द्रव्य अकर्म पर्याय से परिणत हो जाता है। इसलिये कृत्स्न कर्म क्षय की मुक्ति कहना युक्त ही है।

हेदुमभावे णियमा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो।
आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो।। (50)
कम्मस्साभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य।
पावदि इन्दियरहिदं अव्वाबाहं सुहमणंतं।। (51) पं.का.

कर्मों के आवरण में प्राप्त संसारी जीव का जो क्षायोपशमिक विकल्परूप भाव है वह अनादिकाल से मोह के उदय के वश रागद्वेष मोहरूप परिणमता हुआ अशुद्ध हो रहा है यही भाव है। अब इस भाव से मुक्त होना कैसे होता है सो कहते हैं। जब यह जीव आगम की भाषा से काल आदि लब्धि को प्राप्त करता है तथा आध्यात्म भाषा से शुद्ध आत्मा के सन्मुख परिणामरूप स्वसंवेदन ज्ञान को पाता है तब पहले मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों के उपशम होने पर फिर उनका क्षयोपशम होने पर सराग सम्यग्दृष्टि हो जाता है। तब अर्हंत् आदि पंचपरमेष्ठी की भक्ति आदि के द्वारा पर के आश्रित धर्मध्यानरूप बाहरी सहकारी कारण के द्वारा मैं अनंत ज्ञानादि स्वरूप हूँ इत्यादि भावना स्वरूप आत्मा के आश्रित धर्मध्यान को पाकर आगम में कहे हुए क्रम से असंयत सम्यग्दृष्टि को आदि लेकर अप्रमत्त संयत पर्यन्त चार गुणस्थानों के मध्यमें से किसी भी एक गुणस्थान में दर्शनमोह को क्षयकर क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाता है। फिर मुनि अवस्था में अपूर्वकरण आदि गुणस्थानों में चढ़कर आत्मा सर्व कर्म प्रकृति आदि से भिन्न है ऐसे निर्मल विवेकमई ज्योतिरूप प्रथम शुक्लध्यान का अनुभव करता है। फिर रागद्वेष रूप चारित्र मोह के उदय के अभाव होने पर निर्विकार शुद्धात्मानुभव रूप वीतराग चारित्र को प्राप्त कर लेता है जो चारित्र मोह के नाश करने में समर्थ है। इस वीतराग चारित्र के द्वारा मोहकर्म का क्षय कर देता है-मोह के क्षय के पीछे क्षीण कषाय नाम बाहरवें गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त काल ठहर कर दूसरे शुक्लध्यान को ध्याता है। इस ध्यान

से ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय इन तीन घातिया कर्मों को एक साथ इस गुणस्थान के अन्त में जड़ मूल से दूरकर केवलज्ञान आदि अनंत चतुष्टयस्वरूप भाव मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

दंसणणाणसमग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं।
जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्स साधुस्स।। (152)

इस प्रकार वास्तव में इन (पूर्वोक्त) भावयुक्त (भावमोक्षवाले) भगवान् केवली को जिन्हें स्वरूपतृप्तपने के कारण कर्मविपाक कृत सुख, दुःखरूप विक्रिया नष्ट हो गई है उन्हें-आवरण के प्रक्षीणपने के कारण, अनंत ज्ञानदर्शन से सम्पूर्ण शुद्धज्ञानचेतनामयपने के कारण तथा अतीन्द्रियपने के कारण जो अन्यद्रव्य के संयोग से रहित है और शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यवृत्तिरूप होने के कारण जो कथंचित् 'ध्यान' नाम के योग्य है ऐसा आत्मा का स्वरूप (आत्मा की निज दशा) पूर्वसंचित कर्मों की शक्ति का शातन (क्षीणता) अथवा उनका पतन (नाश) देखकर, निर्जरा के हेतुरूप से वर्णन किया जाता है।

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकम्माणि।
ववगदवेदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो।। (153)

वास्तव में केवली भगवान् को, भावमोक्ष होने पर, परम संवर सिद्ध होने के कारण उत्तर कर्म संतति निरोध को प्राप्त होकर और परम निर्जरा का कारणभूत ध्यान सिद्ध होने के कारण पूर्व कर्मसंतति कि जिसकी स्थिति कदाचित् स्वभाव से ही आयु कर्म के जितनी होती है और कदाचित् समुद्घातविधान से आयु कर्म के जितनी होती है-आयु कर्म के अनुसार ही निर्जरित होती हुई अपुनर्भव (सिद्धगति) के लिये भव छूटने के समय होने वाला जो वेदनीय-आयु-नाम-गोत्ररूप कर्मपुद्गलों का जीव के साथ अत्यन्त विश्लेष (वियोग) है वह द्रव्यमोक्ष है।

ज्ञानावरणी-दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय ये चार घातिया कर्मों के क्षय से अरहन्त केवली बनते हैं। तीर्थंकर केवली समोवशरण की विभूति के साथ उपदेश करके भव्य जीवों को मोक्षमार्ग का स्वरूप बताते हैं और सामान्य केवली गंधकुटी में विराजमान होकर भव्यजीवों को उपेदश देते हैं तीर्थंकर केवली नियम से जघन्य रूप से नौ वर्ष एवं उत्कृष्ट रूप से अंतमूर्हुर्त अधिक 8 वर्ष कम, एक पूर्व कोटी वर्ष तक

उपदेश करते हैं। अंत में समवशरण या गंधकुटी का विर्सजन होता है-दिव्यध्वनि का भी (उपदेना देना) संकोच हो जाता है और केवली योग निरोध करते हैं। जो मुनिश्वर 6 महिना आयु शेष रहते केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं और उनके नाम गोत्र एवं वेदनीय कर्म की स्थिती अधिक होती है वे केवली समुद्घात भी करते हैं। अंत में ''अ इ उ ऋ लृ'' इन पाँच लघु अक्षर के उच्चारण काल प्रमाण अयोगी गुणस्थान (14 वें) में जीव रहता है। उपान्त (द्विचरम, अंतिम समय के पहले 1 समय) समय में 72 प्रकृतियों का एवं अंतिम समय में 13 प्रकृतियों का नाश करके जीव सिद्ध, बुद्ध-नित्य निरंजन बन जाता है।

सीलेसिं संपत्तो, णिरूद्धणिस्सेसआसवो जीवो।
कम्मरयविप्पमुक्को, गय जोगो केवली होदि।। (65) गो.सार

जो अठारह हजार शील के भेदों का स्वामी हो चुका है और जिसके कर्मों के आने का द्वाररूप आस्रव सर्वथा बन्द हो गया है तथा सत्त्व और उदयरूप अवस्था को प्राप्त कर्मरूप रज की सर्वथा निर्जरा होने से जो उस कर्म से सर्वथा मुक्त होने के सम्मुख है, उस योगरहित केवली को चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग केवली कहते है।

अट्ठविहकम्मवियला, सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा, लोयग्गणिवासिणो सिद्धा।। (68)

जो ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों से रहित है, अनन्तसुखरूपी अमृत के अनुभव करने वाले शान्तिमय है, नवीन कर्मबन्ध के कारणभूत मिथ्यादर्शनादि भावकर्मरूपी अञ्जन से रहित है, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघु, ये आठ मुख्य गुण जिनके प्रगट हो चुके हैं, कृतकृत्य हैं-जिनको कोई कार्य करना बाकी न रहा है, लोक के अग्रभाग में निवास करने वाले हैं, उनको सिद्ध कहते हैं।

औपशमिकादिभव्यत्वानां च। (3)

There is also non-existence of **भाव** or thought-activity due to the operation, subsidence and to the destruction-subsidence and operation of the karma and of **भव्यत्व** (i.e. the capacity of becoming liberated).

औपशमिक आदि भावों और भव्यत्व भाव के अभाव होने से मोक्ष होता है।

भव्यत्व का ग्रहण अन्य पारिणामिक भावों की अनिवृत्ति के लिये है। पारिणामिक भावों में जीवत्व भाव की मोक्ष में अनिवृत्ति के लिये भव्यत्व भाव का ग्रहण किया गया है। अतः पारिणामिक भावों में भव्यत्व तथा औपशमिकादि भावों का अभाव भी मोक्ष में हो जाता है।

सम्पूर्ण द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म के अभाव से, कर्म से जायमान औपशमिक, क्षयोपशमिक, औदयिक भावपूर्ण रूप से नष्ट हो जाते हैं। औपशमिक, क्षयोपशमिक, और औदयिक भावों का वर्णन तत्त्वार्थ सूत्र के दूसरे अध्याय में सविस्तार से किया गया है। केलव इन भावों का ही अभाव नहीं होता है इसके साथ भव्यत्व भाव का भी अभाव हो जाता है। भव्यत्व भाव को आगम में कुछ स्थान में पारिणामिक भी कहा है। आगमानुसार परिणामिक भाव का अभाव नहीं होता है। क्योंकि पारिणामिक भाव उसे कहते हैं जो कर्म के उदय, उपशम, क्षयोपशम एवं क्षय की अपेक्षा नहीं रखता हो। तब प्रश्न होता है कि भव्यत्व, पारिणामिक भाव होकर मोक्ष में क्यों नहीं रहता है? तब इसका उत्तर वीरसेन स्वामी ने धवला में अगमोक्त व तार्किक शैली से किया है। उनका तर्क यह है कि भव्यत्व भाव पूर्ण शुद्ध पारिणामिक भाव नहीं है कथञ्चित् कर्म जनित है और कथञ्चित् कर्म निरपेक्ष है। भव्य उसे कहते हैं जो भावी भगवान् है अथवा जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान चारित्र को धारण करने की योग्यता रखता है। मिथ्यात्वादि कर्म के उदय से जीव सम्यग्रत्नत्रय को प्राप्त नहीं कर पाता है इसलिये अभव्यत्व भाव कर्म सापेक्ष है। इसी प्रकार मिथ्यात्वादि कर्म के क्षय, उपशम, क्षयोपशम के निमित्त से सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है इस अपेक्षा से भव्यत्व भाव भी कर्म सापेक्ष है। सिद्ध अवस्था में सम्पूर्ण कर्म का अभाव होने से, तथा भव्य और अभव्यत्व की शक्ति या व्यक्ति की योग्यता के अभाव से सिद्ध जीव भव्य, अभव्य व्यपदेश से रहित होते हैं।

अन्यत्र केवलसम्यग्क्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः। (4)

Otherwise there remain **सम्यक्त्व** perfect-right belief **ज्ञान** perfect right knowledge **दर्शन** perfect conatian and **सिद्धत्व** the state of having accomplished all.

केवलसम्यक्त्व, केवलज्ञान और सिद्धत्व भाव का अभाव नहीं होता।

कर्म बन्धन से रहित होने के बाद जीव के सम्पूर्ण वैभाविक भाव नष्ट हो जाते है क्योंकि वैभाविक भाव के निमित्तभूत कारणों का अभाव हो जाता है। वैभाविक भाव के नष्ट होने पर स्वाभाविक भाव नष्ट नहीं होते परन्तु स्वाभाविक भाव पूर्ण रूप में प्रगट हो जाते हैं। तत्त्वार्थ सार में कहा भी है-

ज्ञानावरणहानात्ते केवलज्ञानशालिनः।
दर्शनावरणच्छेदादुद्यत्केवलदर्शनाः।। (37)
वेदनीयसमुच्छेदादव्याबाधत्वमाश्रिताः।
मोहनीयसमुच्छेदात्सम्यक्त्वमचलं श्रिताः।। (38)
आयुः कर्मसमुच्छेदादवगाहनशालिनः।
नामकर्मसमुच्छेदात्परमं सौक्ष्म्यमाश्रिताः।। (39)
गोत्रकर्मसमुच्छेदात्सदाऽगौरवलाघवाः।
अन्तरायसमुच्छेदादननन्तवीर्यामाश्रिताः।। (40)

वे सिद्ध भगवान् ज्ञानावरण कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान से सुशोभित रहते हैं, दर्शनावरण कर्म का क्षय होने से केवलदर्शन से सहित होते हैं, वेदनीय कर्म का क्षय होने से अव्यबाधत्वगुण को प्राप्त होते हैं, मोहनीय कर्म का विनाश होने से अविनाशी सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं, आयुकर्म का विच्छेद होने से अवगाहना को प्राप्त होते हैं, नामकर्म का उच्छेद होने से सूक्ष्मत्वगुण को प्राप्त हैं, गोत्रकर्म का विनाश होने से सदा अगुरुलघुगुण से सहित होते हैं और अन्तराय का नाश होने से अनन्त वीर्य को प्राप्त होते हैं।

सिद्धों की अन्य विशेषता

तादात्म्यादुपयुक्तास्ते केवलज्ञानदर्शने।
सम्यक्त्वसिद्धतावस्था हेत्वभावाच्च निःक्रियाः।। (43)

वे सिद्ध भगवान् तादात्म्यसम्बन्ध होने के कारण केवलज्ञान और केवलदर्शन के विषय में सदा उपयुक्त रहते हैं तथा सम्यक्त्व और सिद्धता अवस्था को प्राप्त हैं। हेतु का अभाव होने से वे निःक्रिया-क्रिया से रहित हैं।

सिद्धों के सुख का वर्णन

संसारविषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखम्।
अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः।। (45)

सिद्धों का सुख संसार के विषयों से अतीत, अविनाशी, अव्याबाध तथा परमोत्कृष्ट है ऐसा परमऋषियों ने कहा हैं।

शरीर रहित सिद्धों के सुख

स्यादेतदशरीरस्य जन्तोर्नष्टाष्टकर्मणः।
कथं भवति मुक्तस्य सुखमित्युत्तरं श्रृणु।। (46)
लोके चतुर्ष्विहार्थेषु सुखशब्दः प्रयुज्यते।
विषये वेदनाभावे विपाके मोक्ष एव च।। (47)
सुखो वह्निः सुखो वायुर्विषयेष्विह कथ्यते।
दुःखाभावे च पुरुषः सुखितोऽस्मीति भाषते।। (48)
पुण्यकर्मविपाकाच्च सुखमिष्टेन्द्रियार्थजम्।
कर्मक्लेशविमोक्षाच्च मोक्षे सुखमनुत्तमम्।। (49)

यदि कोई यह प्रश्न करे कि शरीर रहित एवं अष्टकर्मों को नष्ट करने वाले मुक्तजीव के सुख कैसे हो सकता है तो उसका उत्तर यह है, सुनो। इस लोक में विषय, वेदना का अभाव, विपाक और मोक्ष इन चार अर्थों में सुख शब्द कहा जाता है। अग्नि सुख रूप है, वायु सुख रूप है, यहाँ विषय अर्थ में सुख शब्द कहा जाता है। दुःख का अभाव होने पर पुरुष कहता है कि मैं सुखी हूँ यहाँ वेदना के अभाव में सुखशब्द प्रयुक्त हुआ है। पुण्यकर्म के उदय से इन्द्रियों के इष्ट पदार्थों से उत्पन्न हुआ सुख होता है। यहाँ विपाक-कर्मोदय में सुखशब्द का प्रयोग है और कर्मजन्यक्लेश से छुटकारा मिलने से मोक्ष में उत्कृष्ट सुख होता है। यहाँ मोक्ष अर्थ में सुख का प्रयोग है।

मुक्तजीवों का सुख सुषुप्त अवस्था के समान नहीं है

सुषुप्तावस्थया तुल्यां केचिदिच्छन्ति निर्वृतिम्।
तदयुक्तं क्रियावत्त्वात्सुखातिशयतस्तथा।। (50)

श्रमक्लेममदव्याधिमदनेभ्यश्च संभवात्।

मोहोत्पत्तिर्विपाकाच्च दर्शनध्नस्य कर्मणः।। (51)

कोई कहते हैं कि निर्वाण सुषुप्त अवस्था के तुल्य है परन्तु उनका वैसा कहना अयुक्त हैं-ठीक नहीं है क्योंकि मुक्तजीव क्रियावान् है जबकि सुषुप्तावस्था में कोई क्रिया नहीं होती तथा मुक्तजीव के सुख की अधिकता है जबकि सुषुप्त अवस्था में सुख का रञ्चमात्र भी अनुभव नहीं होता। सुषुप्तावस्था की उत्पत्ति श्रम, खेद, नशा, बीमारी और कामसेवन से होती है तथा उसमें दर्शनमोहनीय कर्म के उदय से मोह की उत्पत्ति होती रहती है जबकि मुक्तजीव के यह सब संभव नहीं है।

मुक्तजीव का सुख निरूपम है।

लोकेतत्सदृशो ह्यर्थः कृत्स्नेऽप्यन्यो न विद्यते।

उपमीयेत तद्येन तस्मान्निरूपमं स्मृतम्।। (52)

लिङ्गप्रसिद्धेः प्रामाण्यमनुमानोपमानयोः।

अलिङ्गं चाप्रसिद्धं यत्तेनानुपमं स्मृतम्।। (53)

समस्त संसार में उसके समान अन्य पदार्थ नहीं हैं जिससे कि मुक्तजीवों के सुख की उपमा दी जा सके, इसलिये वह निरूपम माना गया है। लिङ्ग अर्थात् हेतु से अनुमान में और प्रसिद्धि से उपमान मे प्रामाणिकता आती है परन्तु मुक्तजीवों का सुख अलिङ्ग है-हेतुरहित है तथा अप्रसिद्ध है इसलिये वह अनुमान और उपमान प्रमाण का विषय न होकर अनुपम माना गया है।

अर्हन्त भगवान् की आज्ञा से मुक्तजीवों का सुख माना जाता है।

प्रत्यक्षं तद्भगवतामर्हतां तैः प्रभाषितम्।

गृह्यतेऽस्तीत्यतः प्राज्ञैर्न च छद्मस्थपरीक्षया।। (54)

मुक्त जीवों का वह सुख अर्हन्त भगवान् के प्रत्यक्ष है तथा उन्हीं के द्वारा उसका कथन किया गया है इसलिये 'वह है' इस तरह विद्वज्जनों के द्वारा स्वीकृत किया जाता है, अज्ञानी जीवों की परीक्षा से वह स्वीकृत नहीं किया जाता।

कुन्दः कुन्द देव ने पंचास्तिकाय में कहा भी है, सिद्धत्व अवस्था में जीव के स्वभाविक गुणों का अभाव नहीं होता है, परन्तु स्वाभाविक गुण पूर्ण शुद्ध रूप से पूर्ण विकसित होकर अनन्त काल तक विद्यमान रहते हैं।

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तस्स।

ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमदीदा।। (35)

सिद्धों के वास्तव में द्रव्यप्राण के धारण स्वरूप से जीव स्वभाव मुख्य रूप से नहीं है, जीव स्वभाव का सर्वथा अभाव भी नहीं है, क्योंकि भावप्राण के धारणस्वरूप जीव स्वभाव का मुख्य रूप से सद्भाव है। और उन्हें शरीर के साथ नीरक्षीर की भांति एकरूप वृत्ति नहीं है, क्योंकि शरीर संयोग के हेतु भूत कषाय और योग का वियोग हो गया है इसलिये वे अतीत अनन्तर शरीर प्रमाण अवगाहरूप परिणत होने पर भी अत्यन्त देह रहित हैं। और वचनगोचरातीत उनकी महिमा है, क्योंकि लौकिक प्राण के धारण बिना और शरीर के सम्बन्ध बिना सम्पूर्ण रूप से प्राप्त किये हुए निरूपाधि स्वरूप के द्वारा वे सतत् प्रतपते हैं।

जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सव्वलोगदरसी य।

पप्पोदि सुहमणंतं अव्वाबाधं सगममुत्तं।। (29)

वह चेतयिता (आत्मा) सर्वज्ञ और सर्वलोकदर्शी स्वयं होता हुआ, स्वकीय अमूर्त्त अव्याबाध अनंत सुख को प्राप्त करता है।

सुंदर मन से सुखी जीवन

-डॉ. अशोक पनगड़िया, न्यूरोविज्ञानी

डॉ. बी.सी. रॉय अवार्ड और पद्मश्री से सम्मानित। चिकित्सा शोध और शिक्षा क्षेत्र में सक्रिय हैं।

मनुष्य के पास यह क्षमता है कि वह अपने मस्तिष्क की विद्युत-रासायनिक गतिकी को स्वेच्छा से परिवर्तित कर सके। जैसे सकारात्मक भाव जगाने के लिए योग का सहारा लिया जा सकता है, वैसे ही मूड बदलने के लिए अपनी रुचि का कोई भी कार्य, जैसे पढ़ना, संगीत सुनना, फिल्म देखना, गोल्फ या ब्रिज खेलना आदि कई गतिविधियाँ की जा सकती है।

तनाव से मस्तिष्क का तंत्रिका तंत्र प्रभावित होता है और यदि यह निरन्तर बना रहे या बार-बार होता हो तो बीमारी का रूप ले लेता है। निम्नस्तरीय मनोबल

और नकारात्मक मनोभाव के चलते दिमागी हालत दयनीय होने लगती है। इससे कोशिकीय कार्यप्रणाली सुस्त हो जाती है और कोशिकाएँ कम होने लगती है या खत्म ही हो जाती है। अवसाद इंसान के चेतना तंत्र पर चोट करता है, जिस वजह से उसके सोचने-समझने की क्षमता कम हो जाती है। इस प्रकार जब व्यक्ति के मस्तिष्क और उसके शरीर के बीच तालमेल नहीं दिखाई देता, तो इस स्थिति को मानसिक विकार की श्रेणी में गिना जाता है।

इसके विपरीत उच्च मनोबल और सकारात्मक मनोभाव नई कोशिकाओं का सृजन करते हैं, जो सहानुकम्पी विश्राम अनुक्रिया (पैरसिम्पथेटिक रिस्पॉन्स) की ओर ले जाते हैं और तनावमुक्त कर सुकून का अहसास जगाते हैं। इससे कोशिकाओं की उम्र स्वतः बढ़ जाती है। मानसिक शांति की गतिविधियों से संक्रमण से लड़ने वाली टी-कोशिकाओं की संख्या बढ़ जाती है, एंटीबॉडीज बढ़ते हैं और एंडोर्फिन हार्मोन और शरीर के प्राकृतिक दर्द निवारकों का समुचित स्राव होता है। इससे रक्तचाप दुरुस्त रहता है, तनाव देने वाले हार्मोन कम होते हैं और मांसपेशियों को आराम मिलता है।

स्वस्थ एवं दीर्घायु जीवन के लिए एक और अवधारणा प्रासंगिक है वह है- टेलमियर। गुणसूत्रों के अंतिम छोर पर संरक्षक के तौर पर पाए जाने वाले ये टेलमियर कोशिकीय अवस्था (एजिंग) में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। टेलमियर की लंबाई को उम्र अथवा बीमारी का जैविक संकेत भी कहा जा सकता है। कोशिकाओं में होने वाले प्रत्येक विघटन से टेलमियर की लंबाई कम हो जाती है, यदि टेलमीरेज नामक एंजाइम इसे दोबारा नहीं बना देता है। स्वस्थ एवं प्रसन्न व्यक्ति के टेलमियर अपेक्षाकृत अधिक लंबे होते हैं और उनके टेलमीरेज एंजाइम का स्तर भी अधिक होता है, जबकि कम लम्बाई वाले टेलमियर का सम्बन्ध हृदय रोग, डाइबिटीज, ऑर्थराइटिस, डिप्रेशन, स्टिओपोरोसिस से जोड़ कर देखा जाता है और कई बार यह स्थिति समय पूर्व मृत्यु का कारण भी बन जाती है।

जितना सकारात्मक तरीके से दिमाग का इस्तेमाल करेंगे, उतना ही स्वस्थ और समृद्ध रहेंगे, क्योंकि इसके सारे सम्पर्क सूत्र उचित तरह से कार्य करेंगे। इस प्रकार मस्तिष्क विज्ञान का इस्तेमाल स्वास्थ्य, प्रसन्नता और

दीर्घायु हासिल करने में किया जा सकता है। समुचित आहार और सकारात्मक गतिविधियों से दिमाग की सेहत दुरुस्त रखी जा सकती है।

मस्तिष्क सदा गतिशील रहता है। मानव चाहे तो अपनी मनोदशा से मस्तिष्क की विद्युत्-रासायनिक गतिकी को प्रभावित कर सकता है। मस्तिष्क के संदेशवाहक (न्यूरोट्रांसमीटर) और इसके सम्पर्क सूत्रों में जीवनपर्यन्त संशोधन करते हुए मनुष्य अपने दिमाग को कई प्रकार से सक्रिय रख सकता है। आप जितना सकारात्मक तरीके से दिमाग का इस्तेमाल करेंगे, दिमाग उतना ही स्वस्थ और समृद्ध रहेगा, क्योंकि इसके सारे सम्पर्क सूत्र उचित तरह से कार्य करेंगे। इस प्रकार मस्तिष्क के विज्ञान का इस्तेमाल स्वास्थ्य, प्रसन्नता और दीर्घायु हासिल करने में किया जा सकता है। राहत की खबर यह है कि समुचित आहार और सकारात्मक शारीरिक व मानसिक गतिविधियों से दिमाग की सेहत दुरुस्त रखी जा सकती है। उदाहरण के लिए योग और एरोबिक व्यायाम से डोपमाइन, एसिटिलकोलिन और गामा-एमिनोब्यूटिरिक एसिड (गाबा) स्तर में सुधार आता है। दूसरी ओर गैर-एरोविक व्यायाम से सेरोटोनिन स्तर बढ़ जाता है। खाद्य पदार्थों में पाए जाने वाले एमिनो एसिड इससे संबंधित संदेशों के वाहक होते हैं। उदाहरण के तौर पर, अखरोट, कॉटेज चीज़ में डोपमाइन से संबंधित एमिनो एसिड पाए जाते हैं जबकि साबुत अनाज वाली ब्रेड में एसिटिलकोलिन को प्रभावित करने वाले एमिनो एसिड पाए जाते हैं। सेरेटोनिन के लिए कॉटेज चीज़, गेहूँ का सेवन किया जा सकता है। इसी प्रकार गाबा के लिए केले, बादाम, पालक, अखरोट, ओट्स और ब्राउन राइस आहार में शमिल कर सकते हैं।

मनुष्य के पास यह क्षमता है कि वह अपने मस्तिष्क की विद्युत्-रासायनिक गतिको स्वेच्छा से परिवर्तित कर सके। जैसे सकारात्मक भाव जगाने के लिए योग का सहारा लिया जा सकता है, वैसे ही मूड बदलने के लिए अपनी रुचि का कोई भी कार्य, जैसे पढ़ना, संगीत सुनना, फिल्म देखना, गोल्फ या ब्रिज खेलना आदि कई गतिविधियां की जा सकती है। इनमें मस्तिष्क का वह हिस्सा सक्रिय किया जा सकता है जो खुशी और आनंद से जुड़ा हो और मानसिक शांति दे और तनाव मुक्त करे। मस्तिष्क और यह परिवर्तनशील जगत् आपस में दोतरफा संवाद करते हैं। इससे टेलमियर का संरक्षण होता है, जो गुणसूत्रों के रक्षक हैं और स्वस्थ, खुशहाल

व दीर्घायु जीवन का कारक माने जाते हैं।

हम बीता समय तो नहीं लौटा सकते लेकिन अपने अंगो को स्वस्थ व क्रियाशील रखकर बुढ़ापे की ओर बढ़ते कदमों को जरूर धीमा कर सकते हैं। आधुनिक जीवन शैली के तनाव और प्रदूषण वैसे भी हमें समय पूर्व बुढ़ापे की ओर धकेल रहे हैं। खुशहाल दीर्घायु जीवन के लिए बहुत अधिक प्रयास करने की जरूरत नहीं है। बस शुद्ध सात्विक विचार, सुनियोनिज व सेहतमंद भोजन करने मात्र से जीवनशैली संबंधी बीमारियों को दूर रखा जा सकता है। कुशल समय प्रबंधन, सीधे लड़ने के बजाय समस्या समाधान पर जोर, भूल जाओ और माफ करो की नीति, ऑफिस में पूर्ण दक्षता और घर पर ठीक-ठाक काम वाला रवैया, खुशमिजाज रहना और आगे बढ़कर प्रशंसा करना, माहौल के प्रति कम प्रतिक्रियाशील होना, जुड़ाव या अपनत्व का अहसास और सार्थक बातचीत सुखी व स्वस्थ जीवन की कुंजी है।

स्वयं को तरोताजा रखने के लिए दिन भर में एक बार ली गई गहरी नींद वाली झपकी और रात को 6-7 घंटे की नींद हो जाए, तो सोने पे सुहागा।

आत्महितग्राही व अहितत्यागी ही विवेकी

(विवेक बिना सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री-बुद्धि-पदवी धारी धार्मिक भी श्रेष्ठ-ज्येष्ठ नहीं)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः आत्मशक्ति)

यस्यनास्ति विवेकस्तु केवलं यो बहुश्रुतः।
न स जानाति शास्त्रार्थान् दर्वी पाक रसानिव।।

हितग्राही व अहित त्यागी होते हैं यथार्थ से विवेकी।
सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री बिना भी हो सकते विवेकी।।
विवेक के होते अनेक पर्यायवाची शब्द प्रमाण, निर्णय या प्रज्ञा।
सम्यग्ज्ञान, सुज्ञान या वीतराग विज्ञान, डिस्क्रिशन, मीमांसा, बुद्धिमत्ता।। (1)
विवेकी के है अनेक पर्यायवाची शब्द विवेकशील या बुद्धिमान।
न्यायशील, प्रामाणिक, आप्त, वीतरागविज्ञानी व समीक्षावान्।।

इनसे ही सम्बन्धित विवेकशील, ज्ञान, ज्ञानी, विवेक स्वातन्त्र्य (लिबर्टी ऑफ कॉन्शेन्स)
विवेकाधीन, विवेचन, विवेचित, विवेच्य से ले सम्पूर्ण ज्ञान तक।। (2)
उक्त गुणों से रहित साक्षरी या निरक्षरी, सभ्यमानव से ले असभ्यमानव।
धार्मिक हो या अधार्मिक कुधार्मिक न्यायधीश या राजा होते अविवेकी।।
सत्य-असत्य व हित-अहित, आत्मा-अनात्मा की जब होती श्रद्धा-प्रज्ञा।
तब होता विवेक जागृत जिससे हितग्रहण व अहित होता त्याग।। (3)
असत्य, अन्धविश्वास व काम-क्रोध-मद-ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा-द्वेष।
अहंकार, ममकार व पक्षपात आकर्षण-विकर्षण त्याग से होता विवेक।।
कर्मफल कर्मचेतना परे होता विवेक (ज्ञान चेतना) लेश्या व संज्ञाओं से न होता विवेक।
राग-द्वेष-मोह से भी न होता विवेक, आध्यात्मिक ज्योति से विवेक होता प्रकाशित।। (4)
इससे अन्याय, अत्याचार, पापाचार, फैशन-व्यसनादि का होता त्याग।
संकल्प-विकल्प-संक्लेश त्याग व परनिन्दा-अपमानादि भी होता त्याग।।
इससे भाव-व्यवहार, कथन, लेखन, प्रवचनादि होते सम्यक्।
लौकिक, सामाजिक, राजनैतिक, कानूनी निर्णय भी होते सम्यक्।। (5)
व्यक्तिगत, पारिवारिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय निर्णय भी होते सम्यक्।
गृहस्थ-धर्म से ले श्रमणधर्म पालन, संवर्धन-संरक्षण होते सम्यक्।।
विवेक से मन भी होता सुमन, गुणग्रहण व दोष परिहरण।
संकीर्णता-हठग्राहिता-रूढ़ि नशती, उदारता व्यापकता शुचिता आती।। (6)
उत्तरोत्तर विवेक बुद्धि से श्रावक भी बन जाते हैं सच्चा-श्रमण।
परद्रव्य, परिग्रह, परप्रपंच, विभाव त्याग करना ही श्रेष्ठ विवेक।।
श्रमण बनकर ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि-वर्चस्व-निदान त्याग ही श्रेष्ठ विवेक।
आत्मध्यान-मनन-चिन्तन-परिशोधन से उत्तरोत्तर बढ़ता विवेक।। (7)
इससे आत्मानुभव बढ़ता जाता, जिससे निस्पृहता वीतरागता बढ़ती।
जिससे आत्मा की शुद्धि बढ़ती, जिससे आध्यात्मिक शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती।।
इससे आत्महित बढ़ता जाता, जिससे आत्म अहित घटता जाता।
जिससे आत्मिक शक्ति बढ़ती जाती, जिससे अहित भाव नष्ट हो जाता।। (8)
इससे आत्मा शुद्ध-बुद्ध-आनन्दमय होकर, सत्य-शिव-सुन्दर हो जाता।

यह ही आत्मा की परमहित अवस्था, ''सूरी कनक'' की शुद्धात्म दशा।।
अतएव विवेक ही परमज्ञान, परमविद्या व परमशिक्षा।
परमन्याय, परमसत्य प्राप्ति के उपाय व परम आध्यात्मिकता।। (9)
अतः विवेक बिन सभी ज्ञान-विज्ञान-शिक्षा-न्याय-धर्म अहितकर।
यथा आत्मा से रहित राजा-रंक आदि के शरीर भी दुर्गन्धकर।।
विवेक बिना रावण कंस हिटलर न श्रेष्ठ, विवेक युक्त विदुर, विभीषण भी श्रेष्ठ।
विवेक रहित सत्ता-सम्पत्ति-बुद्धि घातक, विवेक सहित शिवभूति मुनि भी पाये मोक्ष।। (10)

नन्दौड़, दि-15-9-2019, रात्रि-10.11

संदर्भ-

मोह सहित अज्ञानता से बंध होता है, मोहरहित अज्ञानता से बंध नहीं होता है। मोह-दर्शन मोहनीय एवम् चारित्र मोहनीय की अपेक्षा दो प्रकार का है। दर्शन मोहनीय एवं चारित्रमोहनीय सहित अज्ञान (अल्पज्ञ) से बंध होता है। परन्तु दर्शन मोहनीय एवं चारित्र मोहनीय रहित अज्ञानता से बंध नहीं होता है। इससे सिद्ध होता है कि मोहरहित कम ज्ञान से मोक्ष हो सकता है मोह सहित ज्ञान से अथवा विपुल ज्ञान से अथवा विपुल मिथ्याज्ञान से बंध होता है।

क्या यही मोक्ष का मार्ग है? उसका समाधान करते हैं-

बंधाणं च सहावं वियाणिदु अप्पणो सहावं च।
बंधेसु जो ण रज्जदि सो कम्मदिमोक्खणं कुणदी।। (315) स.सार

बंध के स्वभाव को और आत्मा के स्वभाव को जानकर के जो पुरुष विरक्त होता है वही कर्मों को काट सकता है।

भाव बंध मिथ्यात्व और रागादि स्वरूप है। इनके स्वभाव को जानकर अर्थात् हेय-उपादेय के विषय में जो विपरीत मान्यता है अर्थात् हेय को उपादेय और उपादेय को हेय समझना मिथ्यात्व कहलाता है तथा पंचेन्द्रियों के विषय में इष्ट और अनिष्ट का विचार होना रागादिक का स्वभाव है उसे जानकर केवल बंध स्वभाव को ही नहीं परन्तु आत्मा के अनन्त ज्ञानादि स्वभाव को जानकर द्रव्य बंध के हेतुभूत मिथ्यात्व और रागादि रूप भाव बंध हैं उन में निर्विकल्प समाधि के बल से रंजायमान नहीं होता सो वह कर्मों का नाश करता है।

सम्यक् श्रद्धा एवं सम्यक् चारित्र रहित विपुल मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान से मोक्ष नहीं हो सकता है। इतना ही नहीं मोक्ष के साधक रूप श्रमण भी नहीं हो सकता है। यह विषय कुंदकुंद स्वामी ने भावप्राभृत में सोदाहरण निम्न प्रकार से वर्णन किया है-

अंगाइं दस य दुण्णि य चउदस पुव्वाइं सयल सुयणाणे।
पढ़िओ अभव्वसेणो ण भाव समणत्तणं पत्तो।। (52)

द्वादशांग एवं चतुर्दश पूर्वात्मक सकल श्रुतज्ञान को पढ़कर भी भव्यसेन मुनि भावश्रमण नहीं हुए थे।

भव्यसेन मुनि सम्यग्दर्शन से रहित होने के कारण वह केवल श्रुतज्ञान को केवल शब्द से एवं अर्थ से पढ़े थे किन्तु भावात्मक रूप से अनुभव नहीं किये थे। शब्द और अर्थ से भी पूर्ण द्वादशांग का अध्ययन नहीं किये थे किन्तु एकादश अंग का पठन किये थे। द्वादशांग तथा चतुर्दश पूर्व का अध्ययन अभव्य मिथ्यादृष्टि नहीं कर सकता है। सकल श्रुतज्ञान का अध्ययन करने वाला महामुनीश्वर, श्रुतकेवली गणधर या सौधर्मइन्द्र, सर्वार्थसिद्धि के देव आदि परीतसंसारी जीव हो सकते हैं। आध्यात्मिक शब्द ज्ञान जीव को मोक्ष प्राप्त कराने के लिए अकिञ्चत्कर हैं। इस सिद्धान्त को जैन आध्यात्मिक साधक के साथ-साथ जैनेतर साधकों ने भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया हैं-

वीणाया रूप सौन्दर्य तन्त्रीवादन सौष्ठम्।
प्रजारञ्जन मात्रं तन्न साम्राज्य कल्पते।। (59) (विवेक चूड़ामणि)
वाग्वैश्वरी शब्द झरी शास्त्र व्याख्यान कौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये।। (60)

जिस प्रकार वीणा का रूप लावण्य तथा तन्त्री को बजाने का सुन्दर-ढंग मनुष्यों के मनोरंजन का ही कारण होता है, उससे कुछ साम्राज्य की प्राप्ति नहीं हो जाती, उसी प्रकार विद्वानों की वाणी की कुशलता, शब्दों की धारावाहिकता, शास्त्र-व्याख्यान की कुशलता और विद्वत्ता भोग ही का कारण हो सकती है, मोक्ष का नहीं।

अविज्ञाते परे तत्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला।
विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे शास्त्रधीतिस्तु निष्फला।। (61)

परम तत्त्व को यदि न जाना तो शास्त्राध्ययन निष्फल (व्यर्थ) ही है, और यदि परम तत्त्व को जान लिया तो शास्त्राध्ययन निष्फल (अनावश्यक) ही है।

शब्द जालं महारण्यं, चित्त भ्रमण कारणम्।

अतः प्रयत्नाज्ज्ञातव्यं तत्त्वज्ञातत्त्वमात्मनः।। (62)

शब्द जाल तो चित्त को भटकाने वाला एक महान् वन है, इसलिए किन्हीं तत्त्वज्ञानी महात्मा से प्रयत्नपूर्वक आत्म तत्त्व को जानना चाहिए।

सम्यग्ज्ञान को मोक्ष का कारण प्रतिपादन किया गया है यथा-

अथ कथं ज्ञानमात्रादेव बन्ध निरोध इति पूर्व पक्षे कृते परिहारं ददाति-ज्ञान प्राप्त कर ज्ञानी हो जाने से निर्बन्ध कैसे होता है अर्थात् बन्ध का निरोध कैसे करता है? उसका उत्तर देते हैं-

णादूण आसवणं असुचित्तं च विवरीय भावं च।

दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदि जीवो।। (77) समयसार

जब यह जीव आस्रवों के अशुचिपने को, जड़ता रूप विपरीतपने को और दुःख के कारणपने को जान लेता है तब अपने आप उनसे दूर रहता है।

क्रोधादि आस्रवों के कलुषतारूप अशुचिपने को जड़तारूप विपरीतपने को...जानकर उसके द्वारा स्वसंवेदन ज्ञान को प्राप्त होने के अनन्तर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र में एकाग्रता रूप परम सामायिक में स्थित होकर यह जीव क्रोधादिक आस्रवों की निवृत्ति करता है अर्थात् अपने आप दूर रहता है। इस प्रकार ज्ञान मात्र से ही बंध का निरोध सिद्ध हो जाता है। यहाँ सांख्यमत सरीखा ज्ञान मात्र से ही से बंध का निरोध नहीं माना गया है। (किन्तु वैराग्यपूर्ण ज्ञान को ज्ञान कहा गया है और उससे बंध का निरोध होता है) किं च? हम तुमसे पूछते हैं कि आत्मा और आस्रव सम्बन्धी जो भेदज्ञान है वह रागादि आस्रवों से निवृत्त है या नहीं? यदि कहो कि निवृत्त है तब तो उस भेद ज्ञान में पानक-पीने की वस्तु ठंडाई इत्यादि के समान अभेदनय से वीतराग चारित्र और वीतराग सम्यक्त्व भी है ही। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान से ही बंध का निरोध सिद्ध हो जाता है और यदि वह भेदज्ञान रागादि से निवृत्त नहीं है तो वह सम्यग्भेद ज्ञान ही नहीं है।

यहाँ पर आचार्यदेव ज्ञान शब्द से सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र का भी ग्रहण किये हैं। क्योंकि आध्यात्मिक दृष्टि से विषय वासना से रहित संसार शरीर भोगों से विरक्त रूप वीतराग ज्ञान को ही ज्ञान रूप से स्वीकार किया गया है। कुंदकुंद स्वामी ने मूलाचार में कहा भी है।

जेण रागा विरज्जेज्ज जेण सेएसु रज्जदि।

जेण मित्तीं पभावेज्जतं णाणं जिणसासणे।। (268)

जिसके द्वारा जीव राग से विरक्त होता है, जिसके द्वारा मोक्ष में राग करता है, जिसके द्वारा मैत्री को भावित करता है जिन शासन में वह ज्ञान कहा गया है।

न्याय ग्रंथ के रचयिता आचार्य श्री माणिकनंदी ने इसी सत्य को उजागर किया है-

हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थ हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्।।(2)

जिससे हित की प्राप्ति अहित का परिहार होता है वह प्रमाण है जो कि सम्यग्ज्ञान स्वरूप है-

''अज्ञान निवृत्तिहानोपदानोपेक्षाश्च फलम्-(परीक्षामुख'')

अज्ञान की निवृत्ति अहित का त्याग, हित की प्राप्ति, वीतराग स्वरूप निरपेक्षरूप समता भाव वह सम्यग्ज्ञान का फल है।

उपरोक्त सिद्धान्त से सिद्ध होता है कि केवल ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं है और केवल अज्ञान बंध का कारण नहीं है। इस सत्य का प्रतिपादन करते हुए तार्किक चूडामणि महान् दार्शनिक संत आचार्य समन्तभद्र स्वामी ''आत्ममीमांसा'' में कहते हैं-

अज्ञानाच्चेद्ध्रुवो बन्धो ज्ञेयानन्त्यान्न केवली।

ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चे दज्ञानाद्बहुतोऽन्यथा।। (96)

यदि एकान्ततः अज्ञानता से बंध होता है यदि ऐसा मान लिया जाये तब ज्ञेय अनंत होने से छद्मस्थ (12 गुणस्थान तक का असर्वज्ञ जीव) जीव अनंत ज्ञेय को नहीं जान सकता है तब वह केवली या मुक्त नहीं हो सकता है इससे सिद्ध होता है कि केवल अज्ञानता ही बंध का कारण नहीं है। यदि अल्प ज्ञान से मोक्ष होता है मान लिया जाए तब अधिक अज्ञानी होने से शीघ्र मोक्ष हो जायेगा। इसलिए अज्ञानता भी मोक्ष के लिए कारण नहीं है। मोक्ष का समर्थ कारण क्या है? इसका प्रतिपादन आचार्य देव ने स्वयं निम्न प्रकार किया है-

अज्ञान्मोहनो बन्धो नाऽज्ञानाद्वीत मोहतः।

ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहन्मोहिनोऽन्यथा।। (98) *(देवागमवृत्ति)*

अज्ञान सर्पदष्टस्य ब्रह्मज्ञानौषधं विना।

किमु वैदैश्च शास्त्रैश्च किमु मंत्रैः किमौषधेः।। (63)

अज्ञान रूपी सर्प से डंसे हुए को ब्रह्मज्ञान रूपी औषधि के बिना वेद से, शास्त्र से, मन्त्र से और औषध से क्या लाभ?

न गच्छति बिना पानं व्याधिरौषशब्दतः।

बिनापरोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैर्न मुच्यते।। (64)

औषध को बिना पिये केवल औषध-शब्द के उच्चारण मात्र से रोग नहीं जाता, इसी प्रकार अपरोक्षानुभव के बिना केवल ''ब्रह्म-ब्रह्म'' कहने से कोई मुक्त नहीं हो सकता।

अकृत्वा शत्रुसंहारमगत्वाखिल भूश्रिवम्।

राजाहमिति शब्दान्नो राजभवितुमर्हति।। (66)

बिना शत्रुओं का वध किये और बिन सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल का ऐश्वर्य प्राप्त किये, मैं राजा हूँ-ऐसा कहने से ही कोई राजा नहीं हो जाता।

आप्तोक्तिं खननं तथोपरिशिलाप्पुत्कर्षणं स्वीकृति।

निक्षेपः समपेक्षते न हि बहिः शब्दस्तु निर्गच्छति।।

तद्वद् ब्रह्मविदोपदेशमननध्यानादिभिर्लभ्यते।

माया कार्यतिरोहितं स्वममलं तत्त्व न दुर्याक्तिभिः।। (67)

(पृथ्वी में गड़े हुए धन को प्राप्त करने के लिए जैसे) प्रथम किसी विश्वसनीय पुरुष के कथन की, और फिर पृथ्वी को खोदने, कंकड-पत्थर आदि को हटाने तथा (प्राप्त हुए धन को) स्वीकार करने की आवश्यकता होती है-कोरी बातों से वह बाहर नहीं निकलता, उसी प्रकार समस्त मायिक प्रपञ्च से शून्य निर्मल आत्म तत्त्व भी ब्रह्मवित् गुरु के उपदेश तथा उनके मनन और निदिध्यासनादि से ही प्राप्त होता है, थोथी बातों से नहीं।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भवबन्धविमुक्तये।

स्वैश्च यतः कर्त्तव्यो रोगादिविव पण्डितैः।। (69)

इसलिए रोग आदि के समान भव-बंध की निवृत्ति के लिए विद्वान् को अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर स्वयं ही प्रयत्न करना चाहिए।

द्रव्य दृष्टि से शक्ति रूप से अभव्य निगोदिया जीव से लेकर छद्मस्थ अवस्था तक आत्मा शुद्ध होते हुए भी पर्याय रूप से, व्यक्त रूप से आत्म द्रव्य अशुद्ध है। उस शक्ति का व्यक्तिकरण करने के लिये जो आध्यात्मिक प्रणाली है उसको आचरण कहते हैं। आचरण शुद्धि से ही आत्म द्रव्य में शुद्धि आती है एवं द्रव्य शुद्धि से ही आचरण में शुद्धि आती है। कहा भी है-

द्रव्यानुसारि चरणं चरणानुसारिद्रव्यं,
मिथो द्वयमिदं ननु सव्यपेक्षम्।
तस्मान्मुमुक्षुरधिरोहतु मोक्षमार्ग,
द्रव्यं प्रतीत्य यदि वा चरणं प्रतीत्य।। (12) प्र. सार

चरण द्रव्यानुसार होता है और द्रव्य चरणानुसार होता है। इस प्रकार वे दोनों परस्पर सापेक्ष हैं, इसलिए या तो द्रव्य का आश्रय लेकर अथवा चरण का आश्रय लेकर मुमुक्षु (ज्ञानी, मुनि) मोक्ष मार्ग में आरोहण करो।

द्रव्यस्य सिद्धौ चरणस्य सिद्धिः द्रव्यस्य सिद्धिश्चरणस्य सिद्धै।
बुद्धध्वेति कर्माविरताः परेऽपि द्रव्याविरुद्धं चरणं चरंतु।। (13)

द्रव्य की सिद्धि में चरण की सिद्धि है और चरण की सिद्धि में द्रव्य की सिद्धि है-यह जानकर, कर्मों से (पापों से) अविरत तथा अन्य भी, द्रव्य से अविरुद्ध चरण का आचरण करो अर्थात् चारित्र का पालन करो।

केवल बौद्धिक या शास्त्रीय ज्ञान से चारित्र के न होने पर मोक्ष प्राप्ति तो अत्यन्त दूर है किन्तु सुगति भी प्राप्त होना दुष्कर है। कुंदकुंद स्वामी ने कहा भी है-

जहँ विसय लोलएहिं णाणीहिं हविज्ज सहिदो मोक्खो।
तो सो सच्चइ पुत्तो दस पुव्वीओ वि किं गदो णरय।। (30)

यदि विषय कषाय से लिप्त होते हुए ज्ञान से ही मोक्ष होता है तो बताओ दश पूर्व का ज्ञाता सात्यकी पुत्र क्यों नरक गया? कहने का भावार्थ यह है कि सात्यकी का पुत्र ज्ञानी होते हुए भी विषयों में रत होने के कारण मोक्ष की प्राप्ति तो दूर ही रही सुगति भी नहीं मिली परन्तु उसको नरक जाना पड़ा। इसलिए विपुल प्रकाण्ड बौद्धिक एवं शास्त्रीय ज्ञान मोक्ष के लिए विशेष सहकारी नहीं है-

बहुयइँ पढियइँ मूढ पर, तालु सुक्कइ जेण।
एक्कजु अक्करू तं पढ़हु सिवपुरी गम्मइ जेण।।

रे मूढ़! बहिरात्मन बहुत ही शास्त्र का पठन किया जिससे तालू सूख गया परन्तु शाश्वतिक सुख या आत्मज्ञान नहीं मिला। अभी तू अन्तरात्मा होकर एक भी अक्षर पढ़ जिससे तुम को शिवपुर की गति मिले। कबीरदास ने कहा है-

पोथी पढ़-पढ़ जगमुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का (आत्मा) पढे सो पंडित होय।।
जो णवि जाणइ अप्पु परु णवि पर भाई चएइ।
सो जाणउ सत्थँइ सयल ण हु सिव सुक्खु लहेइ।। (96) (योगसार)

जो न तो परमात्मा को जानता है और न परभाव का त्याग ही करता है, वह भले ही समस्त शास्त्रों को जान जाय, परन्तु वह मोक्ष सुख को प्राप्त नहीं करता।

इससे विपरीत अल्पज्ञ भी चारित्र एवं भावशुद्धि के माध्यम से सम्पूर्ण कर्मबन्धनों का विध्वंश करके शुद्ध-बुद्ध नित्य निरंजन पदवी को प्राप्त किए है।

तुसमासं घोसंतो भाव विशुद्धो य महाणुभावो य।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुंड जाओ।। (53) (भाव पाहुड)

शिवभूति नामक एक अल्पज्ञ मुनि तुस मास रटते हुए सच्चारित्र रूप भाव विशुद्धि से सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन-गये।

आगम में ऐसे अनेकों प्रमाण मिलते हैं जिससे ज्ञात होता है कि अनेक मुनीश्वरों को णमोकार मन्त्र भी नहीं आता था इतना ही नही गुरु प्रदत्त ''मा रूसह मा तूसह'' शब्द का भी ज्ञान नहीं था तो भी निर्मल चारित्र रूप भाव विशुद्धि से श्रेणी आरोहण करके लोकालोक को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान रूप सूर्य को प्राप्त कर गये, परन्तु सच्चारित्र के बिना सर्वार्थसिद्धि के देव जो कि क्षायिक सम्यग्दृष्टि, बाल-ब्रह्मचारी एवं सतत तत्त्व चिंतन करने वाले 33 सागर तक आत्मचिंतन करते हुए भी मोक्ष की बात तो दूर है किन्तु देशव्रत रूप श्रावकावस्था सर्व विरति रूप मुनि अवस्था को भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

उपरोक्त प्रतिपादन से यह सिद्धान्त प्रतिफलित नहीं होता है कि मोक्ष मार्ग में

सम्यग्ज्ञान का योगदान कुछ है ही नहीं परन्तु जो ज्ञान को प्राप्त करके तद्नुकूल आचरण नहीं करता है उसके लिये मोक्ष प्राप्ति के निमित्त ज्ञान विशेष कार्यकारी नहीं है। कुन्दकुन्द देव ने कहा है-

णाणस्स णत्थि दोसो कुप्पुरिसाणो वि मंद बुद्धिणो।

जे णाणगव्विदा हाऊणं विसएसु रज्जंति।। (10) (शील पाहुड)

जो कुपुरुष मन्द बुद्धिजन ज्ञान से गर्वित होकर विषयों में रचता पचता है उसमें ज्ञान का कोई दोष नहीं है।

विसएसु मोहिदाणं कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं।

उम्मग्गं दरसीणं णाणं णिरत्थयं तेसिं।। (23)

जो विषयों में मोहित है, वे उन्मार्गगामी इष्टदर्शी द्वारा कथित मार्ग के ज्ञान के ज्ञाता होते हुए भी उनका ज्ञान निरर्थक है।

जदि पडदि दीवहत्थो अवडे किं कुणदि तस्स सो दीवो।

तदि सिक्खिऊँण अणयं करेदि कि तस्स सिक्खफलम्।।

हस्त में दीपक होते हुए भी और कुएँ को देखते हुए भी जो कुएँ में गिरता है उसके हस्त में स्थित दीपक क्या कर सकता है? क्या गिरते हुए मनुष्य को दीपक बचा सकता है, कदापि नहीं। अथवा दीपक हस्त मनुष्य कुएँ में गिरने पर दीपक का कोई दोष होगा? कदापि नहीं होगा।

इसी प्रकार जो ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करके भी ज्ञानानुसार आचरण नहीं करता, उसकी शिक्षा के ज्ञान का क्या फल रहा? अर्थात् कोई नहीं।

बहुगंपि सुदमधदिं किं काहदि आजाण माणस्स।

दीव विसेसो अंधे णाण विसेसो वि तह तस्स।।

जो आत्मज्ञान से रहित है वह बहुश्रुत का अध्ययन करने पर भी क्या करेगा जैसे- अन्धे के लिए दीपक कोई विशेष कार्यकारी नहीं है उसी प्रकार वीतराग चारित्र अविनाभावी वीतराग ज्ञान या चारित्र सम्पन्न ज्ञान रहित उसका विपुल श्रुतज्ञान क्या करेगा?

शास्त्राग्रौ मणिवद्भव्यो विशुद्धो भाति निर्वृत्तः।

अङ्गारवत् खलो दीप्तो मली वा भस्म या भवेत्।। आत्मानुशासन (76)।।

शास्त्र रूप अग्नि में प्रविष्ट हुआ भव्य जीव तो मणि के समान विशुद्ध होकर मुक्ति को प्राप्त करता हुआ शोभायमान होता है। किन्तु दुष्ट जीव (अभव्य) उस शास्त्र रूप अग्नि में प्रदीप्त होकर मलिन व भस्म स्वरूप हो जाता है।

यस्य नास्ति विवेकस्तु केवलं यो बहुश्रुतः।
न स जानाति शास्त्रार्थान् दर्वी पाक रसानिव।।

जो हिताहित विवेक से रहित होकर बहुश्रुतज्ञ है वह शास्त्रों के रहस्य को नहीं जान सकता है। जैसा-चम्चा विभिन्न रस युक्त व्यञ्जनों से लिप्त होने पर भी रस को नहीं जान सकता है। इसीलिए कौटिल्य चाणक्य ने भी कहा है-

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्र तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति।।

जिसकी स्वयं की प्रज्ञा शक्ति नहीं है उसके लिए शास्त्र क्या कर सकता है? जिसकी दृष्टि-शक्ति नहीं है उसके लिये दर्पण क्या करता है? अर्थात् अंधा व्यक्ति स्वच्छ से स्वच्छ बड़े से बड़े दर्पण में अपना मुख देख नहीं सकता है। उसी प्रकार विषयान्ध व्यक्ति आत्मा का दर्शन नहीं कर सकता है क्योंकि विषय वासना रूपी घन परदा उनके प्रज्ञा रूप चक्षु को आवृत्त करके रखती है।

अन्धादयं महानन्धो विषयान्धी कृते क्षणः।
चक्षुषान्धो न जानाति विषयान्धो न केनचित्।। (35) आत्मानुशासन

जिसके नेत्र इन्द्रिय विषयों के द्वारा अन्धे कर दिये गये हैं अर्थात् विषयों में मुग्ध रहने से जिसकी विवेक बुद्धि नष्ट हो चुकी है ऐसा यह प्राणी उस प्रसिद्ध अंधे से भी अधिक अन्धा है, क्योंकि अन्धा प्राणी तो केवल चक्षु के ही द्वारा नहीं जान पाता है, परन्तु यह विषयान्ध मनुष्य इन्द्रियों और मन आदि में से किसी के द्वारा भी वस्तु स्वरूप को नहीं जान पाता है।

उपरोक्त कथन एवं उदाहरणों से यह नहीं समझना चाहिए कि सम्यक् ज्ञान मोक्षमार्ग के लिये बाधक है अथवा ज्ञानी लोग विषय वासना में रत रहते हैं। परन्तु उसका रहस्य यह है कि ज्ञान को प्राप्त करके भी यदि तद्नुकूल आचरण नहीं करेंगे तथा राग द्वेषात्मक परिणमन करेंगे तो निश्चित रूप से कर्म बन्ध होगा ही। ''णाणं पयासणं'' ज्ञान तो प्रकाश स्वरूप है जैसे अन्धकार में कुछ दिखाई नहीं देता है किन्तु

प्रकाश होने पर सर्प काँटा, धन, विष, सम्पत्ति आदि दिखाई देते हैं। परन्तु कोई प्रकाश से विष को पहिचान कर भी विषपान करेगा तो प्रकाश विषपान करने से रोकेगा नहीं तथा प्रकाश में भी विषपान करने से विष का परिणाम तो होवेगा ही। उसी प्रकार ज्ञान होते हुए भी पर वस्तु के प्रति आकर्षण-विकर्षण होने पर कर्मास्रव एवं बन्ध होगा जिससे संसार में परिभ्रमण करना पड़ेगा। परन्तु ज्ञान एव चारित्र में विरोध नहीं है किन्तु उत्तरोत्तर ज्ञान वृद्धि होने पर चारित्र में विशुद्धता आती है जिससे चारित्र भी उत्तरोत्तर वर्धमान होता है।

सीलस्य य णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहिं णिद्दिट्ठो।
णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणसंति।। (24)(शील पाहुड़)

अनन्त केवली बुद्धों द्वारा निर्दिष्ट है चारित्र एवं ज्ञान का परस्पर कोई विरोध नहीं है। अपरञ्च शील के बिना विषय सुख से ज्ञान का विनाश हो जाता है।

णाणं णाऊण णराकोई विसयाइ भावं संसत्ता।
हिंडत्ति चदुरगदिं विसएसु विमोहिया मूढ़ा।। (7)

कुछ मनुष्य ज्ञान को जानते हुए भी विषय वासना से भावित होकर विषयों में विमोहित मूढ़ होकर चर्तुगति रूप संसार में परिभ्रमण करते हैं।

जह विसयलुद्ध विसदो तह थावर जंगमाण घोराणं।
सव्वेसिं पि विणासदि विसयविसं दारुणं होई।। (21)

स्थावर, जंगम विष से भी विषय रूपी विष अत्यन्त भयंकर है। विषय रूपी विष से सुगति, मोक्षगति आदि विनाश हो जाती है। विषय रूपी विष अत्यन्त दारुण है।

वारि एकम्मि य जम्मे सरिज्ज विसवेयणाबहदो जीवो।
विसयविसपरिहराणं भमंति संसार कांतारे।। (22)

विष पान से एक बार मरण करके अन्य गति में जीव उत्पन्न होता है। परन्तु विषय रूपी विष सेवन से संसार रूपी वन में अनेक बार परिभ्रमण करना पड़ता है।

णाणं चरित्त हीणं लिंगग्गहणं च दंसण विहीणं।
संजमहीणो य तवो जइ चरइ णिरत्थयं सव्वं।। (5)

चारित्र हीन ज्ञान, दर्शन विहीन मुनि वेषादि धारण, इन्द्रिय मन एवं प्राणी संयम रहित तप जो आचरण करता है वह सर्व निरर्थक होता है।

उपरोक्त नानाविध उदाहरण एवं कथन प्रणालियों से यह सिद्ध होता है कि रत्नत्रय परस्पर विरोधी या घातक नहीं है परन्तु परस्पर अनुपूरक-परिपूरक तथा सहकारी है। क्योंकि सम्यग्दर्शन से ज्ञान में सम्यक्पना आता है। सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान से चारित्र में सम्यक्त्वपना आता है तथा चारित्र दृढ़ एवं उत्तरोत्तर विशुद्ध होता है।

सम्यग्दर्शन तो प्रासाद (भवन) के लिए नींव के समान आधारशिला है। बिना सम्यग्दर्शन के रत्नत्रय रूप प्रासाद नहीं टिक सकता है। नींव के बिना प्रासाद नहीं टिकने पर नींव ही प्रासाद नहीं है इसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना रत्नत्रय रूप महल नहीं टिकने पर भी सम्यग्दर्शन ही रत्नत्रय नहीं है।

सम्यग्ज्ञान दो कमरे के बीच स्थित देहली के ऊपर रखा हुआ दीपक के सदृश है। जैसे वह दीपक दोनों कमरों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञान रूपी दीपक सम्यक् दर्शन तथा सम्यक् चारित्र को प्रकाशित करता है। प्रकाश से हिताहित का परिज्ञान होते हुए प्रकाश स्वयं हित वस्तु को ग्रहण कर अहित वस्तु का परिहार नहीं कर सकता है। श्रद्धा से मानकर ज्ञान से जानकर एवं आचरण से माना हुआ, जाना हुआ कार्य का सम्पादन होता है। अर्थात् विश्वसनीय एवं ज्ञात लक्ष्य बिन्दु को प्राप्त करने के लिए तदनुकूल पुरुषार्थ के माध्यम से लक्ष्य बिन्दु में पहुँचकर लक्ष्य की पूर्ति कर लेते हैं। कुन्द-कुन्द स्वामी ने चारित्र पाहुड़ में कहा भी है-

जं जाणइ तं णाणं जं पेच्छइ तं च दंसणं भणियं।
णाणस्स पिच्छियस्स स समवण्णा होइ चारित्तं।। (3)

जो जानता है वह ज्ञान है जो देखता है वह दर्शन है, ज्ञान एवं दर्शन समापन्न या समायोग में चारित्र होता है।

एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स अक्खयामेया।
तिण्हि वि सोहणत्थे जिण भणियं दुवियं चारित्तं।। (4)

वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूप तीन भाव जीव के अक्षय, अनन्त, स्वभाव स्वरूप हैं। इन तीनों भावों की विशुद्धि के लिए जिनेन्द्र भगवान ने व्यवहार एवं निश्चय दो प्रकार चारित्र कहे हैं।

सम्मत्त चरण शुद्धा संजम चरणस्स जइ व सुपसिद्धा।
णाणी अमूढ़ दिट्ठी अचिरे पावंति णिव्वाणं।। (3)

सम्यक्त्व सम्बन्धी सम्पूर्ण दोषों से रहित सम्यक्त्व गुण से अलंकृत जो होता है वह सम्यक् चारित्र से विशुद्ध होता है। वह सम्यक्त्वाचरण चारित्र चतुर्थ गुणस्थान में होता है। चरणानुयोग अनुसार चतुर्थ गुणस्थान में चारित्र नहीं होने पर भी अष्ट मद, शंकादि अष्ट दोष, षट् अनायतन आदि का त्याग एवं निशंकआदि अष्ट अंग, संवेगादि अष्ट गुणादि सहित होना ही इस गुणस्थान सम्बन्धी चारित्र है इसको ही सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहते हैं। सम्यक्त्वाचरण सहित जो महामुनीश्वरों का महाव्रतादि रूप संयमाचरण से अत्यन्त प्रकृष्ट रूप से सर्वलोक सुप्रसिद्ध है। ऐसे महान् चारित्र साधक निर्वाण को स्वल्प काल में ही प्राप्त कर लेते हैं। यहाँ पर चारित्र मुख्य होने पर भी सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान की समग्रता भी कहा गया है।

सीलं रक्खताणं दंसण-सुद्धाण दिढ चरित्ताणं।

अत्थि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्त चित्ताणं।। (12)

जो शील के संरक्षक हैं दर्शन से विशुद्ध हैं दृढ़ चारित्र निष्ठ हैं विषय वासना से विरक्त चित्त वाले हैं उनके लिये निर्वाण ध्रुव सुनिश्चित है।

संजयो विदुर प्राप्तो गहेयित्वा च मां गतः।

अजातशत्रोः श्वो वाक्यं सभामध्ये स वक्ष्यति।। विदुर नीति

धृतराष्ट्र बोले, संजय मुझसे मिलकर गया है। उसने मेरी निन्दा की है। वह कल राज सभा में युधिष्ठिर की ओर से मुझसे विवाद करेगा।

तस्याद्य कुरुवीरस्यं न विज्ञातं वचो मया।

तन्मे दहति गात्राणि तदकार्षीत् प्रजागरम्।।

युधिष्ठिर क्या कहना चाहता है, यह मैं नहीं जानता पर मेरा मन संतप्त हो रहा है और मुझे नींद नहीं आ रही है।

जाग्रतो दह्यमानस्य श्रेयो यदनुपश्यसि।

तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि।।

इस कारण मैं जो पीड़ा का अनुभव कर रहा हूँ। तुम मुझे जो कुछ कल्याणकारक है, बतलाओ क्योंकि तुम धर्म और नीति में कुशल हो।

यतः प्राप्तः सञ्जयः पाण्डवेभ्यो न मे यथावन्मनसः प्रशान्तिः।

सर्वेन्द्रियाण्यप्रकृतिं गतानि, किं वक्ष्यतीत्येव मुऽद्य प्रचिन्ता।

संजय पांडवों के पास से आने के बाद जिस प्रकार मुझसे वार्तालाप करके गया है, उस कारण मेरा मन शान्त नहीं है। चिन्ता के कारण मैं अस्वाभाविक दशा में हूँ। वह कल राजसभा में क्या कहेगा, इसी का मुझे सोच लगा है।

अभियुक्तं वलवता दुर्बलं हीनसाधनम्।

हृतस्वं कामिनं चौरम् आविशन्ति प्रजागराः।।

कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्पृष्टोऽसि नराधिप।

कच्चिन्न परवित्तेषु गृध्यन्न परितष्यसे।।

तब महात्मा विदुर बोले, बलहीन और साधनहीन, जिसका धन हरण कर लिया गया हो, कामी और चोर को निद्रा नहीं आती है। हे राजन्! क्या आप इन दोषों से तो पीड़ित नहीं हैं? दूसरों के ऐश्वर्य की लालसा भी सन्तप्त कर रही हो, शायद यह भी एक कारण हो।

श्रोतुमिच्छामि ते धर्म्यं पर नैःश्रेयसं वचः।

अस्मिन् राजर्षिवंशे हि त्वमेकः प्राज्ञसम्मतः।।

महात्मा विदुर आप महाविद्वान हैं। राजर्षियों के वंश में उत्कृष्ट माने गये हैं।

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।

यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते।।

जो व्यक्ति अपनी आत्मा को जानता है, अपनी शक्ति को जानता है, अपनी शक्ति के ही अनुसार कार्य करता है, उसे ही पंडित अर्थात् ज्ञानी कहा जाता है।

निषवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।

अनास्तिकः श्रद्दधान एतत् पण्डितलक्षणम्।।

जो पुरुष उत्तम कर्मों का आचरण करता है, निन्दित कर्मों से दूर रहता है, नास्तिकता से रहित और श्रद्धावान है, वही पंडित है। इन लक्षणों वाला ही पंडित कहलाने का अधिकारी हैं।

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीस्तम्भो मान्यमानिता।

यमर्थान्नापकर्षन्ति म वै पण्डित उच्यते।।

जिस व्यक्ति को क्रोध, प्रसन्नता, अभिमान, लज्जा, रूठना धृष्टता नहीं होती है,

जो इन सबसे अलग (परे) रहता है, ज्ञानी पंडित वही कहलाता है।

यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे।

कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते।।

जिस व्यक्ति के भविष्य के कार्य, करने योग्य कर्म कि कब वह क्या करेगा, कोई नहीं जान पाता है, ऐसा व्यक्ति पंडित कहलाता है।

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः।

समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते।।

जिस मनुष्य के कार्य को शीत या उष्णता, भय या विषयासक्ति, सम्पत्ति या निर्धनता नष्ट नहीं कर सकती है, वही पंडित, ज्ञानी कहलाने का अधिकारी हैं।

यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते।

कामादथ वृणीते यः स वै पण्डित उच्चते।।

जिस व्यक्ति की सांसारिक अस्थिर बुद्धि भी धर्म और अर्थ के अनुकूल चलती है, जो स्वार्थ से परे केवल धर्म के नियमों का पालन करता है, वही पंडित कहा जाता है।

यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वते।

न किञ्चिदवमन्यन्ते नराः पण्डितबुद्धयः।।

जो व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुरूप कार्य करना जानते हैं, शक्ति के अनुसार कार्य करते हैं। जो किसी का अपमान नहीं करते, वही ज्ञानी कहलाता है।

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्।

नासपृष्टो व्युपयुङ्क्ते परार्थे तत् प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य।।

जो व्यक्ति तुरन्त इशारे मात्र से जान जाता है और दीर्घकाल तक मनोयोग से दूसरे को सुनता है, अर्थ की कामना से किसी का पक्ष नहीं लेता है, निष्पक्ष अपना निर्णय देता है, वही ज्ञानी कहलाने का अधिकारी है।

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।

आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः।।

जो व्यक्ति अप्राप्य वस्तु को प्राप्त करने की कामना नहीं रखता, नष्ट हो गयी

वस्तु का शोक नहीं करता और आपत्ति आने पर मोह-अज्ञान को प्राप्त नहीं करता है, वही पंडित बुद्धि वाला माना गया है।

निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते।।

जो व्यक्ति कर्म को अपना कर्त्तव्य मानकर, निश्चय से आरम्भ करता है, कर्म को बीच में नहीं छोड़ता और उसे समाप्त करके ही रहता है, सदा कर्मरत रहता है और जितेन्द्रिय होता है, वही ज्ञानी कहलाने का अधिकारी है।

आर्यकर्मणि रज्यन्ते भतिकर्माणि कुर्वते।
हितं न नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ।।

हे भरतकुल में श्रेष्ठ धृतराष्ट्र, जो व्यक्ति कर्मों में अनुराग रखता है और ऐश्वर्य के लिये कर्म करता ही रहता है, जो केवल कल्याण-कारक कर्म करता है, किसी की निन्दा नहीं करता, वही पंडित कहा जाता है।

न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते।
गांगो ह्रद इवाक्षोभ्यो सः स पंडित उच्चते।।

जो मनुष्य आत्म सम्मान से प्रसन्न नहीं होता, गौरव का अनुभव नहीं करता, अपमान से क्षुब्ध नहीं होता है और गंगा सागर के समान शान्त रहता है, वही पंडित कहलाने के योग्य है।

तत्त्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम्।
उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते।।

जो मनुष्य सब कुछ नाशवान मानता है और जो कर्मों की रचना तथा कार्य कुशलता का ज्ञाता है, कर्म की सिद्धि के उपाय जानता है, वही पंडित माना गया है।

प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते।।

जिसकी वाणी कभी कुंठित नहीं होती, जो कथा कहने में चतुर, तर्क शक्ति में निपुण, प्रतिभा से युक्त और ग्रन्थों से उदाहरण देकर वार्ता करने में पटु होता है, वही पंडित कहलाने का अधिकारी है।

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।

अर्थाश्चकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः।।

जो व्यक्ति ज्ञान रहित होकर भी उद्दण्ड है, दरिद्र रह कर भी बड़ी-बड़ी अभिलाषाएं रखता है और बिना कर्म किए ही ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहता है, वह मूर्ख है।

स्वमथ यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति।

मिथ्या चरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते।।

जो मनुष्य अपना ऐश्वर्य छोड़कर दूसरे का ऐश्वर्य प्राप्त करना चाहता है, अपने मित्र के साथ भी जो मिथ्या व्यवहार करता है, वह मूर्ख कहलाता है।

ऊपरचोटि का शास्त्राभ्यास शिलातलाभे हृदि ते वहन्ति,

विशन्ति सिद्धान्तरसा न चान्तः।

यदत्र नो जीवदयार्द्रता ते,

न भावनाङ्कुरततिश्च लभ्याः।। (1) आध्या. क.

शिला की सपाटी समान तेरे हृदय पर होकर सिद्धान्त जल बह जाता है, परन्तु वह तेरे अन्दर प्रवेश नहीं करता है; कारण कि उसमें (तेरे हृदय में) जीवदयारूप भिनाश नहीं है। इसलिए उसमें भावनारूप अंकुरों की श्रेणी भी नहीं हो सकती है।

शास्त्राभ्यासी प्रमादी को उपदेश

यस्यागमाम्भोदरसैर्न धौतः, प्रमादपङ्कः स कथं शिवेच्छुः?

रसायनैर्यस्य गदाः क्षता नो, सुदुर्लभं जीवितमस्य नूनम्।। (2)

जिस प्राणी का प्रमादरूप कीचड सिद्धान्तरूप बरसात के जल प्रवाह से भी नहीं धोया जा सकता वह किस प्रकार मुमुक्षु (मोक्ष प्राप्ति का अभिलाषी) हो सकता है? खरेखर, रसायण से भी जो यदि किसी प्राणी की व्याधियों का अन्त न हो सके तो समझना चाहिये कि उसका जीवन रह ही नहीं सकेगा।

स्वपूजा निमित्त शास्त्राभ्यास करनेवालों के प्रति

अधीतिनोऽर्चादिकृते जिनागमः, प्रमादिनो दुर्गतिपापतेर्मुधा।

ज्योतिर्विमूढस्य ही दीपपातिनो, गुणाय कस्मै शलभस्य चक्षुषी।। (3)

दुर्गति में पड़नेवाले प्रमादी प्राणी जो स्वपूजा निमित्त जैन शास्त्र का अभ्यास

करते हैं वह निष्फल है। दीपक को ज्योति से लुभाकर दीपक में गिरनेवाले पतंगियों को उनकी आंखें क्या लाभ देनेवाली हैं?

परलोकहितबुद्धिरहित अभ्यास करनेवालों को

मोदन्ते बहुतर्कतर्कणचणाः, केचिज्जयाद्वादिनां।

काव्यैः केचन कल्पितार्थघटनै, स्तुष्टाः कविख्यातितः।।

ज्योतिर्नाटकनीतिलक्षणधनु, र्वेदादिशास्त्रैः परे।

ब्रूमः प्रेत्याहिते तु कर्मणि जडान्, कुक्षिम्भरीनेव तान्।। (4)

कितने ही अभ्यासी अनेक प्रकार के तर्कवितर्को के विचारों में प्रसिद्ध होकर वादियों को जीतकर आनंद अनुभव करते हैं, कितने ही कल्पना करके काव्य-रचना कर कवि की बड़ाई पाकर आनंद का अनुभव करते हैं और कितने ही ज्योतिष शास्त्र, नाट्यशास्त्र, नीतिशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, धनुर्वेद आदि शास्त्रों के अभ्यास द्वारा आनंदित होते हैं; किन्तु आनेवाले भव के हितकारी कार्य की ओर यदि वे अक्ष (अथवा बेपरवाह) हो तो हमें तो उन्हें पेटु (पेट भरनेवाले) ही कहना चाहिये।

शास्त्र पढकर क्या करना?

किं मोदसे पण्डितनाममात्रात्? शास्त्रेष्वधीती जनरञ्जकेषु।

तत्किंञ्चनाधीष्व कुरुष्व चाशु, न ते भवेद्येन भवाब्धिपातः।। (5)

लोकरंजनकारक शास्त्रों का तूं अभ्यासी होकर तूं पण्डित नाममात्र से क्यों कर प्रसन्न हो जाता है? तूं कोई ऐसा अभ्यास कर और फिर कोई ऐसा अनुष्ठान कर कि जिससे तुझको संसारसमुद्र में पडना ही न पड़े।

शास्त्राभ्यास करके संयम रखना

धिगागमैर्मांद्यसि रञ्जयन् जनान्, नोद्यत्छसि प्रेत्यहिताय संयमे।

दधासि कुक्षिम्भरिमात्रतां मुने, क्व ते क्व तत् क्वैष च ते भवान्तरे।। (6)

हे मुनि! सिद्धान्तों द्वारा तू लोगों को रंजन करके प्रसन्न होता है परन्तु तेरे स्वयं के आमुष्मिक हितनिमित्त यत्न नहीं करता है अतः तुझको धिक्कार है। तू एक मात्र पेटभरापन ही धारण करता है; परन्तु हे मुनि! भवान्तर में वे तेरे आगम कहां जायेंगे, वह तेरा जनरंजन कहां जायेगा और वह तेरा संयम कहां चला जायेगा?

केवल अभ्यास करनेवाले और अल्पभ्यासी साधक में कौन श्रेष्ठ है?

धन्याः केऽप्यनधीतिनोऽपि, सदनुष्ठानेषु बद्धादराः।
दुः साध्येषु परोपदेशलवतः श्रद्धानशुद्धशयाः।।
केचित्त्वागमपाठिनोऽपि दधत स्तत्पुस्तकान् येऽलसाः।
अत्रामुत्रहितेषु कर्मसु कथं ते भाविनः प्रेत्यहाः।। (7)

कितने ही प्राणियों ने शास्त्र का अभ्यास न किया हो फिर भी दूसरों के थोड़े से उपदेश से कठिनता से होनेवाले शुभ अनुष्ठानों का आदर करने लग जाते हैं और श्रद्धापूर्वक शुभ आशयवाले हो जाते हैं उनको धन्य है। कितने ही तो आगम के अभ्यासी होते हैं और उनकी पुस्तकें भी पास में लिये फिरते हैं फिर भी इस भव तथा परभव के हितकारी कार्यों में प्रमादी बन जाते हैं और परलोक का नाश कर देते हैं। उनका क्या होगा?

मुग्धबुद्धि वि. पंडित.

धन्यः स मुग्धमतिरप्युदितार्हदाज्ञा-
रागेण यः सृजति पुण्यमदुर्विकल्पः।
पाठेन किं व्यसनतोऽस्य तु दुर्विकल्पै-
र्यो दुस्थितोऽत्र सदनुष्ठितिषु प्रमादी।। (8)

बुरे संकल्प नहीं करनेवाला और तीर्थंकर महाराज से दी हुई आज्ञाओं के राग से शुभ क्रिया करनेवाला प्राणी अभ्यास करने में मुग्धबुद्धि हो तो भी भाग्यशाली है। जो प्राणी बुरे संकल्प किया करता है और जो शुभ क्रिया में प्रमादी होता है उस प्राणी को अभ्यास से और उस टेव से क्या लाभ?

शास्त्राभ्यास-उपसंहार

अधीतिमात्रेण फलन्ति नागमाः, समीहितैर्जीवसुखैर्भवान्तरे।
स्वनुष्ठितैः किंतु तदीरितैः खरो, न यत्सिताया वहनश्रमात्सुखी।। (9)

एक मात्र अभ्यास से ही आगम भवान्तर में अभिलषित सुख देकर फलदायक नहीं होते हैं, उनमें बताये शुभ अनुष्ठानों के करने से आगम फलदायक होते हैं। जिस प्रकार मिश्री के भार को उठाने मात्र से गदहा कुछ भी सुखी नहीं हो सकता है।

कफन ओढ़ ताबूत में लेटकर मौत का अहसास कर रहे लोग ताकि जिंदगी को पहले से बेहतर बना सकें

द. कोरिया की कंपनी लोगों को अंतिम संस्कार अनुभव करा रही

दक्षिण कोरिया की कंपनी ह्योवोन हीलिंग सेंटर मुफ्त में लोगों को अंतिम संस्कार का अनुभव करा रही है। ताकि लोग मौत से पहले अपनी जिंदगी को पहले से बेहतर बना सकें। इसके तहत ताबूतों में लोगों को कफन ओढ़ाकर करीब 10 मिनट तक लिटाया जाता है। उनके अंतिम संस्कार की प्रक्रिया भी की जाती है।

कंपनी का मानना है कि यदि किसी व्यक्ति को मौत का अहसास हो जाता तो उसके व्यवहार में बदलाव आ जाता है। इससे वह जिंदगी बेहतर तरीके से जीने में जुट जाता है। वह लोगों के प्रति दयालु भी हो जाता है। हाल ही में हुए इस आयोजन में 15 से 75 साल तक के लोगों ने हिस्सा लिया। 75 वर्षीय चो जे-ही ने कहा-'एक बार जब आप मृत्यु के प्रति सचेत हो जाते हैं और इसे अनुभव कर लेते हैं, तो आप जीवन में खुश रहने के तरीके ढूंढने लगते हैं। 2012 में खोले जाने के बाद से ह्योवोन हीलिंग सेंटर के इस आयोजन में 25 हजार से ज्यादा लोग शामिल हो चुके हैं।'

जानलेवा जलवायु परिवर्तनः वर्ष 2100 तक विश्व की 74 फीसदी आबादी को साल में 20 दिन भीषण गर्मी झेलनी पड़ेगी

धरती के सबसे गर्म शहर जकोबाबाद में पारा 53 डिग्री तक रहता है, ऐसी ही गर्मी आपके यहां भी हो सकती है

पाकिस्तान का जकोबाबाद एशिया और संभवतः विश्व का सबसे गर्म शहर है। वहां गर्मी के मौसम में तापमान 53 डिग्री सेल्सियस तक पहुंच जाता है। थर्मामीटर के पारे का 50 से 52 डिग्री के बीच रहना सामान्य होता जा रहा है। अगर धरती का इस गति से गर्म होना जारी रहा तो केवल जकोबाबाद ही नहीं बहुत जगह इतना तापमान रहेगा। वर्ष 2100 तक दुनिया की तीन चौथाई आबादी को साल में 20 दिन जानलेवा गर्मी से जूझना होगा।

इस वर्ष गर्मी के मौसम में एशिया, यूरोप, अफ्रीका, उत्तर और दक्षिण अमेरिका (उत्तरी गोलार्द्ध) में गर्म हवाओं ने जबर्दस्त कहर ढाया है। क्लाइमेट सांइटिस्ट बताते हैं कि मौसम की गतिविधि से राहत न मिलने का कारण जलवायु परिवर्तन ही है।

19 में से 18 सबसे गर्म वर्ष 2001 के बाद रहे हैं। हवाई यूनिवर्सिटी में क्लाइमेट साइंटिस्ट केमिलो मोरा का कहना है, स्थिति इससे बहुत अधिक खराब होने वाली है। जकोबाबाद जैसी गर्मी पड़ने की ज्यादा आशंका है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि 21 वीं सदी के अंत तक ग्लोबल औसत तापमान में कम से कम 3 डिग्री सेल्सियस बढ़ोतरी संभावित है। मोरा कहते हैं, इस कारण तूफान, जंगलों में आग और ग्रीष्म लहर तीन गुना अधिक बढ़ जाएगी।

पाकिस्तान दावा करता है कि जकोबाबाद विश्व का सबसे गर्म शहर है। दरअसल, विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाएं अलग-अलग मैट्रिक्स का उपयोग करती हैं। पिछले दो वर्षों में ईरान, पाकिस्तान और कुवैत ने रिकॉर्ड तापमान के दावे किए हैं। वैसे, विश्व मौसम विज्ञान संगठन की व्यापक रिसर्च के सामने आने के बाद तुरबत, पाकिस्तान इस खिताब के लिए दावा कर सकता है। वहां सबसे अधिक 53.7 डिग्री सेल्सियस तापमान 28 मई, 2017 को रिकॉर्ड किया गया था। जकोबाबाद फिर भी बाजी मार सकता है, क्योंकि वहां गर्मी में लगातार 50 डिग्री से अधिक तापमान रहता है।

हालांकि, ज्यादा तापमान डैथ वैली कैलिफोर्निया (56.7 डिग्री) में रिकॉर्ड किया जा चुका है। वहां मानव बसाहट नहीं है। मैसाचुसेट्स इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलाजी मीडिया लैब में रिसर्च साइंटिस्ट निक ओबरादोविच ने मानसिक स्वास्थ्य पर जलवायु परिवर्तन के असर की स्टडी की है। निक की टीम ने जलवायु की अलग-अलग स्थितियों में रहने वाले लोगों की एक अरब से अधिक सोशल मीडिया पोस्ट के अध्ययन पर पाया कि सामान्य से ज्यादा तापमान का संबंध खराब मूड और मानसिक स्वास्थ्य से है।

मानव शरीर मौसम के अनुरूप अपने आपको ढालता है लेकिन गर्मी बर्दाश्त करने की एक सीमा है। जब आसपास की हवा का तापमान शरीर के सामान्य

तापमान 37 डिग्री से अधिक होता है तब पसीना निकलने से शरीर ठंडा होता है। लेकिन, नमी ज्यादा होने से पसीने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि हवा में पहले से अधिक नमी रहती है। नतीजतन सबसे पहले त्वचा में खून का प्रवाह बढ़ता है।

दिल पर दबाव पड़ता है। थकान बढ़ती है। नर्व कोशिकाओं की गड़बड़ी से सिरदर्द, उल्टी होती है। अगर शरीर का तापमान 40, 41 डिग्री से अधिक पहुँचाता है तो अंग शिथिल पड़ते हैं। किडनी फेल होने और आंत की सतह फटने से खून विषाक्त होता है। इससे कुछ घंटो के भीतर मौत हो जाती है।

एशिया में परिवर्तन का असर

मध्य पूर्व में गर्म और सूखा मौसम से दजला, फरात नदियां सूख गई है। लाखों लोगों को पलायन करना पड़ा है।

फिलीपीन्स में जानलेवा 10 तूफानों में से पांच पिछले 15 वर्षों में आए।

भारत की गंगा, वियतनाम की मेकांग और चीन की पर्ल नदी के डेल्टा में ज्यादा तूफान और बाढ़ आने लगी है।

क्या है निपटने का उपायः

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण सुरक्षा एजेंसी के अनुसार कुछ पेड़ों के कारण आसपास का तापमान 5 डिग्री सेल्सियस तक कम हो सकता है।

गर्मी के साथ नमी बढ़ने का शरीर पर घातक असर

हवाई यूनिवर्सिटी के क्लाइमेट साइंटिस्ट मोरा की टिम ने पिछले 35 वर्ष की 783 जानलेवा ग्रीष्म लहर के डेटा का विश्लेषण किया है। पता लगा कि गर्मी नहीं नमी से अधिक फर्क पड़ता है। नमी 50% से अधिक होने पर दिन के समय 38 से 39 डिग्री तापमान भी घातक साबित हो सकता है। हालांकि जकोबाबाद में ऐसा बहुत कम होता है।

वर्ष 2100 तक विश्व की लगभग 74% आबादी को हर वर्ष कम से कम 20 दिन ऐसे हालात झेलना पड़ेंगे जब गर्मी और नमी घातक मोड़ पर पहुँच जाएगी। अमेरिका के राष्ट्रीय समुद्री और वातावरण विभाग का अनुमान है कि विश्व में गर्मी और नमी के कारण खुले स्थानों में लोगों के काम करने में 10% गिरावट आई है। यह आंकड़ा 2050 तक दोगुना हो जाएगा।

स्वच्छता मिशन से देश में 3 लाख जिंदगी बची

रिपोर्ट-स्वच्छता से महिलाओं के बॉडी मास इंडेक्स में सुधार हुआ

पीएम मोदी ने कहा कि मुझे बताया गया है कि बिल एंड मिलिंका गेट्स फाउंडेशन की एक रिपोर्ट में भी आया है कि भारत में ग्रामीण स्वच्छता बढ़ने से बच्चों में दिल की समस्याएँ कम हुई हैं और महिलाओं के बॉडी मास इंडेक्स में भी सुधार आया है।

डब्ल्यूएचओ के मुताबिक स्वच्छता मिशन के जरिए देश में तीन लाख लोगों की जान बचाई गई है। वहीं, यूनिसेफ के मुताबिक इससे हर परिवार का सालाना औसतन 54 हजार रुपए की बचत हो रही है। पीएम मोदी ने कहा कि आज मुझे इस बात की भी खुशी है कि गांधीजी ने स्वच्छता का जो सपना देखा था, वो अब साकारा होने जा रहा है। गांधी जी कहते थे कि एक आदर्श गांव तभी बन सकता है, जब वो पूरी तरह स्वच्छ हो।

एक व्यंग्य रचना

कटु-वाणी

-राज पटनी, 'लाडनूं'

(दिशाबोध नवम्बर 2002 अंक में प्रकाशित एक रचना जो आज भी प्रासंगिक है-सम्पादक)

वैराग्य हुआ था ऋषभदेव को, धन-वैभव सब त्याग दिया।
वैराग्य हुआ था महावीर को, राजमहल को त्याग दिया।।

आज-कल के वैरागी को देखो घर में थे फांको में।
साधु बन कर खेल रहे हैं आज मगर लाखों में।।

दो नम्बर के साधु हैं और चेले दो नम्बर के।
दो नम्बर के भगत हैं सारे, पैसे दो नम्बर के।।

दो नम्बरी मिल कर के सारे मन्दिर यदि बनायेंगे।
ईश्वर अपने नम्बर वन हैं, कभी ना इसमें जायेंगे।।

बाँट रहे है टिकट स्वर्ग के, लेकर के जो मोटा माल।
साधु नहीं है लोग हैं पक्के आज के ये नटवर लाल।।

बसे आत्मा में हैं सबके, कण-कण में अपने भगवान।
पा लेंगे हम खुद ही उनको, नहीं चाहिये हमें दलाल।।

वैराग्य हो गया दुनिया से और वेश बनाया दिगम्बर।
फोन हाथ में, नार साथ में, साधु है या घन-चक्कर।।

टोना-टोटका करते हैं और भक्तों को चमकाते हैं।
चेलों के संग मिलकर के वह दिन भर माल बनाते हैं।।

तन से तो नंगे हैं लेकिन माया मोह मन के अन्दर।
माल टनाटन मिले कहां से रहती है बस एक नजर।।

टोना टोटका करते हैं और करते हैं जादू मंतर।
साधु नहीं ये जैन धर्म के, यह है कोई बाजीगर।।

नंगे हो जाने से कोई महावीर नहीं हो जाता।
वेश बना लेने से कोई साधु नहीं है हो जाता।।

दिशाबोधः जून जुलाई-2019

पेलियोमैमेलियन ग्रंथि दिमाग का भावनात्मक व सामाजिक मेधा का केंद्र है। प्रेम, नफरत, भय, सुख, कुढ़न, लगाव जैसे भाव इससे पैदा होते है। किसी के संपर्क में आने या परिस्थिति से टकराने पर जो अहसास पैदा होते हैं, यह हिस्सा उसके लिए जिम्मेदार है।

इंसानी दिमाग जीवन से भरा एक जंगल

-अशोक पनगड़िया

न्यूरोविज्ञानी, डॉ. बी.सी. रॉय अवार्ड और पद्मश्री से सम्मानित। चिकित्सा शोध और शिक्षा क्षेत्र में सक्रिय हैं।

रेप्टीलियन मस्तिष्क भौतिक अवस्था कायम रखने के लिए जिम्मेदार

है। इसका संबंध अपने अस्तित्व को बनाए रखने में काम आने वाले स्वस्फूर्त व्यवहार से है। आक्रामक व्यवहार, पलटवार, प्रजनन, वर्चस्व, अपने इलाके की पहरेदारी व कर्मकांडीय कृत्य इसमें आते हैं जिनका संबंध अस्तित्व बचाए रखने की विचार प्रक्रिया के साथ है।

'मनुष्य स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणी है', अरस्तु का यह कथन इंसान समाज पर अब तक की सबसे उम्दा टिप्पणी है। यह बात अलग है कि जब ये सामाजिक प्राणी असामान्य हरकत करने लग जाते हैं और अपनी सीमा को लांघ कर असामाजिक हो जाते हैं, तो वे केवल विनाश को जन्म देते हैं। फिर परिस्थितियां उस सभ्य समाज के अनुकूल नहीं रह जाती हैं जिनकी ठोस बुनियाद पर एक राष्ट्र खड़ा होता है।

एक न्यूरोविज्ञानी के बतौर देश के सामाजिक ताने-बाने में आए हालिया उथल-पुथल को विश्लेषित करते हुए मैंने आसपास के माहौल और घटनाक्रम का अर्थ तलाशने की कोशिश की। उसके लिए मैंने यह माना कि हमारा मस्तिष्क एक जंगल की तरह है जो पूरी तरह जीवन से युक्त है और वहां विकास व क्षरण की प्रकियाएं समानांतर चलती हैं। जाहिर है, इस जंगल में हरे-भरे इलाके हैं और सूखे हुए भी, लिहाजा इसी दिमाग के भीतर जानवर, भूत-प्रेम, शैतान, साधु और संत सबका बराबर वास है।

फिर जो अगला सवाल इस विचार प्रक्रिया में खड़ा होता है वो यह है कि इस जंगल पर किसका राज है। क्या वह शेर है, जो अपने साहस, संकल्प और वर्चस्व से बाकी निवासियों पर राज करता है? या फिर बंदर, जो एक शाखा से दूसरी शाखा तक उछलते हुए केवल आत्मप्रदर्शन करता है लेकिन वास्तव में वह किसी राजकाज की प्रक्रिया से दूर रहता है और समाज पर जिसका अनचाहा असर भी होता है।

कार्ल सेगन ने पुलित्जर पुरस्कार प्राप्त अपनी पुस्तक दि ड्रैगन्स ऑफ ईडेन में बहुत खूबसूरती के साथ रीढ़युक्त मस्तिष्क के विकासक्रम और उसके व्यवहार को समझाया है, जिसे प्रख्यात अमरीकी चिकित्सक और स्यानुविज्ञानी पॉल डी. मैक्लीन ने प्रतिपादित किया था। मैक्लीन ने 1973 में इंसानी मस्तिष्क के रहस्यों

के अन्वेषण की एक खूबसूरत अवधारणा पेश की थी।

उनके मॉडल के हिसाब से आज के मनुष्य के मस्तिष्क का विकास जातिवृत्तीय ढंग से हुआ है तो तीन विशिष्ट और भिन्न बायो कप्यूटरों में बंट गया है। हर एक की अपनी जेनेटिक प्रोग्रामिंग है। ये तीन हिस्से हैं रेप्टीलियन ग्रंथि (हाथ-पैर) और नियोमैमेलियन ग्रंथि (नियोकॉर्टेक्स)। प्रत्येक संरचना मानव मस्तिष्क के विकासक्रम में समय के साथ एक के बाद एक जुड़ती चली गई है।

रेप्टीलियन ग्रंथि या आर-कॉम्पलेक्स या रेप्टीलियन मस्तिष्क भौतिक अवस्था को कायम रखने के लिए जिम्मेदार है। इसका लेना-देना अपने अस्तित्व को बनाए रखने में काम आने वाले स्वस्फूर्त व्यवहार या प्रतिक्रिया से है। आक्रामक व्यवहार, पलटवार, प्रजनन, वर्चस्व, अपने इलाके की पहरेदारी और कर्मकांडीय कृत्य इसमें आते हैं जिनका संबंध अस्तित्व को बचाए रखने वाली विचार प्रक्रिया के साथ है।

पेलियोमैमेलियन ग्रंथि दिमाग का भावनात्मक हिस्सा है। यह सामाजिक मेधा का केंद्र है। प्रेम, नफरत, भय, सुख, यौन संतुष्टि, कुढ़न और सामाजिक लगाव जैसे भाव यहां से पैदा होते हैं। किसी व्यक्ति के संपर्क में आने या परिस्थिति से टकराने पर हमारे भीतर से जो विविध अहसास पैदा होते हैं, यह हिस्सा उसके लिए जिम्मेदार है।

नियोमैमेलियन ग्रंथि सेरीब्रल नियोकॉर्टेक्स का प्रतिनिधित्व करती है। यह संरचना केवल स्तनपायी जीवों में पाई जाती है और इसका लेना-देना बौद्धिकता व आध्यात्मिकता से होता है। नियोमैमेलियन ग्रंथि सबसे विकसित, सबसे बड़ी और सबसे घनी होती है। मनुष्य जाति ने इसका सबसे कम इस्तेमाल किया है।

दरअसल यहीं असल खेल है। नियोमैमेलियन ग्रंथि की मौजदूगी ही मनुष्य के दिमाग को पशु के दिमाग से अलग करती है। जो लोग आरंभ की दो ग्रंथियों से पूरी तरह संचालित होते हैं वे न केवल अपना कष्ट बढ़ाते है बल्कि समाज और देश के लिए भी अपराधी, बलात्कारी, मानसिक रूप से भ्रष्ट आतंकवादी बन जाते हैं। अगर आप देख रहे हैं कि समाज में पशुवत् प्रवृत्तियां बढ़ती जा रही हैं, तो इसका मतलब यह है कि आप समाज के उन शेरों को देख रहे हैं जिन्हें बदरों ने हाशिये पर धकेल दिया है। ये लोग अंततः देश को बरबाद कर के छोड़ेंगे, जैसे दिमाग के जंगल का धीरे-

धीरे क्षरण हो जाता है। यह रास्ता अंत में अलजाइमर रोग की ओर ले जाता है।

मनोवैज्ञानिक और स्यायुविज्ञानी इस परिघटना की व्याख्या ही कर सकते हैं, इससे ज्यादा कुछ नहीं। हमें आज महात्मा गांधी जैसी एक शख्सियत की जरूरत है जो दुनिया की सबसे बड़ी अहिंसक ताकत यानी इंसानी दिमाग को खोलकर सक्रिय कर सके, उसकी क्षमताओं को दोबार तलाश सके तथा अपने लिए, समाज के लिए और देश के लिए संभावनाओं के हरे-भरे क्षितिज विकसित कर सके।

श्रमण निर्वाण हेतु बनते हैं, न कि निर्माण हेतु!

''निर्वाण या निर्माण''

-डॉ बिमला जैन, फिरोजाबाद

(चालः कुण्डलिया (छन्द)

महामुनीश्वर ध्येय है, मात्र एक 'निर्वाण'।
पर निर्ग्रन्थ स्वरूप में, प्रेरक है निर्माण।

प्रेरक हैं निर्माण, वही मुनिराज श्रेष्ठ है,
ऊँचे-ऊँचे शिखर, बनाते भवन ज्येष्ठ है।
हो विशाल भूखण्ड, योजना बहुत बड़ी है,
बने विश्व में एक, गगन स्पर्श खड़ी है।।

तनपर 'धागा' तक नहीं, नग्न दिगम्बर रुप,
अति ही अल्प आहार है, उपवासी व्रति भूप।

उपवासी व्रति भूप, छहोरस त्याग दिये हैं,
अन्न आजीवन त्याग, मात्र कुछ पेय लिये हैं।
ज्ञान-ध्यान लवलीन, तपस्वी बहुत बड़े है,
स्व-पर के कल्याण, सिद्धियाँ लिये खड़े है।।

पर गुरु देव संकल्प है, लिया एक ही लक्ष्य,
मठ-मन्दिर निर्माण से जीवन करना धन्य।।

जीवन करना धन्य, भव्य निर्माण कराना,
अब तक हुआ न होय, विश्व आश्चर्य दिखाना।

अति उतंग बने मूर्ति, देखने जग-जग आना,
शतक हुआ प्राचीन, सहस काउन्ट कराना।।
वही बड़ा आचार्य हैं वही श्रेष्ठ विद्वान,
वही बड़ा आदर्श है अनुपम देवस्थान।।
अनुपम देवस्थान, योजना अन्य संग है,
गिरि, आलय, दय, धाम, संग में नाम अमर है।
'ध्येय' बना निर्माण, लक्ष्य निर्वाण नहीं है,
श्रेय न, श्रावक-श्रमण, 'विमल' निर्माण रथी है।

अलग-अलग प्रोजेक्ट के लिए 5 साल में काटे गए एक करोड़ पेड़

आने वाले समय में करीब 3.5 लाख पेड़ और काटे जाएंगे

हाल ही में मुंबई में मेट्रो प्रोजेक्ट के लिए आरे के जंगल काटे जाने का मामला सुप्रीम कोर्ट तक पहुंचा। देश में अलग-अलग प्रोजेक्ट्स और योजनाओं के लिए पिछले 5 वर्षों में एक करोड़ से अधिक पेड़ काटे जा चुके हैं। अभी 3.5 लाख से अधिक पेड़ और काटे जाने हैं। सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च की मंजू मेमन और पर्यावरणविद् मीनाक्षी नाथ ने यह जानकारी फॉरेस्ट एडवाइजरी कमेटी के विभिन्न मिनट्स, आरटीआई और विभिन्न अध्ययन से जुटाई है। वहीं जुलाई 2019 में सरकार ने लोकसभा में भी माना कि पिछले पांच साल में एक करोड़ नौ लाख पेड़ काटे गए हैं।

किस प्रोजेक्ट के लिए कितने पेड़ काटे

प्रोजेक्ट	पेड़ काटे गए
दिल्ली मेरठ एक्सप्रेसवे	22,027
पूर्वांचल एक्सप्रेसवे	36,574
दिल्ली-बडोदरा-मुंबई एक्सप्रेसवे	30,786
नॉदर्न पेरिफेरल एक्सप्रेसवे	13,960
चेन्नई पोर्ट	4,797

मुंबई-नागपुर सुपर कम्यु. एक्सप्रेसवे	**2,50,000**
उत्तर भारत हाइवे का विस्तारीकरण	**3,500**

सोर्स-फोरेस्ट्रस एडवाइजरी के मिनट्स, आरटीआई, अन्य सरकारी दास्तावेज से लिए गए हैं। (ये सरकार द्वारा बताए 1 करोड़ 9 लाख पेड़ों के अलावा है)

भारतीय वन सर्वेक्षण विभाग के अनुसार देश के जंगलों में 1, 365 करोड़ 84 लाख 54 हजार और जंगलों के बाहर 583 करोड़ 37 लाख 51 हजार पेड़ हैं। यानी कुल 2,048 करोड़ पेड़। दिल्ली ट्रीज एसओएस कैंपेन और माइ राइट टू ब्रीद जैसे अभियानों से जुड़ी पर्यावरणविद् मीनाक्षी नाथ बताती हैं कि अब तक विभिन्न प्रोजेक्ट्स में 3 लाख 61 हजार 644 पेड़ काटे (एक करोड़ नौ लाख के अलावा) जा चुके हैं। वही भारत माला परियोजना और राज्य सरकारों द्वारा हाइवे के विस्तार जैसी योजनाओं में 3.5 लाख से अधिक पेड़ और काटे जाएंगे। वे दावा करती हैं कि महाराष्ट्र के महत्वाकांक्षी मुंबई-नागपुर एक्सप्रेसवे के लिए ही करीब 11 लाख पेड़ काटे जाने वाले हैं। हालांकि महाराष्ट्र में मुंबई से नागपुर तक बन रहे समृद्धि एक्सप्रेसवे के उपाध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक राधेश्याम मोपलवार बताते हैं कि हमने वन व पर्यावरण विभाग की मंजूरी के बाद ढ़ाई लाख पेड़ काटे हैं। मोपलावर कहते हैं कि इसके बदले हम साढ़े तीन गुना अधिक यानी 8 लाख 65 हजार पेड़ लगाने वाले हैं।

'हमें धैर्य दो ईश्वर, लेकिन ज़रा जल्दी करना'...मौजूदा पीढ़ी के लिए यही प्रार्थना उचित लगती है **क्योंकि इन्हें तो वरदान प्राप्त करने में भी धैर्य नहीं चाहिए। क्या कारण है इसका?**

बेसब्र क्यों है दुनिया?

आमुख डॉ.अबरार मुल्तानी

यूमास एमहार्स्ट के कम्यूटर साइंस के प्रोफेसर रमेश सीतारमण ने एक अध्ययन में पाया कि टेक्नोलॉजी के मामले में हमारा धैर्य बस 2 सेकंड बाद ही जवाब दे जाता है। अगर 2 सेकंड के भीतर कोई ऑनलाइन वीडियो लोड नहीं होता है तो हम लोग बेवसाइट छोड़ने लगते हैं।

1. तुरंत चाहिए प्रतिक्रिया

हम टेक्नोलॉजी के युग में जी रहे हैं जहां तक़रीबन हर काम की गति द्रुत हो चुकी है। आज 'कोई इंतज़ार नहीं, कोई कतार नहीं' वाली पॉलिसी पर चलने वाली कई कम्पनियां अपने ग्राहकों को लुभा रही हैं। हम कम्प्यूटर या मोबाइल को कोई भी काम देते हैं और वह तुरंत पूरा कर देता है। हम तुरंत किसी को मेल भेज सकते हैं, वॉट्सएप कर सकते हैं या सोशल मीडिया पर कोई पोस्ट कर सकते हैं और उसकी तुरंत प्रतिक्रिया या जवाब आने लगते हैं तो हमारे अवचेतन में यह बात घर कर जाती है कि हर चीज़ तुरंत होना चाहिए।

हम कोई लक्ष्य बनाते हैं (और देखिए तो लक्ष्य भी ऐसे बनाते हैं) जो कुछ दिन में पूरे होने चाहिए। बहुत लम्बे लक्ष्य बनाना अब हम लोगों ने छोड़ दिए हैं। जीवन बीमा एजेंट को अब ऐसे ग्राहक कम मिलते हैं जो उनसे 25 या 30 साल की पॉलिसी लें। अब लोग ज़्यादा से ज़्यादा 10 साल की पॉलिसी लेना चाहते हैं उसमें भी बहुत से 5 साल की पॉलिसी लेने के लिए ज़ोर देते हैं। निवेश के मामले में भी वह बहुत कम समय में ज़्यादा रिटर्न पाना चाहते हैं।

2. प्रेरणाएं भी धनी-मानी

लोगों को वह कहानियां बहुत भाती हैं जिसमें कोई व्यक्ति रातों-रात प्रसिद्ध हो गया हो। कुछ ही दिनों में एक आइडिया से विश्व के धनी व्यक्तियों में शामिल हो गया हो।

हम उन नायकों को अपना आदर्श नहीं बनाते जिन्होंने अपनी सफलता धीरे या धैर्यपूर्वक पाई हो, जिन्होंने कोई जल्दबाजी नहीं दिखाई, कोई शॉटकट नहीं अपनाया। हम प्रसिद्ध और सफल लोगों की सफलता के पीछे का धैर्य भी देखना नहीं चाहते।

हम उनकी कहानियों में बस वह चीज़ पढ़ना या सुनना चाहते हैं कि आख़िर वह क्या बात थी जिसने उन्हें तुरंत सफल बना दिया चाहे वह अमेज़न की कहानी हो, माइक्रोसॉफ्ट की या बार्बी डॉल की। हम बस उनके अच्छे दिन शुरू होने के ही दास्तानें पढ़ना पसंद करते हैं। उसके पीछे छिपी मेहनत और धैर्य को पढ़ना या समझना नहीं चाहते। क्यों? क्योंकि हम जल्दी में है और पूरी दुनिया ही बेसब्र है।

3. सहायक बेसब्र, सफल एडिसन हैं

बल्ब, मोशन पिक्चर जैसी महान खोज जिन्होंने की हैं यानी थॉमस एडिसन, उन्होंने अपनी जीवनी में लिखा है कि एक युवा सहायक ने एक बार एक प्रयोग के विफल होने पर कहा-'कितनी शर्म की बात है कि कई हफ्तों तक काम करने के बावजूद हमें कोई भी परिणाम प्राप्त नहीं हुआ।' इस पर एडिसन ने जो जबाव दिया था वह हम सबको याद कर लेना चाहिए-'परिणाम! कोई परिणाम नहीं? देखो भले आदमी मुझे बहुत सारे परिणाम मिले हैं। मुझे हज़ारों बातों का पता चल चुका है जो कारगर नहीं निकली।' हम एडिसन के सहायक से कई गुना अधिक अधीर और बेचैन हैं जबकि सफलताएं एडिसन जैसों को ही मिला करती हैं।

4. चंद दिनों के दावे

15 दिन में भाषा, एक महीने में कला सीखकर पारंगत होने के दावे आज आम हैं। ऐसे कई मरीज़ है, जो अपनी जटिल बीमारियों को कुछ ही दिन में ठीक करने के लिए अधीर होते हैं। 10 या 15 दिन में वज़न कम करना सबसे सामान्य है। जो बढ़ा सालों में है, वह चंद दिनों में किसी भी वस्तु के इस्तेमाल से कम नहीं हो सकता।

5. क्यों है हम ब्रसेब्र

हम ऐसे युग में है जहां हम अपनी योग्यताओं का अति उच्च आकलन कर रहे हैं। हम आत्ममुग्धता की पराकाष्ठा पर विराजमान हैं। हम सोचते हैं कि हम सबसे अलग हैं और परिणामों को तुरंत प्राप्त करने से हमें कोई नहीं रोक सकता, कोई भी नहीं। यह सोच हमें शॉर्टकट अपनाने के लिए प्रेरित करती है और धैर्य को क्रूरता से ठुकरा देती है। नतीजा, हम बेहद नाखुश हैं, पर उम्मीद भी नहीं और तुरंत नतीजे पाने के लिए हर क़ीमत चुकाने को तैयार। यह स्थिति ख़तरनाक कही जा सकती है।

नुक़सान क्या हैं?

इन नुक़सानों को असफलता की कुंजी कहा जा सकता है। ज़रा देखिए, अधीरता क्या कहर ढाती है-

1. शॉर्टकट अपनाने से रास्ता छोटा हो जाता है, बहुत सारे समझौते करने पड़ते है और अक्सर ही असफल होने पर कुंठा और बढ़ती जाती है, जो

बेसब्री को और बढ़ा देती है।

2. जो ताक़त किसी काम को व्यवस्थित ढंग से करने के काम आ सकती थी, वो व्यर्थ हो जाती है।

3. बेसब्री रिश्तों को बिगाड़ देती है। लोग बेसब्रों से दूर रहना पसंद करते हैं क्योंकि अमूमन ऐसे लोग नकारात्मक रुख़ रखते हैं।

4. बेसब्र लोग अगर कभी कामयाबी पा भी लें, तो उन्हें उसका आनंद लेना नहीं आता। वे अपने अधीरता में उसे भी खो देते हैं।

5. अधीर लोग मानसिक रूप से उद्वेलित रहते हैं। उनमें व्यग्रता, तनाव आदि हमेशा बना रहता है।

6. बेसब्री के शरीर पर बड़े बुरे असर होते हैं। रक्तचाप और वज़न बढ़ सकता है, साथ ही हृदय रोग व मधुमेह का भी ख़तरा रहता है। स्ट्रेस हॉर्मोन बढ़ने से शरीर पर दोगुने दुष्प्रभाव पड़ते हैं।

कैसे रखें धैर्य?

यह कौशल है, जिसे सीखा जा सकता है। थोड़े अभ्यास की ज़रूरत है।

1 हफ्ते में किसी एक दिन को तय करें और इस दिन हर काम को धीरे-धीरे पूरा नतीजा पाते हुए पूरा करें।

2. ठेर सारे काम एक साथ करने के बजाय एक-एक करके कामों को पूरा करें।

3. बोलने से पहले सोचने या थोड़ा रुककर जवाब देने की आदत डालें।

4. अगर ख़ुद के लिए कोई वस्तु ख़रीदने का सोचा है, तो उसे थोड़े दिन टालें। धीरज रखने की कला सीखें।

5. तुरंत हर पोस्ट को लाइक करने की बजाय दिन में एक-दो की गिनती तक सीमित रखें।

6. कहानियां पढ़ें और सुनें। इससे धीरज धरने में मदद मिलेगी।

जैन धर्म सम्बन्धी वर्तमान की समस्याएँ व समाधान! यह कविता ''दिशाबोध अप्रैल 2019'' से भी प्रेरित है।

पराश्रित बाह्य प्रभावना परे आत्म साधना करूँ!

आगम विरुद्ध, निन्दाकारक, धन व धन आश्रित; आत्म साधना बाधक;
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व हेतु बाह्य प्रभावना न करूँ!
(चालः-मन रे! तू काहे न धीर धरे...)

-आचार्य कनकनन्दी

कनक! (आत्मन्!) तू आत्मसाधना करो!...
इस हेतु त्यागो पूजा लाभ...समता शान्ति निस्पृहता धरो...(ध्रुव)...
अनादिकाल से अनन्त भव में...किया तूने अनन्त अनात्म काम...
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व...भोगोपभोग व राग द्वेष मोह...
संक्लेश द्वन्द्व से ले विद्रोह ऽऽऽ कनक...(1)...
इस हेतु ही किया धर्म से ले व्यापार...राजनीति शिल्प से ले सेवादि...
अन्याय अत्याचार भ्रष्टाचार दुराचार...आक्रमण युद्ध से ले हत्यादि...
बाह्य दिखावा ढोंग पाखण्डादि ऽऽऽ कनक...(2)...
किन्तु न किया आत्मोपलब्धि एक बार भी...यह एक काम ही तू अभी करो...
भले इस जन्म में न पूर्ण होगी आत्मोपलब्धि...तथापि इस हेतु ही साधना करो...
अन्य सभी संकल्प विकल्प त्यजो ऽऽऽ कनक...(3)...
यथायोग्य सुद्रव्य क्षेत्र कालानुसार...ध्यान अध्ययन तप त्याग करो...
धन जन आदि पराश्रित प्रभावना त्यागो...स्व आश्रित प्रकृष्ट भावना करो...
रत्नत्रय तेज से प्रभावना करो ऽऽऽ कनक...(4)...
बाह्य प्रभावना हेतु संक्लेश न करो...इस हेतु धन जन आश्रित न बनो...
पण्डाल मञ्च माईक होर्डिंग पत्रिका...विज्ञापन, टी.वी प्रसारण, निमंत्रण...
त्याग करो गाजा बाजा व भोजन ऽऽऽ कनक...(5)...
उक्त कामों से तेरी साधना न होगी...न बढ़ेगी समता शान्ति निस्पृहता...
एकान्त मौन ध्यान अध्ययन चिन्तन...शोध बोध लेखन से ले प्रवचन...
न बढ़ेगी आत्मविशुद्धि से आत्मोन्नति ऽऽऽ कनक...(6)...
गृहस्थ से ले पण्डित व पत्रकार भी...करेंगे तेरी निन्दा से ले बहिष्कार...
स्वार्थ साधने वाले मोही स्वार्थी भी...करेंगे पीछे से निन्दा अनादर...

तेरे हैं बहुत अनुभव व प्रमाण ऽऽऽ कनक...(7)...
आगम में भी निषिद्ध ये सभी काम...अंतः निर्माण हेतु त्यज बाह्य निर्माण...
तीर्थंकर चक्री भी जब बनते श्रमण...उक्त अनात्म काम परे करते आत्म कल्याण...
उत्तम स्वात्म चिन्ता करो तू आत्मन् ऽऽऽ कनक...(8)...

दिशाबोधः सितंबर-2019

भारतीय लोग होब्स विचारधारा वाले है (सिर्फ अनियंत्रित असभ्य स्वार्थ की संस्कृति वाले)

-ब्रायन, न्यूजीलैण्ड

(दुनिया के भ्रष्टाचार मुक्त देशों में शीर्ष पर गिने जाने वाले न्यूजीलैंण्ड के एक लेखक ब्रायन ने भारत में व्यापक रूप से फैलें भ्रष्टाचार पर एक लेख लिखा है। यह लेख सोशल मीडिया पर काफी वायरल हो रहा है। लेख की लोकप्रियता और प्रभाव को देखते हुए विनोद कुमार जी ने इसे हिन्दी भाषीय पाठकों के लिए अनुवादित किया है। लेखक से पूर्ण रूप से सहमत न होते हुए भी तथ्य विचारणीय एवं चिंतनीय है।) -सम्पादक

भारत में भ्रष्टाचार का एक कल्चरल पहलू है। भारतीय भ्रष्टाचार में बिलकुल असहज नहीं होते, भ्रष्टाचार यहाँ बेहद व्यापक है। भारतीय भ्रष्ट व्यक्ति का विरोध करने के बजाय उसे सहन करते है। कोई भी नस्ल इतनी जन्मजात भ्रष्ट नहीं होती। ये जानने के लिये कि भारतीय इतने भ्रष्ट क्यों होते हैं उनकी जीवन पद्धति और परामपरायें देखिये। भारत में धर्म लेनदेन वाले व्यवसाय जैसा है। भारतीय लोग भगवान को भी पैसा देते हैं इस उम्मीद में कि वो बदले में दूसरे की तुलना में इन्हें वरीयता देकर फल देंगे। ये तर्क इस बात को दिमाग में बिठाते हैं कि अयोग्य लोग को इच्छित चीज पाने के लिये कुछ देना पड़ता है। मंदिर चारदीवारी के बाहर हम इसी लेनदन को भ्रष्टाचार कहते हैं। धनी भारतयी कैश के बजाय स्वर्ण और अन्य आभूषण आदि देता है। वो अपने गिफ्ट गरीब को नहीं देता, भगवान को देता है। वो सोचता है किसी जरूरतमंद को देने से धन बरबाद होता है। जून 2009 में द हिंदू ने कर्नाटक मंत्री जी जनार्दन रेड्डी द्वारा स्वर्ण और हीरों के 45 करोड़ मूल्य के आभूषण

तिरुपति को चढ़ाने की खबर छापी थी। भारत के मंदिर इतना ज्यादा धन प्राप्त कर लेते हैं कि वो ये भी नहीं जानते कि इसका करे क्या। अरबो की सम्पत्ति मंदिरों में व्यर्थ पड़ी है। **जब यूरोपियन इंडिया आये तो उन्होंने यहाँ स्कूल बनवाये। जब भारतीय यूरोप और अमेरिका जाते हैं तो वो वहां मंदिर बनाते हैं।**

भारतीयों को लगता है कि अगर भगवान कुछ देने के लिये धन चाहते हैं तो फिर वही काम करने में कुछ गलत नहीं है। इसीलिये भारतीय इतनी आसानी से भ्रष्ट बन जाते हैं। भारतीय कल्चर इसीलिये इस तरह के व्यवहार को आसानी से आत्मसात कर लेती है, क्योंकि-

1. नैतिक तौर पर इसमें कोई नैतिक दाग नहीं आता। एक अति भ्रष्ट नेता जयललिता दुबारा सत्ता में आ जाती है, जो आप पश्चिमी देशों में सोच भी नहीं सकते।

2. भारतीयों की भ्रष्टाचार के प्रति संशयात्मक स्थिति इतिहास में स्पष्ट है। भारतीय इतिहास बताता है कि कई शहर और राजधानियों को रक्षकों को गेट खोलने के लिये और कमांडरो को सरेंडर करने के लिये घूस लेकर जीता गया। ये सिर्फ भारत में है। भारतीयों के भ्रष्ट चरित्र का परिणाम है कि भारतीय उपमहाद्वीप में बेहद सीमित युद्ध हुये। ये चकित करने वाला है कि भारतीयों ने प्राचीन यूनान और माडर्न यूरोप की तुलना में कितने कम युद्ध लड़े। नादिरशाह का तुर्कों से युद्ध तो बेहद तीव्र और अंतिम सांस तक लड़ा गया था। भारत में तो युद्ध की जरूरत ही नहीं थी, घूस देना ही सेना को रास्ते से हटाने के लिये काफी था। कोई भी आक्रमणकारी जो पैसे खर्च करना चाहे भारतीय राजा को, चाहे उसके सेना में लाखों सैनिक हो, हटा सकता था। प्लासी के युद्ध में भी भारतीय सैनिकों ने मुश्किल से कोई मुकाबला किया। क्लाइव ने मीर जाफर को पैसे दिये और पूरी बंगाल सेना 300 में सिमट गई। भारतीय किलो को जीतने में हमेशा पैसों के लेनदेन का प्रयोग हुआ। गोलकुंडा का किला 1687 में पीछे का गुप्त द्वार खुलवाकर जीता गया। मुगलों ने मराठों और राजपूतों को मूलतः रिश्वत से जीता। श्रीनगर के राजा ने दारा के पुत्र सुलेमान को औरंगजेब को पैसे के बदले सौंप दिया। ऐसे कई केसेज हैं जहाँ भारतीयों ने सिर्फ रिश्वत के लिये बड़े पैमाने पर गद्दारी की।

सवाल है कि भारतीयों में सौदेबाजी का ऐसा कल्चर क्यों है जबकि जहाँ

तमाम सभ्य देशों में ये सौदेबाजी का कल्चर नहीं है।

3. भारतीय इस सिद्धांत में विश्वास नहीं करते कि यदि वो सब नैतिक रूप से व्यवहार करेंगे तो सभी तरक्की करेंगे क्योंकि उनका 'विश्वास/धर्म' ये शिक्षा नहीं देता। उनका कास्ट सिस्टम उन्हें बांटता है। वो ये हरगिज नहीं मानते कि हर इंसान समान है। इसकी वजह से वो आपस में बंटे और दूसरे धर्मों में भी गये। कई हिंदुओं ने अपना अलग धर्म चलाया जैसे सिख, जैन, बुद्ध और कई लोग ईसाइ और इस्लाम अपनाये। परिणामतः भारतीय एक दूसरे पर विश्वास नहीं करते। भारत में कोई भारतीय नहीं है, वो हिंदू ईसाई मुस्लिम आदि हैं। भारतीय भूल चुके हैं कि 1400 साल पहले वो एक ही धर्म के थे। इस बंटवारे ने एक बीमार कल्चर को जन्म दिया। ये असमानता एक भ्रष्ट समाज मे परिणित हुई, जिसमें हर भारतीय दूसरे भारतीय के विरुद्ध है, सिवाय भगवान् के जो उनके विश्वास में खुद रिश्वतखोर है।

दिशाबोधः सिंतबर-2019

स्वतंत्र बनने हेतु मेरा पुरुषार्थ

(स्वतंत्रता का व्यापक स्वरूप)

(मोक्ष ही परमस्वतंत्रता, स्वाधीनता, अन्त्योदय से सर्वोदय)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः1.मन रे..../2.सायोनारा....)

आत्मन्/(कनक) तू स्वतंत्र बनो ऽऽऽ
इस हेतु ही करो आत्मसाधना...शुद्ध-बुद्ध-आनन्द बनो ऽऽऽ (ध्रुव)
स्वंतत्रता-स्वाधीनता-स्वानुशासन, आत्मानुशासन, मुक्ति या मोक्ष ऽऽऽ
परिनिर्वाण, परमशुद्धावस्था, सत्य-शिव-सुन्दर परमआत्मदशा ऽऽऽ
ये मेरी स्वतंत्रता की दशा ऽऽऽ (1)

केवल राजनैतिक स्वतंत्रता ही नहीं मोक्ष, केवल क्रीतदास ही नहीं बन्धन ऽऽऽ
राजा महाराजाचक्रीतानाशाही न मुक्त, बन्धुआ मजदुर गुलाम ही नहीं बन्धक ऽऽऽ
इससे परे भी बन्धन व मोक्ष ऽऽऽ (2)

शान्तिकुन्थुअरहनाथ ये तीन पदधारी, तथापि पूर्ण स्वतंत्र हेतु बने संन्यासी ऽऽऽ

संन्यासी बनकर आत्मसाधना के बलपर, समस्त कर्मबन्ध क्षय से बने मुक्त ऽऽऽ
शुद्ध-बुद्ध आनन्द स्वतंत्र ऽऽऽ (3)
ऐसी ही तेरी स्वतंत्र दशा हेतु, क्षय करना तुझे द्रव्यभावनोकर्म ऽऽऽ
इस हेतु करो आत्मसाधना रूपी पुरुषार्थ, जिससे क्षय हो संकल्पविकल्पसंक्लेश।।
अपेक्ष उपेक्षा प्रतीक्षा का करो सम्पूर्ण नाश ऽऽऽ (4)
पर परिणति-पराश्रित-विभावभाव, ख्यातिपूजालाभप्रसिद्धि वर्चस्व ऽऽऽ
अहंकार ममकार दीन हीन दुर्भाव, प्रशंसा निन्दा से प्रभावित कुभाव/(बन्धन) ऽऽऽ
इनके नाश से बनो स्वतंत्र स्वाधीन ऽऽऽ/
पर प्रतिस्पर्द्धा अन्धानुकरण से बनो स्वतंत्र (विमुक्त) ऽऽऽ (5)
स्वशुद्धस्वभाव ही तेरा आत्मानुशासन, स्वअनुशासन अतिरिक्त समस्त/(अन्य) शून्य ऽऽऽ
यह ही स्वतंत्ररूपी परमस्वतंत्रता, स्वअधीनता परे सभी है शून्य ऽऽऽ
स्वनिर्माण अतिरिक्त सभी/(भौतिक) निर्माण शून्य ऽऽऽ (6)
परप्रभाव से शून्य स्वप्रभावपूर्ण, आत्मवैभव अतिरिक्त बाह्यवैभव शून्य ऽऽऽ
आत्मसुख बिन समस्तसुख विहीन, आत्मसाम्राज्य बिन अन्य साम्राज्य शून्य ऽऽऽ
अक्षयअनन्तचैतन्यशक्ति सम्पन्न ऽऽऽ
/ अन्त्योदय से ले सर्वोदय से पूर्ण ऽऽऽ (7)
यह ही तेरी परम स्वतंत्र-स्वाधीनदशा, अन्य सभी तेरी पराधीन की दशा ऽऽऽ
यह तेरा भेदविज्ञान स्वरूप लक्ष्य, इसमें ही केन्द्रित करो सभी पुरुषार्थ ऽऽऽ
सम्पूर्ण निमित्त उपादान सहित ऽऽऽ
/आत्मविश्वास से स्वतंत्रता प्रारंभ ऽऽऽ (8)
अभी भी यथायोग्य तू स्वतंत्र-स्वाधीन, तदनुकूल मिल रहे आनन्द ज्ञान ऽऽऽ
निर्विकल्प निरालम्ब निर्द्वन्द निष्काम, एकान्त ध्यान अध्ययन चिन्तन मौन ऽऽऽ
इसे बढ़ाता जाना चरमस्थान तक ऽऽऽ
/इससे ही प्राप्त करना परम स्वाधीन ऽऽऽ (9)
सिद्ध-भगवान् ही होते परम-स्वतंत्र, इस हेतु ही करो परमपुरुषार्थ ऽऽऽ
समस्त अन्तरंग बहिरंग बन्धन परे, दबाव प्रलोभन भय से परे ऽऽऽ
स्वयं में ही स्वयं द्वारा स्वयं पूरे ऽऽऽ

/अभिन्नषट्कारक चैतन्य पूरे ऽऽऽ (10)

नन्दौड़, दि-18/9/2019, रात्रि-9.04

(यह कविता क्षु. सुवीक्षमती के कारण बनी)

संदर्भ-

प्रकृति, स्थिति, अनुभव (अनुभाग) और प्रदेश के भेद से बंध चार प्रकार का है।

प्रकृति बंध-

प्रकृतिः स्वभाव इत्यनर्थान्तरम्। (4) राजवार्तिक

प्रकृति और स्वभाव ये एकार्थवाची शब्द हैं। जैसे-नीम की प्रकृति क्या है? नीम का स्वभाव तिक्तता है, गुड़ का स्वभाव या प्रकृति मधुर है अर्थात् नीम की प्रकृति कडुआपन है और गुड़ की प्रकृति मधुरता है, उसी प्रकार ज्ञानावरणीय की प्रकृति अथवा स्वभाव है अर्थ ज्ञान नहीं होने देना, अतः प्रकृति और स्वभाव एकार्थवाची हैं इसी प्रकार दर्शनावरण की प्रकृति (स्वभाव) है अर्थ का दर्शन नहीं करने देना। वेदनीय का स्वभाव है सुख-दुःख का संवेदन कराना, दर्शन मोहनीय की प्रकृति है तत्त्वार्थ श्रद्धान नहीं होने देना। चरित्र मोहनीय की प्रकृति है असंयम परिणाम। आयु का स्वभाव है भव धारण, नामकर्म की प्रकृति है नारक, तिर्यंच आदि का नाम व्यवहार कराना। गोत्र का स्वभाव है ऊँच-नीच का व्यवहार कराना तथा अंतराय कर्म का सवभाव है दानादि में विघ्न कराना। इस प्रकार के कार्य जिससे उत्पन्न होते हैं, जिससे किये जाते हैं, वह प्रकृति बंध है और अपादान साधन से निष्पन्न यह प्रकृति शब्द है।

स्थिति बंध-

तत्स्वभावाप्रच्युतिः स्थितिः। (5)

उस स्वभाव से च्युत नहीं होना स्थिति है अर्थात् उस स्वभाव की अप्रच्युति स्थिति कहलाती है। जैसे-बकरी, गाय, भैंसादि के दूध का अपने माधुर्य स्वभाव से च्युत नहीं होना स्थिति है। उसी प्रकार ज्ञानावरणीय आदि कर्म प्रकृति का अपने अर्थावगम आदि (अर्थों का ज्ञान नहीं हो, वेदना आदि) स्वभाव से च्युत नहीं होना स्थिति है।

अनुभाग बंध-

तद्रसविशेषोऽनुभवः। (6)

कर्मों के रस विशेष (फलदान शक्ति विशेष) को अनुभाग बंध कहते हैं। जैसे-बकरी, गाय और भैंस आदि के दूध में तीव्र मंद आदि भाव से रस विशेष होता है अर्थात् दूध सामान्य होते हुए भी उनमें स्निग्धता, मधुरता आदि में विशेषता होती है, उसी प्रकार कर्म पुद्गलों की स्वकीय फलदान शक्ति के सामर्थ्य विशेष को अनुभव/अनुभाग बंध कहते हैं।

प्रदेश बंध-

इयत्ताऽवधारण प्रदेशः। (7)

इयत्ता के अवधारणा को प्रदेश बंध कहते हैं अर्थात् कर्मरूप से परिणत पुद्गल स्कंधों के परमाणुओं की गणना को प्रदेशबंध कहते हैं।

तत्र योगनिमित्तौ प्रकृतिप्रदेशौ। (9)

उन बंध के विकल्पों में प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध योग के निमित्त से होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

स्थित्यनुभवौ कषायहेतुकौ। (10)

स्थिति बंध और अनुभाग बंध और कषाय के कारण होते हैं अर्थात् स्थिति बंध और अनुभाग बंध कषाय हेतुक हैं, ऐसा जानना चाहिए। इन कषायों के तारतम्य से स्थिति और अनुभाग में विचित्रता आती है, क्योंकि कारण के अनुरूप ही कार्य होता है।

बंध मोक्ष का संक्षेप स्वरूप

रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा।

एसो बंधसमासो जीवाणं जाण णिच्छयदो।। (179) प्र.सार

When the soul develops attachment, karma binds; when it is without attachment; it becomes free from karmas; know this to be in short the real description of the bondage of the soul.

(रत्तो) रागी जीव ही (कम्मं बंधदि) कर्मों को बाँधता है न कि वैराग्यवान

तथा (रागरहिदप्पा) राग रहित अर्थात् वैराग्य सहित आत्मा (कम्मेहिं-मुच्चदि) कर्मों से छूटता ही है, वह राग रहित अर्थात् वैरागी शुभ-अशुभ कर्मों से बंधता नहीं है। (जीवाणं एसो बंध समासो) यह जीव संबंधी प्रगट बंध तत्त्व का संक्षेप है (णिच्छयदो जाण) हे शिष्य! निश्चयनय से अभिप्राय से ऐसा जान। इस तरह राग परिणाम को ही बंध का कारण जान करके सर्व रागादि विकल्प जालों का त्याग करके विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावधारी निज आत्म तत्त्व में निरंतर भावना करनी योग्य है।

रागपरिणत जीव ही नवीन द्रव्यकर्म से बंधता है, वैराग्य परिणत नहीं। राग-परिणत जीव नवीन द्रव्यकर्म से मुक्त नहीं होता, वैराग्य परिणत ही मुक्त होता है। रागपरिणत जीव संस्पर्श करने (संबंध में आने) वाले नवीन द्रव्यकर्म से बंधता ही है और चिरसंचित पुराने द्रव्यकर्म से मुक्त नहीं होता। वैराग्य परिणत जीव संस्पर्श करने (संबंध में आने) वाले नवीन द्रव्यकर्म से बंधता नहीं है और चिरसंचित पुराने द्रव्यकर्म से मुक्त ही होता है। इससे निश्चित होता है कि द्रव्यबंध का साधकतम (उत्कृष्ट हेतु) होने से राग परिणाम ही निश्चय से बंध है।

समीक्षा-आचार्यश्री ने इस गाथा में बंध एवं मोक्ष के संक्षिप्त एवं सारगर्भित कारण को बतलाया है। आसक्ति युक्त जीव बंध को प्राप्त करता है और निरासक्ति युक्त जीव मोक्ष को प्राप्त करता है। केवल चारित्र मोहजनित राग ही बंध के लिए कारण नहीं है परन्तु समस्त वैभाविक भाव बंध के लिए कारण है। तथापि राग कर्म को बाँधता है ऐसा जो आध्यात्मिक शास्त्र में वर्णन पाया जाता है, उसका कारण यह है कि साम्परायिक आस्रव के लिए जो कारण हैं उसमें राग बंध में अन्तिम कारण हैं। सूक्ष्म साम्पराय (10 वे गुणस्थान) के अन्तिम समय तक सूक्ष्म लोभ कषाय के कारण बंध होता है और लोभ राग है इसलिये अंतदीपक की अपेक्षा राग को बंध के लिए कारण कहा गया है परन्तु इसके पहले-पहले के प्रत्यय है मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद तथा संज्वलन, क्रोध, मान, माया कषाय भी कर्मबंध के लिए कारण है। इसलिये राग कहने से पहले-पहले के समस्त कारण उसमें गर्भित हो जाते हैं। जीव रागरहित 10 वें गुणस्थान के अंत में हो जाते हैं। उसके बाद भी योग के कारण आस्रव एवं बंध होता है तथापि वह आस्रव एवं बंध संसार के लिये कारण नहीं है। इसलिये कहा गया है कि वीतरागी जीव कर्म से छूट जाता है तथापि सूक्ष्मदृष्टि से

देखने पर वीतरागी छद्मस्थ, (11वें गुणस्थान), क्षीणकषाय (12वें गुणस्थान) वीतराग सर्वज्ञ (13वें गुणस्थान) वाला जीव भी यथा-योग्य आस्रव एवं बंध को करता है परन्तु यह बंध अनन्त संसार का कारण नहीं है इसलिये इसको बंधरूप में स्वीकार नहीं किया। राग को बंध के लिये कारण इसलिये कहा है कि जहाँ राग होगा वहाँ द्वेष अवश्य ही होगा, क्योंकि द्वेष का 9वें गुणस्थान के अन्त में अभाव हो जाता है और 10वें गुणस्थान में लोभ (राग) का अभाव होता है। यह भी कारण है कि राग के कारण ही द्वेष उत्पन्न होता है। यदि किसी वस्तु के प्रति राग नहीं है तो द्वेष भी उत्पन्न नहीं होगा। इसलिये जहाँ राग है वहाँ द्वेष होगा और रागद्वेष दोनों मिलकर के कर्मबन्ध के लिए कारण बनते हैं।

यत्र रागः पदं धत्ते द्वेषस्तत्रास्ति निश्चयः।
उभावेतौ समालम्बविक्रमत्यधिकं मनः।। (25) ज्ञाना.

जहाँ राग अपने पैर को रखता है वहाँ द्वेष भी निश्चय से विद्यमान रहता है। राग और द्वेष मिलकर के मन को अधिक विक्रम बलशाली बना देते हैं जिससे कर्म बंध होता है।

रागद्वेष द्वयी-दीर्घनेत्राकर्षणकर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ।। (11) इष्टो.

जैसे जमे हुए दही के मटके में रई (मथानी) को डालकर रस्सी से उस मथानी को बाँधा जाता है, फिर उस रस्सी को कभी दाँये हाथ से खींचकर और फिर कभी बाँये हाथ से खींचकर दही में उस मथानी को घुमाया जाता है। इसी तरह राग-द्वेष रूपी दो रस्सियों से बंधा हुआ संसारी जीव भी मथानी की तरह संसार में घुमाया जाता है। यानि कि वह जीव राग और द्वेष करके अपने लिए कर्म-बंधन तैयार करता है और उस कर्म-बंधन के उदय होने पर यह जीव संसार की चारों गतियों में घूमता रहता है।

क्रोध, शोक, मान, अरति, भय, जुगुप्सा ये 6 प्रकार भाव द्वेष रूप माने गये हैं और माया, लोभ, हास्य, रति, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद इन सात प्रकार के भावों को राग रूप माना गया है। यानि राग और द्वेष में समस्त विकारी भावों का समावेश किया जाता है, इनसे ही कर्मबन्ध होकर संसार में भ्रमण होता है।

रत्तो बंधदि कम्मं मुंचदि जीवो विरागसंपण्णो।

एसो जिणोवेदेसो तम्हा कम्मेसु मा रज्ज।। (150) समयसार

जो रागी है, वह अवश्य कर्मों को बाँधता ही है और जो विरक्त है, वही कर्मों से छूटता है, ऐसा यह आगम का वचन है। वह सामान्यतः राग के निमित्त से कर्म-शुभ अशुभ ये दोनों हैं। उनको अविशेषकर बंध का कारण साधा है इसलिये उन दोनों ही कर्मों का निषेध करते हैं।

भावो रागादिजुदो जीवेण कदो दु बंधगो भणिदो।

रायादिविप्पमुक्को अबंधगो जाणगो णवरि।। (167) समयसार

इस आत्मा में निश्चय से जो राग द्वेष के मिलाप से उत्पन्न हुआ भाव है वह अज्ञानमय ही है। जैसे चुंबक पत्थर के संबंध से उत्पन्न हुआ भाव लोहे की सुई को चलाता है, उसी प्रकार वह अज्ञान भाव आत्मा को कर्म करने के लिये प्रेरणा करता है तथा उन रागादि कों के भेद ज्ञान से उत्पन्न हुआ जो भाव है, वह ज्ञानमय है। जैसे चुंबक, पाषाण के संसर्ग बिना सुई का स्वभाव चलने रूप नहीं है, उसी प्रकार आत्मा को कर्म करने में अनुत्साह रूप स्वभाव से स्थापित करता है इसलिये रागादिकों से मिला हुआ अज्ञानमय भाव कर्म के कर्तृत्व में प्रेरक है इस कारण नवीन बंध का करनेवाला है तथा रागादिक से न मिला हुआ भाव ही अपने स्वभाव को प्रगट करने वाला है। वह केवल जानने वाला ही है, वह नवीन कर्म का किंचिन्मात्र भी बंध करने वाला नहीं है।

अज्ञानान्मोहतो बन्धो नाऽज्ञानाद्वीत-मोहतः।

ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्मोहिनोऽन्यथा।। (98) देवागम

'मोह-सहित' अज्ञान से बंध होता है-जो अज्ञान मोहनीय-कर्म प्रकृति लक्षण से युक्त है वह स्थिति अनुभागरूप स्वफलदान-समर्थ कर्मबंध का कर्त्ता है। जो अज्ञान मोह से रहित है वह (उक्त फलदान समर्थ) कर्म-बंध का कर्त्ता नहीं है और जो अल्पज्ञान मोह से रहित है उससे मोक्ष होता है, परंतु मोह सहित अल्पज्ञान से कर्मबंध ही होता है।

पहले स्त्री, पुत्र, पति, धन, शरीरादि के प्रति जो अशुभ राग है उसे त्याग करके देव, शास्त्र, गुरु, धर्म, व्रत, संयम प्रति प्रशस्त शुभराग करना चाहिये, साधना के बल

पर संपूर्ण विषमताओं को त्याग करते-करते शुभराग को भी त्याग करके परम समरसी भाव में स्थिर होना चाहिये जिससे, समस्त शुभाशुभ भाव के अभाव से पाप पुण्य से भी जीव मुक्त हो जाता है।

तम्हा णिव्वुदिकामो रागं सव्वत्थ कुणदु मा किंचि।
सो तेण वीदरागो भवियो भावसायरं तरदि।। (172) पंचास्तिकाय

क्योंकि इस शास्त्र में मोक्षमार्ग व्याख्यान के संबंध में मोक्ष का मार्ग उपाधि रहित चैतन्य के प्रकाशरूप वीतराग भाव को ही दिखलाया है। इसलिये केवलज्ञान आदि अनंत गुणों की प्रगटतारूप कार्य समयसार से कहने योग्य मोक्ष को चाहने वाला भव्यजीव अरहंत आदि में भी स्वानुभवरूप रागभाव न करे-इस राग रहित चैतन्य ज्योतिमई भाव से वीतरागी होकर वह प्राणी संसार सागर को पार करके अनंतज्ञानादि गुणरूप मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। यह संसार सागर अजर अमर पद से विपरीत है, जन्म, जरा, मरण आदि रूप नाना प्रकार जलचर जीवों से भरा हुआ है, वीतराग परमानन्दमई एक सुख-रस के आस्वाद को रोकने वाले नरकादि दुःखरूप खारे जल से पूर्ण हैं, रागादि विकल्पों के विषयों की इच्छा को आदि लेकर सर्व शुभ-अशुभ विकल्पजालरूप तरंगों की माला से भरपूर है, वह जिसके भीतर आकुलता रहित परमार्थ सुख से विपरीत आकुलता के पैदा करनेवाली नाना प्रकार मानसिक दुःख रूप वडवानल की शिखा जल रही है।

इस तरह पहले कहे प्रकार से इस प्राभृत शास्त्र का तात्पर्य वीतरागता को ही जानना चाहिये। यह वीतरागता निश्चय तथा व्यवहारनय से साध्य व साधकरूप से परस्पर एक दूसरे की अपेक्षा से ही होती है-बिना अपेक्षा के एकान्त से मुक्ति की सिद्धी नहीं हो सकती है। जिसका भाव यह है कि जो कोई विशुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावमय शुद्ध आत्मतत्त्व का भले प्रकार श्रद्धान ज्ञान व चारित्र रूप निश्चय मोक्षमार्ग की अपेक्षा बिना केवल शुभ चारित्र रूप व्यवहार नय को ही मोक्षमार्ग मान बैठते हैं वे इस भाव से मात्र देव लोक आदि के क्लेश को भोगते हुए परम्परा से इस संसार में भ्रमण करते हैं परंतु जो ऐसा मानते हैं कि शुद्धात्मानुभूतिरूप मोक्षमार्ग है तथा जब उनमें निश्चय मोक्षमार्ग के आचरण की शक्ति नहीं होती है तब निश्चय के साधक शुभ चारित्र को पालते हैं तब वे सराग सम्यग्दृष्टि होते हैं फिर वे पराम्परा से

मोक्ष को पाते हैं। इस तरह व्यवहार के एकांत पक्ष को खण्डन करने की मुख्यता से दो वाक्य कहे गये तथा एकांत से निश्चयनय का आलम्बन होते हुए रागादि विकल्पों से रहित परम समाधि रूप शुद्धात्मा का लाभ न पाते हुए भी तपस्वी के आचरण के योग्य सामायिकादि छः आवश्यक क्रिया के पालन का श्रावक के आचार तथा व्यवहार दोनों मार्गों से भ्रष्ट होते हुए निश्चय तथा व्यवहार आचरण के योग्य अवस्था से जो भिन्न कोई अवस्था उसको न जानते हुए पाप को ही बांधते हैं तथा जो शुद्धात्मा अनुभव रूप निश्चय मोक्षमार्ग की तथा उसके साधक व्यवहार मोक्षमार्ग को मानते हैं परंतु चारित्र मोह के उदय से शक्ति न होने पर यद्यपि शुभ व अशुभ चारित्र से रहित शुद्धात्मा की भावना की अपेक्षा सहित शुद्ध चारित्र को पालने वाले पुरुषों के समान नहीं होते हैं तथापि सराग सम्यक्त्व को आदि लेकर दान पूजा आदि व्यवहार में रत ऐसे सम्यग्दृष्टि होते हैं वे परम्परा से मोक्ष को पा लेते हैं। इस तरह निश्चय के एकांत को खंडन करते हुये दो वाक्य कहे हैं। इससे सिद्ध हुआ कि निश्चय तथा व्यवहार परस्पर साध्य साधकरूप से मानने योग्य हैं। इसी के द्वारा रागादि विकल्प रहित परम समाधि के बल से मोक्ष को ज्ञानी जीव पाते हैं।

सिञ्च भिक्खु! इमं नावूं सिताते लहुमेस्सति।
छेत्वा रागञ्च दोसञ्च ततो निव्वानमेहिसि।। (10)

भिक्षु! इस नाव को उलीचने पर यह तुम्हारे लिये हल्की हो जायेगी। राग और द्वेष को छिन्न कर (क्षीणकर) फिर तुम निर्वाण को प्राप्त होगे। (धम्मपद)

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूड सामली।
अप्पा कामदुहा धेणू, अप्पा मे नन्दणं वणं।। (36) उत्तरा.

मेरी अपनी आत्मा ही वैतरणी नदी है, कूट-शाल्मलि वृक्ष है, काम-दुग्ध धेनू है और नंदनवन है।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तमामित्त य, दुप्पट्ठिय-सुपट्ठियो।। (37)

''आत्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्त्ता है और विकर्ता-भोक्ता है। सत्-प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना मित्र है और दुष्प्रवृत्ति में स्थित आत्मा ही अपना शत्रु है।''

एगप्पा आजिए सत्तु कलाया इन्दियाणि य।

ते जिनित्तु जहानायां, विहरामि अहं मुणी।। (38)

''मुने! न जीता हुआ एक अपना आत्म ही शत्रु है। कषाय और इन्द्रियाँ भी शत्रु है। उन्हें जीतकर नीति के अनुसार मैं विचरण करता हूँ।''

कोहं माणं च मायं च लोभं च पाववड्ढणं।

वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छंतो हियमप्पणो।। (36)

क्रोध, मान, माया और लोभ-ये पाप को बढ़ाने वाले हैं। आत्मा का हित चाहने वाला इन चारों दोषों को छोड़े।

कोहो य माणो य अणिग्गहीया, माया य लोभो य पवड्डुमाणा।

चत्तारि ए ए कसिणा कसाया, सिंचति मूलाइं पुण भवस्स।। (39)

अनिगृहीत क्रोध और मान प्रवर्द्धमान माया और लोभ-ये चारों संक्लिष्ट कषाय पुनर्जन्मरूपी वृक्ष की जड़ों का सिंचन करते हैं।

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो।

माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो।। (37)

क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का नाश करने वाला है, माया मैत्री का विनाश करती है और लोभ सब (प्रीति, विनय और मैत्री) का नाश करने वाला है।

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।

माणं चाज्जवभावणे लोभं संतोसओ जिणे।। (38)

उपमश से क्रोध का हनन करे, मृदुता से मान को जीते, ऋजु भाव से माया को और सन्तोष से लोभ को जीते।

भावबंध के विभिन्न भेद

परिणामादो बंधो परिणामो रागदोसमोहजुदो।

असुहो मोहपदोसो सुहो व असुहो हवदि रागो।। (180) प्र.सार

Bondage results from the modification which consists of attachment, aversion and infatuation. Infatuation and aversion are inauspicious, while attachment is either auspicious and inauspicious.

(परिणामादो) परिणामों से (बंधो) बंध होता है। (परिणामो) परिणाम (रागदोसमोहजुदो) राग द्वेष मोह युक्त होता है (मोहपदोसो) मोह और द्वेष (असुहो) अशुभ है। (रागो) राग (सुहो) शुभ (व असुहो) व अशुभ रूप (हवदि) होता है।

वीतराग परमात्मा के परिणाम से विलक्षण परिणाम राग द्वेष मोह की उपाधि से तीन प्रकार का होता है। इनमें से मोह और द्वेष दोनों तो अशुभ ही हैं। राग शुभ तथा अशुभ के भेद से दो प्रकार का होता है। पंचपरमेष्ठी आदि की भक्ति में राग शुभ (प्रशस्त) राग कहा जाता है। जबकि विषय कषायों में राग अशुभ (अप्रशस्त) राग होता है, यह तीन प्रकार का परिणाम ही सर्व प्रकार से उपाधि सहित है इसीलिये बंध का कारण है। ऐसा जानकर प्रशस्त तथा अप्रशस्त समस्त राग-द्वेष के नाश करने के लिए सर्व रागादि की उपाधि से रहित सहजानंदमई एक लक्षणधारी सुखामृत स्वभावमई निज आत्म द्रव्य में ही भावना करनी योग्य है, यह तात्पर्य है।

प्रथम तो द्रव्य बंध विशिष्ट परिणाम से होता है। परिणाम की विशिष्टता राग द्वेष मोह ममता के कारण है। वह शुभत्व और अशुभत्व के कारण द्वैत का अनुसरण करता है (अर्थात् दो प्रकार का है), उसमें से मोह-द्वेषमयता से अशुभत्व होता है और रागमयता से शुभत्व तथा अशुभत्व होता है, क्योंकि राग विशुद्धि तथा संक्लेश युक्त होने से दो प्रकार का होता है।

समीक्षा–इस गाथा में आचार्य कुंदकुंद देव ने द्रव्यबंध के लिए जो विभिन्न भावबंध रूपी कारण हैं, उसका संक्षिप्त वर्णन किया है। उन्होंने मुख्यतः भावबंध के कारणों को तीन भाग में विभक्त किया यथा (1) राग (2) द्वेष (3) मोह। इनमें से द्वेष मोह तो अशुभ परिणाम ही है। इससे केवल पाप बंध ही होता है। राग शुभ रूप भी है और अशुभ रूप भी है। धर्म प्रति, देवशास्त्र गुरु के प्रति जो अनुराग है वह द्वेष मोह तो अशुभ परिणाम ही है इससे केवल पाप बंध ही होता है। राग शुभ राग है। इसके विपरीत विषय प्रति, संपत्ति प्रति, पुत्र कलत्र आदि के प्रति जो राग है वह अशुभ राग है। शुभ राग सम्यक्दृष्टि को ही होता है और इसके बल पर अशुभ का संवर, पाप की निर्जरा, पुण्य का बंध एवं परंपरा से मोक्ष की उपलब्धि होती है।

विधूततमसो रागस्तपः श्रुतनिबन्धनः।

संध्याराग इवार्कस्य जन्तोरभ्युदयाय सः।। (123) आत्मा.

अज्ञान रूप अंधकार को नष्ट कर देने वाले प्राणी के जो तप और शास्त्र विषयक अनुराग होता है वह सूर्य की प्रभातकालीन लालिमा के समान उसके अभ्युदय (अभिवृद्धि) के लिए होता है।

विहाय व्याप्तमालोकं पुरस्कृत्य पुनस्तमः।

रविद्रामागच्छन् पातालतलमृच्छति।। (124)

जिस प्रकार सूर्य फैले हुए प्रकाश को छोड़कर और अंधकार को आगे करके जब राग (लालिमा) को प्राप्त होता है तब वह पाताल को जाता है, अस्त हो जाता है, उसी प्रकार जो प्राणी वस्तु को प्रकाशित करने वाले ज्ञानरूप प्रकाश को छोड़कर अज्ञान को स्वीकार करता हुआ राग को (विषय वांछा) प्राप्त होता है वह पाताल तल-को नरकादि दुर्गति को प्राप्त होता है।

परन्तु सम्यग्दर्शन के बिना, ज्ञान चारित्र, तप आदि मोक्ष के लिए कारण तो बनते नहीं है साथ ही सातिशय पुण्य बंध के कारण भी नहीं बनते हैं। वे ही सम्यग्दर्शन के साथ महान् अभ्युदय एवं मोक्ष के लिए कारण बन जाते हैं।

शमबोधवृत्ततपसां पाषाणस्येव गौरवं पुंसः।

पूज्यं महामणेरिव तदेव सम्यक्त्वसंयुक्तम्।। (15)

पुरुष के सम्यक्त्व से रहित शांत, ज्ञान, चारित्र और तप इनका महत्व पत्थर के भारीपन के समान व्यर्थ है परंतु वही उनका महत्व यदि सम्यक्त्व से सहित है तो वह मूल्यवान मणि के महत्व के समान पूजनीय है।

अतएव सिद्ध होता है कि सम्यग्दर्शन पूर्वक श्रावक एवं मुनि क्रियाएँ शुभ क्रियाएँ है अन्यथा वे क्रियाएँ शुभाभास हैं।

अनादि काल से जीव मोहादि कर्म के वशवर्ती होकर वैभाविक परिणमन करता है और पापकर्म को ही रूचिपूर्वक, यत्नपूर्वक, इच्छापूर्वक करता है।

जत्तेण कुणादि पावं, विसयणिमित्तं अहण्णिसं जीवो।

मोहंधयार सहिदो, तेण दु परिपडदि संसारे।। (34) द्वादश

मोह रूपी अंधकार से युक्त (अंधा हुआ) यह संसारी जीव दिन-रात (पाँच

इन्द्रियों के) विषयों के कारण यत्नपूर्वक पाप करता है। इसलिए वह संसार (रूपी समुद्र) में गिरता है।

यहाँ विचारणीय यह है कि मिथ्यात्व युक्त जीव को शुभोपयोग नहीं होता है और शुभोपयोग जनित पुण्यानुबंधी पुण्य का भी बंध नहीं होता है।

पुण्णं पुव्वायरिया दुविहं अक्खंति सुत्तउत्तीए।
मिच्छ पउत्तेण कयं विवरियं सम्म जुत्तेण।। (399) भा.संग्रह

पूर्वोचार्यों ने अपने सिद्धांत सूत्रों के अनुसार उस पुण्य के दो भेद बताये हैं (1) मिथ्यादृष्टि पुरुष द्वारा किया गया पुण्य, (2) इसके विपरीत सम्यग्दृष्टि के द्वारा किया हुआ पुण्य।

मिच्छादिट्ठीपुण्णं फलइ कुदेवेसु कुणर तिरिएसु।
कुच्छिय भोग धरासु य कुच्छिय पत्तस्स दाणेण।। (400)

मिथ्यादृष्टि पुरुष प्रायः कुत्सित पात्रों को दान देता है इसलिए वह पुरुष उस कुत्सित दान के फल से कुदेवों में उत्पन्न होता है, कुमनुष्यों में उत्पन्न होता है, नीचे तिर्यंचों में उत्पन्न होता है और कुभोग भूमियों में उत्पन्न होता है।

सम्मादिट्ठी पुण्णं ण होइ संसारकारणं णियमा।
मोक्खस्स होइ हेउं जइ वि णियाणं ण सो कुणइ।। (404)

सम्यग्दृष्टि के द्वारा किया हुआ पुण्य संसार का कारण कभी नहीं होता यह नियम है। यदि सम्यग्दृष्टि पुरुष के द्वारा किये हुए पुण्य में निदान न किया जाय तो वह पुण्य नियम से मोक्ष का ही कारण होता है।

उपरोक्त उद्धरण से सिद्ध होता है कि, सम्यग्दर्शन के बिना शुभ भाव नहीं और शुभ भाव बिना पुण्यानुबंधी पुण्य नहीं होता है और पुण्यानुबंधी पुण्य बिना परंपरा से मोक्ष नहीं मिलता इसलिए मोक्ष के लिए शुभ क्रियाओं के लिए, शुभ भावों के लिए, सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन की अनिवार्यता है।

जं सुहमसुहमुदिण्णं भावं रत्तो करेदि जदि अप्पा।
सो तेण हवदि बद्धो पोग्गलकम्मेण विविहेण।। (147) पं.का.

यदि वास्तव में यह आत्मा के आश्रय द्वारा अनादि काल से रक्त (विकारी)

रहकर कर्मोदय के प्रभाव से उदित (प्रकट होने वाले) शुभ या अशुभ भाव को करता है तो वह आत्मा उस निमित्त भूत भाव द्वारा विविध पुद्गल कर्मों से बद्ध होता है इसलिये यहाँ (ऐसा कहा है कि) मोह राग द्वेष स्निग्ध ऐसे जो जीव के शुभ या अशुभ परिणाम वह भावबंध है और उनके निमित्त से शुभाशुभ कर्मरूप परिणत पुद्गलों का जीव के साथ अन्योन्य अवगाहन रूप द्रव्यबंध है। इस प्रकरण में जयधवल से निम्न कुछ प्रकरण प्रस्तुत कर रहा हूँ-

इस प्रकार जो मूर्त कर्म जीवद्रव्य से संबद्ध है उसे सहेतुक ही मानना चाहिए। यदि उसे सहेतुक न माना जाएगा तो जो जीव निर्व्यापार अर्थात् योग क्रिया से रहित है उनके भी कर्मबंध का प्रसंग प्राप्त हो जाएगा। आगे इसी का स्पष्टीकरण करते हैं-कर्म के कारण क्या मिथ्यात्व, असंयम और कषाय हैं, या सम्यक्त्व, संयम और विरागता है? इन दो विकल्पों में से दूसरा पक्ष तो बन नहीं सकता है, क्योंकि सम्यक्त्व संयम और विरागता आदि का यावत् जीव द्रव्य के अविनाभावि ज्ञान की वृद्धि के साथ कोई विरोध नहीं है अर्थात् सम्यक्त्वादि के होने पर ज्ञान की वृद्धि देखी जाती है अतः वे जीव के गुण रूप से अवगत है इसलिए उन्हें आत्मा के स्वरूप के विनाश का कारण होने में विरोध आता है अर्थात् सम्यक्त्वादिक आत्मा के स्वरूप के विनाश के कारण नहीं हो सकते हैं।

अतएव मिथ्यात्व, असंयम और कषाय कर्मों के कारण हैं यह सिद्ध हो जाता है, क्योंकि मिथ्यात्वादि से अतिरिक्त जीव गुण के विरोधी और दूसरे धर्म जीव में नहीं पाये जाते हैं।

जे बंधयरा भावा, मोक्खयरा चावि जेदु अज्झप्पे।
जे चावि बंध मोक्खाण कारया ते वि विणया।। (7)

कहा भी है-अध्यात्म में अर्थात् आत्मगत जो भावबंध के कारणभूत है और जो मोक्ष के कारण है उन्हें जान लेना चाहिए। उसी प्रकार जो भावबंध और मोक्ष इन दोनों के कारणभूत नहीं है उसे भी जान लेना चाहिए।

ओदइया बंधयरा उवसम-खय-मिस्सया य मोक्खयरा।
भावो दु पारिणमिओ करणोभय वज्जिओ होइ।। (8)

औदयिक भाव बंध के कारणभूत हैं। औपशमिक, क्षायिक और मिश्र भाव

मोक्ष के कारण हैं तथा पारिणामिक भाव बंध और मोक्ष दोनों के कारण नहीं है।

मिच्छत्ताविरदी वि स कसाय-जोगा य आसवा होंति।
संजम-विराय-दंसण जोगाभावो य संवरओ।। (9)

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये चारों आस्रव रूप अर्थात् कर्मबंध के कारण हैं तथा संयम, वैराग्य, दर्शन अर्थात् सम्यग्दर्शन और योग का अभाव ये संवर रूप अर्थात् मोक्ष के कारण हैं।

यहाँ पर जो औदयिक भावों को बंध का हेतु कहा है सो उससे गति, जाति आदि सभी औदयिक भावों को ग्रहण नहीं करना चाहिए। किन्तु जिन मिथ्यात्वादि औदयिक भावों के साथ बंध का अन्वय-व्यतिरेक देखा जाता है ऐसे मिथ्यात्वादि ही बंध के हेतु जानने चाहिए।

मिच्छत्तासवदारं रुंभई सम्मत्तदिढ़ कवाडेण।
हिंसादिदुवाराणि वि दिढ़ वयफलहेहिं रूंभति।। (10)

सम्यक्त्व रूपी दृढ़कपाट से मिथ्यात्व आस्रव रूप द्वार रोका जाता है तथा व्रतरूपी दृढ़ फलकों से अर्थात् तख्तों से हिंसादि रूप द्वार भी रोके जाते है।

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षोमोक्षः। (त.वा.)

बंध के कारणों का अभाव (संवर) और निर्जरा के द्वारा (पूर्व संचित) संपूर्ण कर्मों के नाश हो जाने को मोक्ष कहा है।

पूर्व (अष्टम अध्याय) में कथित मिथ्यादर्शन अविरति, प्रमाद, कषाय और योग रूप बंध के कारणों का निरोध (अभाव) हो जाने पर नूतन कर्मों का आना (आस्रव) रुक जाता है, क्योंकि कारण के अभाव में कार्य का अभाव होता ही है।

भले शुभ भाव एवं अशुभ भाव से पुण्य बंध एवं पाप बंध होता है परंतु यह दोनों बंध पर्याय दृष्टि से, परंपरा फल की दृष्टि से समान नहीं है। पाप बंध मिथ्यादृष्टि को होने के कारण और संपूर्ण घातिकर्म पाप स्वरूप होने के कारण पाप तो हेय है और त्यजनीय है परंतु पुण्य बंध सम्यग्दृष्टि को होने के कारण एवं परंपरा से मोक्ष का कारण होने से बंध प्राथमिक अवस्था में ग्रहणीय है/उपादेय है परन्तु शनैः-शनैः 8वें आदि उपरितन गुणस्थान में शुभ भाव कम होता जाता है एवं शुद्ध भावों की वृद्धि होती है इसलिए उनके लिए शुभ भाव हेय हैं। चतुर्थ गुणस्थान से लेकर छट्ठे गुणस्थान तक तो

बुद्धिपूर्वक, प्रतिज्ञापूर्वक, योग्य स्थान के अनुसार शुभ क्रियाएँ (श्रावक योग्य एवं मुनि योग्य चारित्र, कर्त्तव्य, व्रत नियम आदि) की जाती है परंतु लक्ष्य रहता है शुद्ध भाव, आत्मोपलब्धि, कर्मक्षय।

अशुद्ध निश्चयनय से आत्मा भाव कर्म का कर्त्ता

कुव्वं सभावमादा हवदि हि कत्ता सगस्स भावस्स।

पोग्गलदव्वमयाणं ण दु कत्ता सव्वभावाणं।। (184) प्र.सार.

The soul, effecting the development of its consciousness, is the agent of its own development; it is not the agent of all those conditions constituted of material substances.

आगे कहते हैं कि आत्मा अपने ही परिणामों का कर्त्ता है, द्रव्य कर्मों का कर्त्ता नहीं है-अशुद्ध निश्चय से रागादि भावों का व शुद्ध निश्चय से शुद्ध वीतराग भाव का कर्त्ता है-(आदा) आत्मा (सभावं कुव्वं) अपने भाव को करता हुआ (पोग्गल दव्वमयाणं सव्व भावाणं) पुद्गल रूप द्रव्य से बनी हुई सर्व अवस्थाओं का (ण दु कत्ता) तो कर्त्ता नहीं है। स्वभाव शब्द से यद्यपि शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव ही कहा जाता है तथापि यहाँ स्वभाव शब्द से कर्मबंध के प्रस्ताव में अशुद्ध निश्चयनय से रागादि परिणाम का ही प्रगटपने कर्त्ता है और वह रागादि परिणाम निश्चय से उसका भावकर्म कहा जाता है।

जैसे गर्म लोहे में उष्णता व्याप्त है वैसे आत्मा इन रागादि भावों में व्याप्त हो जाता है तथा चैतन्य रूप से विलक्षण पुद्गल द्रव्यमई सर्व भावों का ज्ञानावरणीय आदि कर्म की पर्यायों का तो यह आत्मा कभी भी कर्त्ता होता नहीं। इससे जाना जाता है कि रागादि अपना परिणाम ही कर्म है जिसका यह जीव कर्त्ता है।

रत्नत्रय कर्मबंध का कारण नहीं है

असमग्रं भावतयो, रत्नत्रयमस्ति कर्मबन्धोयः।

स विपक्षकृतोऽवश्यं, मोक्षोपायो न बंधनोपायः।। (211) पुरु.

Even when Ratna Traya is partially followed, whatever bondage of karma there is, due to its Antithesis (the passion)

because Ratna-Traya is assuredly the way to liberation, and can never be the cause of bondage.

अपरिपूर्ण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भावना/परिपालन से जो कर्मबंध होता है वह कर्मबंध रत्नत्रय से न होकर उसके विपक्षभूत राग द्वेष से होता है। अपरिपूर्ण रत्नत्रय से कर्मबंध होता है। जितने अंश में रत्नत्रय है उतने अंश में कर्मबंध नहीं होता है और उतने अंश मोक्ष के उपाय हैं। जितने अंश में रत्नत्रय का अभाव है और राग-द्वेष का सद्भाव है उतने अंश में कर्मबंध होता है जो मोक्ष के लिये कारण नहीं है। निश्चय रत्नत्रय कर्मबंध के लिये कारण नहीं है असर्वदेशी रत्नत्रय कर्मबंध के लिये कारण होता है। निश्चय रत्नत्रय कर्मबंध के लिये कारण होता है।

रत्नत्रय और राग का फल

येनांऽशेन सुदृष्टिस्तेनाऽशेनाऽस्य बंधनं नाऽस्ति।
येनांऽशेन तु राग स्तेनांऽशेनाऽस्य बंधनं भवति।। (212)
येनांऽशेन तु ज्ञानं, तेनांऽशेनाऽस्यं बंधनं नास्ति।
येनांऽशेन तु रागस्तेनांऽशेनाऽस्य बंधनं भवति।। (213)
येनांऽशेन चारित्रं, तेनांशेनास्य बंधनं नास्ति।
येनाशेनं तु रागस्तेनांशेनास्य बंधनं भवति।। (214)

(In every thought activity) there is no bondage so for as there is right belief; there is bondage so for as there is passion (In every thought activity) there is no bondage so for as there is knowledge; there is bondage so far as there is passion. (In every thought activity) there is no bondage so for there is conduct; there is bondage so for as there is passion.

जिस अंश से सुदृष्टि होता है उस अंश से सम्यक् दर्शन होता है। उस सुदृष्टि रूप अंश से उस सम्यक्त्व का कर्मबंध नहीं होता है। किन्तु जिस अंश से उस सम्यक् दृष्टि में भी राग होता है उस अंश से उस सम्यक् दृष्टि को भी कर्मबन्ध होता है।

जिस अंश से ज्ञान होता है उस अंश से कर्मबन्ध नहीं होता है परन्तु जिस अंश से राग होता है उस अंश से उस ज्ञानी को कर्मबन्ध होता है।

जिस अंश से चारित्र होता है उस चारित्र अंश से कर्म बन्ध नहीं होता है परन्तु जिस अंश से राग होता है उस अंश से उस चारित्र या चारित्रधारी को कर्मबन्ध होता है।

इसका भावार्थ यह है कि सराग रत्नत्रय में बन्ध होता है। वीतराग रत्नत्रय में बन्ध नहीं होता है।

समीक्षाः-जैसे-जिस अंश में प्रकाश होता है उस अंश में अन्धकार नहीं होता है तथा जिस अंश में अंधकार होता है उस अंश में प्रकाश नहीं होता है। प्रकाश जितने-जितने अंश में बढ़ता जाता है उसने उतने अंश में अन्धकार भी घटता जाता है। जितने जितने अंश में अन्धकार बढ़ता जाता है उतने-उतने अंश में प्रकाश घटता जाता है। इसी प्रकार जितने-जितने अंश में रत्नत्रयात्मक स्वभाव आत्मा में प्रकट होता है उतने-उतने अंश में वैभाविक भावरूपी कर्मबन्ध घटता जाता है। आचार्य उमास्वामी ने पात्र की अपेक्षा निर्जरा में न्यूनाधिकता का वर्णन करते हुए प्रकारान्तर से इसी विषय को निम्न प्रकार से कहा है-

सम्यग्दृष्टि श्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोशमकोपशान्त मोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः।।

सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत अनन्तानुबन्धिविसंयोजक, दर्शनमोहक्षपक, उपशमक, उपशान्तमोह क्षमक, क्षीणमोह और जिन ये क्रम से असंख्यातगुणी निर्जरा वाले होते हैं। जब तक सम्यग्दर्शन की उपलब्धि नहीं होती तब तक आस्रव और बंध की परम्परा चलती रहती है। वह बंध की परम्परा मिथ्यादृष्टि की अनादि से हैं। उसकी जो निर्जरा होती है वह सविपाक निर्जरा या अकाम निर्जरा है। इसलिए मिथ्यादृष्टि केवल आस्रव और बंध तत्त्व का कर्त्ता है। सम्यग्दर्शन होते ही जीव के ज्ञान एवं दर्शन में परिवर्तन हो जाता है। जिस अंश में दर्शन ज्ञान चारित्र में सम्यक् भाव है उतने अंश में संवर, निर्जरा प्रारम्भ हो जाती है। क्योंकि सम्यग्दर्शन ज्ञान एवं चारित्र आत्मा का स्वभाव है।

पात्र की अपेक्षा गुणश्रेणी निर्जरा और उसके द्रव्य प्रमाण और काल प्रमाण का वर्णन गोम्मटसार में निम्न प्रकार किया हैः-

सम्मत्तुप्पत्तीये-सावय विरदे अणंत कम्मंसे।
दंसणमोहक्खवगे कषायउवसामगे य उवसंते।। (66)

खवगे य खीणमोहे-जिणेसु दव्वा असंखगुणिदकमा।
तव्विवरीया काला संखेज्जगुणक्कमा होंति।। (67)

सम्यक्त्वोत्पत्ति अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धी कर्म का विसंयोजन करने वाला, दर्शन मोहनीय कर्म का क्षय करने वाला, कषायों का उपशम करने वाला 8-9-10 वें गुणस्थानवासी जीव, क्षीण-मोह, सयोगी केवली और अयोगी केवली दोनों प्रकार के जिन ग्यारह स्थानों में द्रव्य की अपेक्षा कर्मों की निर्जरा क्रम से असंख्यात गुणी अधिक होती जाती है। और उसका काल इसके विपरीत है अर्थात् क्रम से उत्तरोत्तर संख्यातगुणा हीन है।

सम्यग्दृष्टि (अविरत):-जैसे मद्यपायी के शराब का कुछ नशा उतरने पर अव्यक्त ज्ञान शक्ति प्रकट होती है या दीर्घ निद्रा के हटने पर जैसे-ऊँघते-ऊँघते भी अल्प स्मृति होती है या विष मूर्च्छित व्यक्ति को विष का एक देश वेग कम होने पर चेतना आती हैं अथवा पित्तादि विकार से मूर्च्छित व्यक्ति को मूर्च्छा हटने पर अव्यक्त चेतना आती है उसी प्रकार अनन्तकाय आदि एकेन्द्रियों में बार-बार जन्म-मरण परिभ्रमण करते-करते विशेष लब्धि से दो इन्द्रिय आदि से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यन्त त्रस पर्याय मिलती है। कभी मुनिराज कथित जिन धर्म को सुनता है तथा कदाचित् प्रतिबन्धी कर्मों के दब जाने से उस पर श्रद्धान भी करता है जैसे-कतक फल के सम्पर्क से जल का कीचड़ बैठ जाता है और जल निर्मल बन जाता है, उसी प्रकार मिथ्या उपदेश से अति मलिन मिथ्यात्व के उपशम से आत्मा निर्मलता को प्राप्त कर श्रद्धानाभिमुख होकर तत्वार्थ श्रद्धान की अभिलाषा के सन्मुख होकर कर्मों की असंख्यात गुणी निर्जरा करता है। प्रथम सम्यक्त्वादि का लाभ होने पर अध्यवसाय (परिणामों) की विशुद्धि की प्रकर्षता से ये दसों स्थान क्रमशः असंख्येयगुणी निर्जरा वाले हैं। सादि अथवा अनादि दोनों ही प्रकार का मिथ्यादृष्टि जीव जब करण लब्धि को प्राप्त करके उसके अधः प्रवृत्त करण परिणामों को भी बिताकर अपूर्वकरण परिणामों को ग्रहण करता है तब वह सातिशय मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। पूर्व की निर्जरा से अर्थात् सदा ही संसारावस्था या मिथ्यात्व में होने वाली या पाई जाने वाली निर्जरा से असंख्यात गुणा अधिक हुआ करती है।

यह कथन गोम्मट्टसार जीवकाण्ड की अपेक्षा से है। इसी से सिद्ध होता है कि

मिथ्यादृष्टि की जो निर्जरा होती है उस निर्जरा को यहाँ पर ईकाई रूप में स्वीकार किया गया है। तत्त्वार्थ सूत्र की अपेक्षा निर्जरा के स्थान दस हैं और गोम्मट्टसार की अपेक्षा निर्जरा के स्थान ग्यारह है परन्तु तत्त्वार्थसूत्र में जो अन्तिम स्थान 'जिन' है उसे सयोगी जिन रूप में विभक्त करने से तत्त्वार्थसूत्र में भी ग्यारह स्थान हो जाते हैं।

श्रावक (पञ्चम गुणस्थान) अवस्था को प्राप्त होने पर कर्मों की निर्जरा होती है वह असंयत सम्यग्दृष्टि की निर्जरा से असंख्यातगुणी अधिक होती है। इस प्रकार विरतादि स्थानों में भी उत्तरोत्तर क्रम से असंख्यातगुणी असंख्यातगुणी अधिक अधिक कर्मों की निर्जरा हुआ करती है। तथा इस निर्जरा का काल उत्तरोत्तर संख्यातगुणा संख्यातगुणा हीन-हीन होता गया है अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि की निर्जरा में जितना काल लगता है उससे संख्यात गुणा कम काल श्रावक की निर्जरा में लगा करता है। इसी प्रकार आगे से विरत आदि स्थानों के विषय में भी समझना चाहिए। अर्थात् उत्तरोत्तर संख्यातगुणे हीन-हीन समय में ही उत्तरोत्तर परिणाम विशुद्धि की अधिकता होने के कारण कर्मों की निर्जरा असंख्यातगुणी अधिक-अधिक होती जाती है। तात्पर्य यह है कि जैसे जैसे मोहकर्म निःशेष होता जाता है वैसे-वैसे निर्जरा भी बढ़ती जाती है और उसका द्रव्य प्रमाण असंख्यातगुणा-असंख्यागुणा अधिकाधिक होता जाता है। फलतः वह जीव भी निर्वाण के अधिक अधिक निकट पहुंचता जाता है। जहाँ गुणाकार रूप से गुणित निर्जरा का द्रव्य अधिकाधिक पाया जाता है उन स्थानों में गुण श्रेणी निर्जरा कही जाती है।

बंध का कारण

योगात्प्रदेश-बंधः स्थिति-बंधो भवति तु कषायात्।
दर्शन बोध चारित्रं न योगरूपं न कषायरूपं च।। (215)
''प्रकृतिः परिणामः स्यात्, स्थितिः कालाऽवधारणम्।
अनुभागो रसो ज्ञेयो, प्रदेशो दल-संचयः।''

Pradesha Bandha, bondage of karmic molecules is due to soul's vibratory activity, and sthiti Bandha, duration bondage, is due to passions. But Right belief, knowledge and

conduct have neither the nature of vibrations nor of passions.

मन-वचन-काय योग से प्रदेश बंध होता है। क्रोधादि कषाय से स्थिति बंध होता है। योग से प्रकृति, प्रदेश बंध जीव करता है। स्थिति अनुभाग बंध कषाय से जीव करता है। कहा भी है-

परिणाम अर्थात् स्वभाव को प्रकृति कहते हैं। स्थिति, काल की अवधारणा को अर्थात् मर्यादा को स्थिति कहते हैं। इस फलदान शक्ति को अनुभाग कहते हैं। कर्म परमाणु समूह के संचय को प्रदेश कहते हैं।

योग तथा कषायों के उत्कृष्ट तथा निकृष्ट भेद से बंध में भी विचित्रता जाननी चाहिए। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र ना योग रूप है ना कषाय रूप हैं। योग तथा कषाय स्वरूप भिन्न हैं तथा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप भिन्न है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में योग तथा कषाय नहीं होता है इसलिए रत्नत्रय से कर्मबंध नहीं होता है।

रत्नत्रय से बंध क्यों नहीं होता?

दर्शनमात्मविनिश्चिति, रात्म-परिज्ञानमिष्यते बोधः।
स्थितिरात्मनि चारित्रं, कुत ऐतभ्यो भवति बन्धः।। (216)

Right belief is conviction in one's own self, knowledge is a knowledge of one' s self own self; conduct is absorption in one's own self. How can there be bondage by these.

दर्शन, बोध, चारित्र से कर्मबंध नहीं होता ऐसा कहा गया है। यह किस प्रकार है? ऐसा प्रश्न करने पर दर्शन आदि का स्वरूप बता रहे हैं।

आत्मा की विनिश्चिति/प्रतीति/श्रद्धा सम्यग्दर्शन होता है। अर्थात् आत्मा के निश्चय स्वभाव का दर्शन सम्यक्त्व होता है। आत्मा का समग्रता से परिज्ञान/चिन्तन/बोध को ज्ञान कहते हैं। आत्मा में ही स्थिर हो जाना, उसमें रमण करना चारित्र है। ये तीनों आत्मा के स्वभाव होने के कारण इससे कर्मबंध किस प्रकार होगा? अर्थात् यह आत्मा का स्वभाव होने से स्वभाव में बंध नहीं होता है किन्तु विभाव में बंध होता है।

रत्नत्रय तीर्थंकरादि प्रकृतियों का बंधक नहीं

सम्यक्त्व-चारित्राभ्यां, तीर्थंकराऽऽहार-कर्मणो बन्धः।
योऽप्युपदिष्टः समये, न नयविदां सोऽपि दोषाय।। (217)

Whatever, bondage of Tirthankar karma, or Aharaka karma, has been described in the scripture as due to right belief and conduct, would not appear to be a mistake to those who are learned in the points of view.

शास्त्र में कहा गया है कि तीर्थंकर प्रकृति, आहारक शरीर का बंधन सम्यक्त्व और चारित्र से होता है। अर्थात् जिनेन्द्र द्वारा कहा हुआ सिद्धान्त शास्त्र में वर्णन है कि अरिहन्त के लिये कारणभूत तीर्थंकर पुण्य-प्रकृति का बंध, आहारक नाम कर्म उदय के निमित्त आहारक शरीर प्रकृति का बंध, सम्यक्त्व और चारित्र से होता है। परन्तु यह बंध नय को जानने वालों के लिए दोष कारक नहीं हैं।

समीक्षाः-सम्यक्त्व एवं चारित्र से जो तीर्थंकर एवं आहारक शरीर का बंध होता है उसका कारण स्वयं आचार्य श्री आगे बता रहें हैं।

रत्नत्रय पुण्य बंध से उदासीन

सति सम्यक्त्व चारित्रे, तीर्थंकराऽऽहार-बंधकौ भवतः।
योग कषायौ नाऽसति, तत्पुनरस्मिन्नुदासीनम्।। (218)

In presence of Right belief and conduct, only vibratory activity and passion cause the bondage of Tirthankara and Aharaka karmas. Therefore they (Right belief and conduct) are quite unconcerned in this matter.

सम्यक्त्व चारित्र के होते हुए आहारक शरीर का बंध होता है। सम्यक्त्व चारित्र के बिना तीर्थंकर आहारक शरीर का बंध नहीं होता है। जहाँ पर योग कषाय नहीं होता है वहाँ भी दोनों का बंध नहीं होता है। पुनः दर्शन-ज्ञान-चारित्र होते हुए पूर्वोक्त तीर्थंकर आहारक कर्मबन्ध के लिए रत्नत्रय उदासीन है। इसके लिए मुख्य कारण शुभ योग, शुभ राग, शुभोपयोग है। यदि योग एवं कषाय नहीं है तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से तीर्थंकर आहारक का कर्मबन्ध नहीं होगा।

फिर सम्यक्त्व को देवायु का कारण क्यों कहा गया है?

ननु कथमेवं सिद्ध्यति देवायुः प्रभृति सत्प्रकृतिबंधः।
सकल जन सुप्रसिद्धो, रत्नत्रय-धारिणां मुनिवराणाम्।। (219)

How then is there, the bondage of good karmas like celestial age, etc. to saints following Ratna Traya, (a fact) well known to all persons, possible.

यहाँ प्रश्न हो रहा है कि रत्नत्रय धारी मुनिश्वरों के देवायु आदि पुण्य प्रकृति का बंध होता है। पूर्व में कहा गया है कि रत्नत्रय से बंध नहीं होता है परन्तु सर्वजन प्रसिद्धि (शास्त्र प्रसिद्ध) है कि कहे हुए देवायु आदि (देवायु, तीर्थंकर प्रकृति, आहारक शरीर, साता वेदनीय) पुण्य-प्रकृति का बंध रत्नत्रय धारी मुनिश्वरों को होता है।

समीक्षाः-इसका उत्तर स्वयं आचार्य श्री (अमृत चन्द्र सूरी) आगे दे रहे हैं।

उत्तर

रत्नत्रयमिह हेतुर्निर्वाणस्यैव भवति नाऽन्यस्य।
आश्रवति यत्तु पुण्यं, शुभोपयोगोऽयमपराधः।। (220)

Ratna Traya is the cause of Nirvana only, and of nothing else. The good karmas which inflow are due to the Aparadha, defect of Shubhopayoga, good thought activity.

वीतराग रत्नत्रय मोक्ष का ही कारण होता अन्य देवायु आदि का कारण नहीं होता है। जहाँ पर रत्नत्रय से देवायु आदि पुण्य-प्रकृतियों का बन्ध होता है वहाँ शुभोपयोग का मिश्रण होना इसका कारण है अन्यथा रत्नत्रय मोक्ष के लिये ही कारण बनता है।

समीक्षाः-घी जले हुए घाव को सही करता है, भरता है, परन्तु वही घी जब अग्नि के सम्पर्क से गरम हो जाता है तो वह गरम घी जलाने लगता है, तथापि सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि गरम घी में जो अग्नि के सम्पर्क से उष्णता का मिश्रण हुआ है वही उष्णता जलाती है न कि घी जलाता है। उसी प्रकार जिस अंश में रत्नत्रय में शुभोपयोग है उस अंश से पुण्य बन्ध होता है और जिस अंश में रत्नत्रय है उससे अबन्ध, अनास्रव, निर्जरा, मोक्ष होता है। इसका ही ग्रन्थकर्ता आगे वर्णन कर रहे हैं।

भिन्न-भिन्न कारणों से भिन्न-भिन्न कार्य होते

एकस्मिन् समवाय दत्यन्त-विरुद्ध कार्ययोरपि हि।

इह ददाति घृतमिति, यथा व्यवहारस्तादृशोऽपि रूढिमितः।। (221)

In one (thought activity), distinctly contradictory effects may exist simultaneously. Ordinarliy it is said that "Ghee burns' (although it is the heat transmitted in the Ghee which burns and not the Gheee itself). Similarly, it is so here, from the practical point of view.

उपर्युक्त (श्लोक-220) विषय को यहाँ पर दृष्टान्त के माध्यम से कथन कर रहे हैं। एक वस्तु में समवाय से मिश्रण होने से अत्यन्त विरूद्ध शुभ-अशुभ रूप जो कार्य है वह भी एक साथ समवाय हो जाते है। इस का उदाहरण यह है कि जिस प्रकार लोक में ''घी जलता है'' ऐसा व्यवहार होता है, उसी प्रकार यहाँ भी (कर्म बन्ध में) रूढ़ि को मानना चाहिए।

रत्नत्रयधारी मोक्षलाभ करता

सम्यक्त्व चारित्र, बोध लक्षणो मोक्षमार्ग इत्येषः।

मुख्योपचार रूपः प्रापयति परं पदं पुरुषम्।। (222)

This path of salvation, known as Right belief, knowledge and conduct combined, has a real and a practical aspect, it leads the soul to the highest stage.

मुख्य/निश्चय और उपचार/व्यवहार रूप से यह सम्यक्त्व चारित्र ज्ञान लक्षण मोक्षमार्ग से परमोत्कृष्ट स्थान स्वरूप मोक्ष प्राप्त होता है।

सीलं विसयाण अरी सीलं मोक्खस्स सोवाणं।। (20)

शील, विषय कषाय का परम शत्रु है अर्थात् शील पालने से शील के प्रभाव से विषय कषाय रूप शत्रु विध्वंस हो जाते हैं। शील मोक्ष महल के लिये सोपान स्वरूप है।

निश्चय व्यवहार मोक्ष मार्गः-मोक्ष कार्य एक होने के कारण उसके कारण भी रत्नत्रयात्मक एक ही है। परन्तु पात्र की अपेक्षा रत्नत्रय व्यवहार और निश्चय भेद से दो प्रकार के हैं। एक निचली भूमिका में स्थित साधक अपेक्षा भेदात्मक रत्नत्रय,

व्यवहार रत्नत्रय या व्यवहार मोक्षमार्ग है। उपरितन भूमिका स्थित साधक अपेक्षा निश्चय रत्नत्रय या अभेद रत्नत्रय या निश्चय मोक्षमार्ग है। निरतिशय सप्तम गुणस्थान या श्रेणी आरूढ से पहले-पहले गुणस्थान तक भेदात्मक या व्यवहार रत्नत्रय है। सातिशय सप्तम गुणस्थान या श्रेणी आरोहण के समय महामुनियों को निश्चय रत्नत्रय या अभेद रत्नत्रय होता है। इसी प्रकार मोक्षमार्ग के निश्चय एवं व्यवहार अपेक्षा से दो भेद हैं।

निश्चय व्यवहाराभ्यां मोक्षमार्ग द्विधा स्थितः।

तत्राद्यः साध्यरूपः स्याद् द्वितीयस्तस्य साधनं।। (2) (तत्त्वार्थ सार)

निश्चय एवं व्यवहार रूप से दो प्रकार के मोक्षमार्ग हैं। निश्चय मोक्षमार्ग साध्य स्वरूप है एवं व्यवहार मोक्षमार्ग साधन स्वरूप है।

साधन के बिना साध्य की सिद्धि नहीं होती है। समर्थ साधन ही परिवर्तित होकर साध्य रूप हो जाता है। जैसे-बीज साधन तो वृक्ष साध्य है। बिना बीज वृक्ष सम्भव नहीं है उसी प्रकार बिना व्यवहार मोक्षमार्ग निश्चय मोक्षमार्ग संभव नहीं है इसलिये व्यवहार मोक्षमार्ग कारण है और निश्चय मोक्षमार्ग कार्य है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरण शिव मग सो दुविध विचारो।

जो सत्यारथ रूप सो निश्चय कारण सो व्यवहारो।।(1)।।

सम्मदंसण णाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।

ववहारा णिच्छयदो तत्तिय मइओ णिओ अप्पा।। (39) (द्रव्य संग्रह)

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों के समुदाय को मोक्ष का कारण जानो। तथा निश्चय से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और चारित्र स्वरूप जो निजात्मा है उसको मोक्ष का कारण जानो।

श्री वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कहे हुए जो छः द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्व और नव पदार्थ हैं इनका भले प्रकार श्रद्धान करना, जानना और व्रत आदि का आचरण करना इत्यादि विकल्प जो हैं सो तो व्यवहार मोक्षमार्ग है। और जो अपने निरंजन शुद्ध आत्म तत्त्व का सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान तथा आचरण में एकाग्र परिणति रूप है वह निश्चय मोक्षमार्ग है। अथवा धातु पाषाण के विषय में अग्नि के सदृश जो साधक है तो व्यवहार मोक्षमार्ग है तथा सुवर्ण के स्थानापन्न निर्विकार जो निज आत्मा है उसके स्वरूप की प्राप्ति रूप जो साध्य हैं उस स्वरूप से निश्चय मोक्षमार्ग है।

भेद रत्नत्रयात्मक व्यवहार मोक्षमार्ग साधक होता है। अभेदरत्नत्रयात्मक निश्चय मोक्षमार्ग साध्य होता है। सुवर्ण और सुवर्ण पाषाण के समान साध्य साधक भाव है। जैसे सुवर्ण पाषाण ही अग्नि आदि से तपते-तपते विशुद्ध होते-होते शुद्ध सुवर्ण रूप से परिणत हो जाता है उसी प्रकार व्यवहार रत्नत्रय ही आध्यात्मिक साधना से शुद्ध होते अभेदरत्नत्रयात्मक रूप परिणत कर लेता है। इससे सिद्ध होता है कि बिना सुवर्ण पाषाण से शुद्ध सुवर्ण की उपलब्धि असम्भव है। व्यवहार रत्नत्रय या शुभोपयोग से पापकर्मों का संवर होता है। सातिशय पुण्यकर्म का आस्रव होता है तथा आस्रव से भी अनंत गुणित कर्म निर्जरा होती है इसलिये शुभ परिणामात्मक भेद रत्नत्रय भी संसार विच्छेद के लिये कारण होता है। जैनागम के प्रसिद्ध सिद्धान्त शास्त्र जय धवला में कलिकाल सर्वज्ञ तार्किक चूड़ामणि आचार्य वीरसेन स्वामी इस सिद्धान्त को सिद्ध करते हुए जय धवला के प्रथम चरण में ही कहते हैं-

''सुह-सुध्द परिणामेहि कम्मक्खयाभावे तक्खयाणुववजीदो''

शुभ और शुद्ध परिणामों से कर्मों का क्षय न माना जाये तो फिर कर्मों का क्षय हो ही नहीं सकता है।

शंका:-आध्यात्मिक शास्त्र में तो व्यवहारनय को अभूतार्थ कहा गया है इसलिये व्यवहार नयाश्रित व्यवहारचरित्र अभूतार्थ है इसलिए व्यवहार रत्नत्रय भी मोक्षमार्ग के लिये अभूतार्थ हैं क्योंकि-

व्यवहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थ मस्सिदो खलु सम्मादिद्ठी हवदि जीवो।। (समयसार)

व्यवहार अभूतार्थ है अर्थात् विशेषता को दृष्टि में रखकर विषमता को पैदा करने वाला है किन्तु शुद्धनय भूतार्थ हैं क्योंकि वह समता को अपनाकर एकत्व को लाता है। समता को अपनाकर ही सम्यग्दृष्टि अर्थात् समीचीनता को देखने वाला होता है।

समाधान:-ठीक है। आपका कहना भी नय सापेक्ष से यथार्थ है परन्तु व्यवहारनय एवं व्यवहार नयाश्रित व्यवहार रत्नत्रय किसके लिये कब अभूतार्थ है वह भी अनेकांत के प्रकाश से जान लेना चाहिये। इस गाथा की टीका करते हुए आध्यात्मिक ग्रन्थियों को सुलझाने वाले जयसेनाचार्य कहते हैं कि-

''व्यवहारो अभूदत्थो भूदत्थोदेसिदो'' व्यवहार नय अभूतार्थ भी है और भूतार्थ भी है, इसे दो प्रकार का कहा गया है। केवल व्यवहार नय ही दो प्रकार का नहीं, किन्तु सुद्धणओ भी शुद्ध निश्चय नय और अशुद्ध निश्चय नय के भेद से दो प्रकार है ऐसा गाथा में आये हुए 'दु' शब्द से प्रकट होता है।

यहाँ यह तात्पर्य है कि जैसे कोई ग्रामीण पुरुष तो कीचड़ सहित तालाब आदि का जल पी लेता है किन्तु नागरिक विवेकी पुरुष तो उसमें कतक फल निर्मली डालकर उसे निर्मल बनाकर पीता है। उसी प्रकार स्वसंवेदन ज्ञान रूप भेद भावना से रहित जो मनुष्य है वह तो मिथ्यात्व और रागादि रूप विभाव परिणाम सहित ही आत्मा का अनुभव करता है। किन्तु जो सम्यग्दृष्टि (संयत) मनुष्य होता है वह तो अभेद लक्षण निर्विकल्प समाधि के बल से कतक स्थानीय निश्चयरूप का आश्रय लेकर शुद्ध आत्मा का अनुभव करता है।

भूतार्थनय का आश्रय करने वाला सामान्य जीव नहीं हो सकता है। सम्यग्दृष्टि से लेकर निरतिशय सप्तम गुणस्थान तक निश्चयनय को जानते हुए भी मानते हुए भी निश्चयनय से प्रतिपादित भावानुकूल वह परिणमन/आचरण नहीं कर सकता है। निश्चयनय से प्रतिपादित भावानुकूल श्रेणी आरोहण करने वाले महामुनीश्वर ही परिणमन कर सकते हैं। इसीलिये निश्चयनय द्वारा प्रतिपादित अभेदरत्नत्रय प्राथमिक साधकों के लिये श्रद्धान का विषय होने पर भी आचरण का विषय नहीं है। परन्तु व्यवहारनय द्वारा प्रतिपादित व्यवहार रत्नत्रय प्राथमिक साधकों के लिए आचरण करने योग्य है तथा प्रयोजनवान है। परन्तु श्रेणी आरोहण करने वाले मुनिश्वरों के लिए व्यवहार रत्नत्रय प्रयोजनीय नहीं है।

किन्तु इस गाथा में स्पष्टीकरण करते हैं कि निर्विकल्प समाधि में निरत होकर रहने वाले सम्यग्दृष्टियों को भुतार्थ स्वरूप निश्चयनय ही प्रयोजनवान् हो ऐसा नहीं हैं। किन्तु उन्हीं निर्विकल्प-समाधिरतों में किन्हीं-किन्हीं को कभी सविकल्प अवस्था में मिथ्यात्व, विषय-कषाय दुर्ध्यान को दूर करने के लिए व्यवहारनय भी प्रयोजनवान् होता है। जैसे किसी को शुद्ध सोलहवानी के सुवर्ण का लाभ न हो तो नीचे के ही अर्थात् पन्द्रह, चौदहवानी का सोना भी ग्राह्य हो जाता है ऐसा कहते हैं:-

सुद्धो सुद्धोदेसो णादव्वो परमभावदरिसीहिं।
ववहारदेसिदो पुण जे दु अपरमे ट्ठिदा भावे।। (समयसार)

शुद्ध निश्चयनय शुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला है वह परम शुद्धात्मा की भावना में लगे हुए पुरुषों के द्वारा अङ्गीकार करने योग्य हैं। परन्तु जो पुरुष अशुद्ध व नीचे की अवस्था में स्थिर है उनके लिए व्यवहार नय ही कार्यकारी है।

(सुद्धो सुद्धादेसो) शुद्ध निश्चयनय शुद्ध द्रव्य का कथन करने वाला है (णादव्वो परम भावदरसीहिं) वह शुद्धता को प्राप्त हुए आत्मदर्शियों के द्वारा जानने भावने अर्थात् अनुभव करने योग्य है। क्योंकि वह सोलहवानी स्वर्ण के समान अभेदरत्नत्रय स्वरूप समाधिकाल में प्रयोजनवान् होता है। (व्यवहार देसिदो) किन्तु व्यवहार अर्थात् विकल्प भेद अथवा पर्याय के द्वारा कहा गया जो व्यवहारनय है वह पुनः पन्द्रह, चौदह आदि वानी के स्वर्ण लाभ के समान उन लोगों के लिए प्रयोजनवान् है। (जे दु) जो लोग अपर में (टिठ्दाभावे) अशुद्ध रूप शुभोपयोग में जो कि असंयत सम्यग्दृष्टि अथवा श्रावक की अपेक्षा जो सराग सम्यग्दृष्टि लक्षण वाला है और प्रमत्त अप्रमत्त संयत लोगों की अपेक्षा भेदरत्नत्रय लक्षण वाला है ऐसे शुभोपयोग रूप जीव पदार्थ में स्थित हैं।

यदि कहा जाय कि व्यवहारनय असत्य है सो भी ठीक नहीं है क्योंकि उसमें व्यवहार का अनुसरण करने वाले शिष्यों की प्रवृत्ति देखी जाती है। अतः जो व्यवहारनय बहुत जीवों का अनुग्रह करने वाला है उसी का आश्रय करना चाहिए ऐसा मन में निश्चय करके गौतम स्थविर ने...

यदि कहा जाय कि पुण्यकर्म के बाँधने के इच्छुक देश-व्रतियों को मंगल करना युक्त है किन्तु कर्मों के क्षय के इच्छुक मुनियों को मंगल करना युक्त नहीं है ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि पुण्यबन्ध के कारणों के प्रति उन दोनों में कोई विशेषता नहीं है। अर्थात् पुण्यबन्ध के कारणभूत कामों को जैसे देशव्रती श्रावक करते हैं वैसे ही मुनि भी करते हैं मुनि के लिए एकान्त से निषेध नहीं है। यदि ऐसा माना जाय तो जिस प्रकार मुनियों को मंगल के परित्याग के लिये यह कहा जा रहा है उसी प्रकार उनके सरागसंयम के भी परित्याग का प्रसंग प्राप्त होता है। क्योंकि देशव्रत के

समान सरागसंयम भी पुण्यबंधन का कारण है।

यदि कहा जाय कि मुनियों के सरागसंयम के परित्याग का प्रसंग प्राप्त होता है तो होओ, सो भी बात नहीं है। क्योंकि मुनियों के सरागसंयम के परित्याग का प्रसंग प्राप्त होने से उनके मुक्ति गमन के अभाव का भी प्रसंग प्राप्त होता है।

यदि कहा जाय कि सरागसंयम गुण श्रेणी निर्जरा का कारण है क्योंकि उससे बन्ध की अपेक्षा मोक्ष अर्थात् कर्मों की निर्जरा असंख्यात गुणी होती है। अतः सरागसंयम में मुनियों की प्रवृत्ति का होना योग्य है सो ऐसा भी निश्चय नहीं करना चाहिये क्योंकि अरहंत नमस्कार तत्कालीन बन्ध की अपेक्षा असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा का कारण है, इसलिये सरागसंयम के समान उसमें भी मुनियों की प्रवृत्ति प्राप्त होती है।

आदि विषय व्यवहार को अप्रमाणपुरस्सरत्व का प्रसंग प्राप्त होता है और अप्रमाणपूर्वक होने वाला व्यवहार सत्यता को प्राप्त नहीं हो सकता है। यदि कहा जाय कि सभी व्यवहार अप्रमाणपूर्वक होने से असत्य मान लिये जाय, सो भी बात नहीं है। क्योंकि जो व्यवहार बाधारहित होते हैं उन सबमें सत्यता पाई जाती है।

यहाँ शिष्य शंका करता है कि आश्चर्य भगवान्! ध्यान तो मोक्ष का मार्गभूत है अर्थात् मोक्ष का कारण है और जो मोक्ष को चाहने वाला पुरुष उसको पुण्यबन्ध के कारण होने से व्रत में त्यागने योग्य अर्थात् व्रतों से पुण्य का बंध होता है, और पुण्यबंध संसार का कारण है इसलिये मोक्षार्थी व्रतों का त्याग करता है और आपने तप श्रुत और व्रतों को ध्यान की पूर्णता के कारण कहे, सो यह आपका कथन कैसे घटता है? (सिद्ध होता है) अब इस शंका का उत्तर दिया जाता है कि केवल व्रत ही त्यागने योग्य है ऐसा नहीं है किन्तु पाप बंध का कारण जो हिंसा आदि भेदों के धारक अव्रत हैं वे भी त्यागने योग्य हैं। सो ही पूज्यपादस्वामी ने कहा है कि हिंसा आदि अव्रतों से पाप का बंध होता है और अहिंसादि व्रतों से पुण्य का बंध होता हैं तथा मोक्ष जो है वह पाप व पुण्य इन दोनों के नाश से होता है, इस कारण मोक्ष को चाहने वाला पुरुष जैसे अव्रतों का त्याग करता है, वैसे ही अहिंसादि व्रतों का भी त्याग करे।

विशेष यह है कि मोक्षार्थी पुरुष पहले अव्रतों का त्याग करके पश्चात् व्रतों का धारक होकर निर्विकल्प-समाधि (ध्यान) रूप आत्मा के परमपद को प्राप्त होकर

तदन्तर एक देश व्रतों का भी त्याग कर देता है। यह भी उन्हीं श्री पूज्यपादस्वामी ने समाधिशतक में कहा है कि ''मोक्ष को चाहने वाला पुरुष अव्रतों का त्याग करके व्रतों में स्थित होकर आत्मा के परमपद को पावे और उस आत्मा के परम पद को प्राप्त होकर उन व्रतों को भी त्याग करे।''

इस पूर्वकथन में विशेष यह है कि मन-वचन और काय की गुप्तिरूप और निज शुद्ध आत्मा के ज्ञानस्वरूप जो निर्विकल्प ध्यान है उसमें व्यवहार रूप जो एक देश व्रत है उनका त्याग किया जाता है और जो संपूर्ण शुभ तथा अशुभ की निवृत्ति रूप निश्चय व्रत हैं उनका स्वीकार ही किया गया है और त्याग नहीं किया गया है। प्रसिद्ध जो अहिंसादि महाव्रत हैं वे एकदेश व्रत कैसे हो सकते है? ऐसी शंका करो तो समाधान उत्तर यह है कि अहिंसा महाव्रत में यद्यपि जीवों के घात (मारने) से निवृत्ति (रहितता) है, तथापि जीवों की रक्षा करने में प्रवृत्ति है। इसी प्रकार अचौर्य महाव्रत में यद्यपि नहीं दिये हुए पदार्थ के ग्रहण करने का त्याग है तो भी दिये गये पदार्थों में ग्रहण करने की प्रवृत्ति है, इत्यादि एकदेश प्रवृत्ति की अपेक्षा से ये पाँचों महाव्रत हैं। इन एकदेश रूप व्रतों का मन, वचन और काय की गुप्तिस्वरूप जो विकल्परहित ध्यान है उस समय में त्याग है और समस्त शुभ तथा अशुभ की निवृत्ति रूप जो निश्चयव्रत है उसका त्याग नहीं है।

प्रश्न–त्याग शब्द का क्या अर्थ है?

उत्तर–जैसे हिंसा आदि रूप पाँच अव्रतों में रहितपना है उसी प्रकार जो अहिंसा आदि पंचमहाव्रत रूप एक देशव्रत हैं उनमें रहितपना है। यही त्याग शब्द का अर्थ है।

इन एकदेश व्रतों का त्याग किस कारण से होता है? ऐसा पूछो तो उत्तर यह है कि मन-वचन और काय इन गुप्त रूप जो अवस्था है उसमें प्रवृत्ति तथा निवृत्ति रूप जो विकल्प है उसका स्वयं ही अवकाश नहीं है, अर्थात् मन, वचन और काय की गुप्तिरूप ध्यान में कोई प्रकार का भी विकल्प नहीं होता और अहिंसादिमहाव्रत विकल्परूप हैं इसलिये वे त्रिगुप्तिरूप ध्यान में रह सकते हैं और जो दीक्षा के पश्चात् दो घटिका (घड़ी) प्रमाणकाल में ही भरत चक्रवर्ती मोक्ष पधारे है उन्होंने भी जिनदीक्षा को ग्रहण करके, क्षणमात्र (थोड़े समय तक) विषय और कषायों की रहिततारूप जो

व्रत का परिणाम है उसको करके तत्पश्चात् शुद्धोपयोग रूप जो रत्नत्रय उस स्वरूप जो निश्चय नाम का धारक और वीतराग सामायिक नाम का धारक निर्विकल्प ध्यान है उसमें स्थित होकर केवल ज्ञान को प्राप्त हुए हैं। परन्तु श्री भरत जी के थोड़े समय व्रत परिणाम रहा इस कारण लोग भरतजी के व्रत परिणाम को नहीं जानते हैं। अब श्री भरतजी की दीक्षा के विधान का कथन करते है। श्री वीर वर्द्धमान स्वामी तीर्थंकर परमदेव के समवशरण में श्रेणिक महाराज ने प्रश्न किया कि 'हे भगवन्! श्री भरत चक्रवर्ती के जिन दीक्षा को ग्रहण करने के पीछे कितने काल में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ?' इस पर श्री गौतम स्वामी गणधर देव ने उत्तर दिया कि हे श्रेणिक राजन्! बंध के कारण भूत जो केश (बाल) हैं उनको पाँच मुष्टियों से उखाड़कर तोड़ते हुए अर्थात् पंचमुष्टि लोंच करने के अनन्तर ही श्री भरत चक्रवर्ती केवल ज्ञान को प्राप्त हुए।

परमात्मा की मोक्षावस्था

नित्यमपि निरूपलेप, स्वरूप समवस्थितो निरूपघातः।
गगनमिव परम पुरुषः परम पदे स्फुरति विशदतमः।।(223)

Ever free from (karmic) contact, free from obstruction, fully absorbed in own' s self, the highest supremely pure soul is effulgent, like the sky, in the highest stage.

समस्त पुरुषार्थ सिद्धि को प्राप्त करने वाला परम पुरुष परम पद रूप सिद्ध पद में स्फुरायमान होता है। वह परम पुरुष सदा कर्मादि लेप से रहित, स्वस्थ्य रूप में स्थित, समस्त घात प्रतिघात बाधाओं से रहित गगन के समान लेप से रहित चिज्जयोति रूप से सिद्ध पद में अतिशय रूप से स्फुरायमान होता है।

परमात्मा का स्वरूप

कृतकृत्यः परमपदे, परमात्मा सकल-विषय विरतात्मा।
परमानन्द-निमग्नो, ज्ञानमयो नन्दति सदैव।।(224)

Quite contented, all knowables being reflected in him, immersed in supreme bliss, the emodiment of knowledge, the Paramatma is eternally happy in the highest stage..

परमपद स्वरूप प्रकृष्ट सिद्ध पद में वह परम पुरुष/परमात्मा/शुद्धात्मा कृतकार्य होकर, सकल विषय से विरक्त होकर परमानंद में अर्थात् अनन्त सुख में लीन रहता है। वह परमात्मा पूर्णतया ज्ञानधन स्वरूप होकर मुक्त अवस्था में विराजमान होता है।

समीक्षा : कर्मबन्ध से रहित होने के बाद जीव के सम्पूर्ण वैभाविक भाव नष्ट हो जाते हैं क्योंकि वैभाविक भाव के निमित्त भूत कारणों का अभाव हो जाता है। वैभाविक भाव के नष्ट होने पर स्वाभाविक भाव नष्ट नहीं होते परन्तु स्वाभाविक भाव पूर्ण शुद्ध रूप में प्रगट हो जाते हैं।

ज्ञानावरणहानाते केवलज्ञानशालिनः।
दर्शनावरणच्छेदादुद्यत्केवलदर्शनाः।।(37) (त.सार)
वेदनीयसमुच्छेदादव्याबाधत्वमाश्रिताः।
मोहनीयसमुच्छेदात्सम्यक्त्वमचलं श्रिताः।।(38)
आयुः कर्मसमुच्छेदादवगाहनशालिन।
नामकर्मसमुच्छेदात्परमं सौक्ष्म्यमाश्रिताः।।(39)
गोत्रकर्मसमुच्छेदाऽगौरवलाघवाः।
अन्तरायसमुच्छेदादनन्तवीर्यामाश्रिताः।।(40)

वे सिद्ध भगवान् ज्ञानावरण कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान से सुशोभित रहते हैं, दर्शनावरण कर्म का क्षय होने से केवलदर्शन से सहित होते है, वेदनीय कर्म का क्षय होने से अव्यबाधत्वगुण को प्राप्त होते हैं, मोहनीय कर्म का विनाश होने से अविनाशी सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं, आयुकर्म का विच्छेद होने से अवगाहना को प्राप्त होते हैं, नामकर्म का उच्छेद होने से सूक्ष्मत्वगुण को प्राप्त हैं, गोत्रकर्म का विनाश होने से सदा अगुरुलघुगुण से सहित होते हैं और अन्तराय का नाश होने से अनन्त वीर्य को प्राप्त होते हैं।

तादात्म्यादुपयुक्तास्ते केवलज्ञानदर्शन।
सम्यक्त्वसिद्धतावस्था हेत्वभावाच्च निः क्रियाः।।(43)

वे सिद्ध भगवान् तादात्म्यसम्बन्ध होने के कारण केवलज्ञान और केवलदर्शन के विषय में सदा उपयुक्त रहते हैं तथा सम्क्यत्व और सिद्धता अवस्था को प्राप्त हैं। हेतु का अभाव होने से वे निःक्रिया-क्रिया से रहित हैं।

सिद्धों के सुख का वर्णन

संसारविषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखम्।
अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः।।(45)

सिद्धों का सुख संसार के विषयों से अतीत, अविनाशी, अव्याबाध तथा परमोत्कृष्ट है ऐसा परमऋषियों ने कहा हैं।

शरीर रहित सिद्धों के सुख

स्यादेतदशरीरस्य जन्तोर्नष्टाष्टकर्मणः।
कथं भवति मुक्तस्य सुखमित्युतरं श्रृणु।(746)
लोके चतुर्ष्विहार्थेषु सुखशब्दः प्रयुज्यते।
विषये वेदनाभावे विपाके मोक्ष एवं च।।(47)
सुखो वह्निः सुखो वायुर्विषयेष्विह कथ्यते।
दुःखाभावे च पुरुषः सुखितोऽस्मीति भाषते।।(48)
पुण्यकर्मविपाकाच्च सुखमिष्टेन्द्रियार्थजम्।
कर्मक्लेशविमोक्षाच्च मोक्षे सुखमनुत्तमम्।।(49)

यदि कोई प्रश्न करे कि शरीर रहित एवं अष्टकर्मों को नष्ट करने वाले मुक्तजीव के सुख कैसे हो सकता है तो उसका उत्तर यह है, सुनो! इस लोक में विषय, वेदना का अभाव, विपाक और मोक्ष इन चार अर्थों में सुख शब्द कहा जाता है। अग्नि सुख रूप है, वायु सुख रूप है, यहां विषय अर्थ में सुख शब्द कहा जाता है। दुःख का अभाव होने पर पुरुष कहता है कि मैं सुखी हूँ यहाँ वेदना के अभाव में सुख शब्द प्रयुक्त हुआ है। पुण्यकर्म के उदय से इन्द्रियों के इष्ट पदार्थों से सुख उत्पन्न हुआ है। यहाँ विपाक-कर्मोदय में सुख शब्द का प्रयोग है। और कर्मजन्यक्लेश से छुटकारा मिलने से मोक्ष में उत्कृष्ट सुख होता है। यहाँ मोक्ष अर्थ में सुख का प्रयोग है।

भारतीय दर्शन में ईश्वर का स्वरूपः-

भारतीय दर्शन के अनुसार ईश्वर कोई व्यक्ति जैसा नहीं है जो स्वर्ग में बैठकर तानाशाह की भाँति इस सृष्टि पर शासन करता है बल्कि उसके अपने नियम हैं।

परमात्मा करता नहीं है, उसे कर्म के प्रति कोई मोह या आसक्ति नहीं है। वह निरपेक्ष सत्ता है। सभी कर्म प्रकृति के गुणों के अनुसार ही हो रहे हैं। ईश्वर केवल साक्षी है, दृष्टा मात्र है। प्रकृति जड़ है तथा उसके अपने नियम हैं जिसके अनुसार उसकी चेतना की उपस्थिति में क्रिया एवं प्रतिक्रिया होती है। ईश्वर मनुष्य के पापों का हिसाब भी नहीं रखता। वह कोई न्यायाधीश जैसा भी नहीं है जो केवल पापों का दण्ड मात्र देने के लिए बैठा हो। उसके लिए ऐसा कहना उसके गौरव को कम करना है। ईश्वर न कर्म कराता है, न बाध्य ही करता है। वह निर्विकार, समदर्शी, दयालु, न्यायकारी एवं उदासीन है। उसकी दयालुता एवं न्यायकारिता उसके कर्म नियमों के अनुसार स्वतः हो जाती है। व्यक्ति विशेष के प्रति विशेष रूप से वह दयालुता नहीं दिखाता। भक्तों के प्रति वह जो दयालुता दिखाता है वह भी नियमों के अनुसार ही दिखाता है।

जो व्यक्ति यह मानते हैं कि ईश्वर ही सब कुछ कराता है, सब कुछ उसी से हो रहा है, उसकी मर्जी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता तो फिर विधि निषेध शास्त्रों की आवश्यकता ही नहीं थी कि ऐसा करना चाहिए और ऐसा नहीं करना चाहिए फिर तो पापी, दुष्ट, हत्यारे आदि भी कह सकते थे कि सब ईश्वर ने कराया, वह निर्दोष है। यदि ईश्वर ही मनुष्य से कर्म कराता है तो मनुष्य को उसका फल क्यों भोगना पड़ता है? कर्म कराए ईश्वर और फल भोगे जीव, यह कौन-सा न्याय हुआ? पहले ईश्वर पाप कराता है और फिर वही दण्ड देता है, ऐसा कोई भी ईश्वर हो सकता है? ऐसा ईश्वर अन्यायी एवं निर्दयी ही होगा। पाप और पुण्य न ईश्वर कराता है, न दण्ड देता है, न प्रेरणा देता है। ईश्वर के विधान के प्रतिकूल कर्म करने से ही वह दोषी होता है तथा दण्ड भोगता है। यदि ईश्वर किसी तानाशाह की भाँति स्वर्ग में बैठ कर स्वयं अपनी ही इच्छा से शासन चलाता है तो वह सीमित हो गया, उसकी सर्वव्यापकता समाप्त हो गई। फिर वह कण-कण में व्याप्त कैसे हो सकता है? यदि ईश्वर तानाशाह के रूप में है तो मनुष्य उसके हाथ की कठपुतली मात्र बन कर रह जाता है जिससे उसके कर्म की स्वतन्त्रता ही छिन जाती है। वह सारा कार्य उसी की इच्छा पूर्ति हेतु करता रहे तो उसके स्वयं के पुरुषार्थ एवं उन्नति की सम्भावना ही समाप्त हो जाती है, मनुष्य के अपने जीवन में सुधार का कोई उपाय ही नहीं रह जाता तथा मुक्ति की सम्भावना ही समाप्त हो जाती, वह सदा गुलाम ही बना रहता। सुधार का कोई उपाय न होने से एक

जन्म में की गई गलती को वह हर जन्म में दोहराता ही रहता। फिर योनि भी कर्म योनि न रहकर पशुओं की भाँति भोग योनि मात्र रह जाती। उसकी बुद्धि तथा विवेक का कोई उपयोग ही नहीं होता। उसकी उच्चतम स्थिति मुक्ति तक पहुँचने की क्षमता ही समाप्त हो जाती। फिर ईश्वर को निरंकुश तानाशाह के रूप में मानने पर यह स्पष्ट नहीं होता कि उसका सृष्टि रचना का उद्देश्य क्या था? क्या उसने सृष्टि की रचना अपनी वासनापूर्ति हेतु की? यदि ऐसा है तो उसमें भी मनुष्य की ही भांति कामना, वासना, इच्छाएँ, अहंकार आदि विद्यमान हैं। यदि ऐसा है तो वह भी सुखी, दुखी, प्रसन्न एवं क्रोधित होता होगा आदि। किन्तु उस ईश्वर के लिऐ ऐसी कल्पना करना उसे भी मनुष्य की ही श्रेणी में रखना है जो मनुष्य की क्षुद्र बुद्धि द्वारा की गई कल्पना का ही परिणाम है ऐसी कल्पना उसकी महानता को घटाती ही है। **(कर्मफल और पुनर्जन्म नंदलाल दशोरा)**

सत्य का अनन्त वैश्विक स्वरूप

(व्यवहार सत्य < परमसत्य या आध्यात्मिक सत्य)

(इन्द्रिय-मन-वचन-यंत्र-कानून-लौकिक वैज्ञानिक सत्य परे हैं परम व आध्यात्मिक सत्य)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः- जय हनुमान.../ सायोनारा....)

सत्य के अनन्त स्वरूप को जानो, द्रव्य गुण पर्यायों से पहचानो।
प्रमाण नय निक्षेप से यह जानो, अनेकान्तमय सापेक्ष से मानो।। (1)
लोक व्यवहार ही नहीं परमसत्य, कानून राजनीति से भी परे परमसत्य।
दार्शनिक वैज्ञानिक से भी न ज्ञात सर्वसत्य, इन्द्रिय मन वचन यंत्र से परे भी सत्य।। (2)
रूढ़ि परम्परा-अन्धविश्वास भी परे, जातिमतपंथवादविवाद परे।
देखा सुना पढ़ा लिखा से भी परे, परमसत्य भौतिक विश्व से भी परे।। (3)
यथा आकाश नीला गोलगुंबजाकार दिखे, स्थूल चाक्षुष पुद्गल चक्षु से दिखे।
दूर से नक्षत्रादि छोटे-छोटे दिखे, तथाहि अल्पज्ञ परमसत्य को न जाने।। (4)

आधुनिक विज्ञान तक न जाने एक अणुतक, भौतिक तत्त्व जानते केवल पांच प्रतिशत(5%) तक।
स्वयं को भी न जानते वैज्ञानिक अभी तक, तब वे कैसे जानेंगे परम सत्य तक।। (5)
व्यवहार से है मेरा-तेरा ये देश, तथाहि धन-सम्पत्ति से ले अशेष।
मेरी परम्परा जाति भाषा ही सत्य, मैं जो जानता मानता वह ही सत्य।। (6)
उक्त सभी नहीं होते परमसत्य, ''सद्द्रव्यलक्षणं'' होता परम सत्य।
स्व-स्वशुद्धात्म होता स्वआध्यात्मसत्य, स्वद्रव्यक्षेत्रकालभाव स्वभावसत्य।। (7)
स्वतनमनइन्द्रिय स्वकर्मजसत्य, रागद्वेषमोहकामक्रोधादि विभावसत्य।
मातापिताशत्रुमित्रादि संयोगसत्य, सत्ता-सम्पत्ति आदि परिग्रहसत्य।। (8)
विवाह से पति-पत्नी सामाजिकसत्य, दोनों के अब्रह्मचर्य लौकिकसत्य।
कानून मान्य हिंसादि पाप कानूनीसत्य, यथा वधशाला मद्यादि व्यापारमान्य।। (9)
पृथक्-पृथक् जाति पराम्परा देशादि में, प्रचलित मान्य अनेक असत्य।
तथापि वे सभी नहीं परमसत्य, यथा काला-गोरा भेदभाव ऊँच-नीच।। (10)
हितकर सत्य कटु वचन भी सत्य, अहितकर मधुर वचन भी असत्य।
मोक्ष हेतु राज्यत्याग उपेदश भी सत्य, बन्धनकारक विवाह हेतु कहना भी असत्य।।(11)
तथाहि रागद्वेषमोहईर्ष्यातृष्णाकारक, हिंसाचोरीकुशीलझूठपरिग्रह कारक।
परनिन्दा-अपमान-वाद-विवादकारक, फैशन-व्यसन के मधुर वचन भी असत्य।। (12)
शोषण मिलावट ठगी के विज्ञापन असत्य, तथाहि भाषण उपदेश सिनेमा नाटक असत्य।
शिक्षा-राजनीति-कानून से ले धर्म तक, यदि उक्त भाव-व्यवहार वे भी असत्य।। (13)
सद्भ्यो हित हेतु होता आध्यात्मसत्य, आध्यात्मानुकूल अन्य सभी भी सत्य।
षट्द्रव्य होते वैश्विक परमसत्य, हितमितप्रियवचन नैतिक सत्य।। (14)
सत्य है परमेश्वर सत्य सब के ही आधार, आकाश से अधिक सर्वव्यापक।
सत्य है सनातन सत्य सार्वभौम, अस्तिनास्तिअवक्तव्य आदि सप्तभेद।। (15)
उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप होते हैं सत्य/(द्रव्य), गुणपर्यायसहित होते हैं सत्य।
इन्द्रिययंत्रगम्य सभी विभाव (अशुद्ध) सत्य, सर्वज्ञज्ञानगम्य ही सभी परमसत्य।। (16)
ज्ञानज्ञाताज्ञेय हेय व उपादेय, हितअहित-ग्राह्य-अग्राह्य-त्याज्य।
वाच्य-वाचक व मूर्तिक-अमूर्तिक, सब कुछ शुद्धाशुद्ध सत्य के ही रूप।। (17)

आध्यात्मसत्य प्राप्ति हेतु चक्री तक बनते सन्त, ख्यातिपूजालाभप्रसिद्धि रिक्त। आध्यात्मिक साधना से बनते ''सत्यशिवसुन्दर'', ''सच्चिदानन्द'' बनना 'कनक' का परम लक्ष्य।। (18)

नन्दौड़, दि-19/9/2019, रात्रि 9.21

अनन्त गुण-धर्मात्मक पदार्थ

विश्व में जितने द्रव्य पाये जाते हैं उनमें केवल 1, 2 संख्यात, असंख्यात धर्म नहीं रहते हैं, अपितु उनमें अनंत धर्म रहते हैं। द्रव्य अनंत धर्म, अनंत गुण, अनंत पर्यायों का पिण्ड स्वरूप है। उपरोक्त धर्मादि को छोड़कर किसी भी द्रव्य का अस्तित्व भी नहीं रह सकता है जैसा कि आचार्य ने कहा है-

अनन्तधर्मात्मकमेव तत्त्वमतोऽन्यथा सत्त्वमसूपपादम्।
इति प्रमाणान्यपि ते कुवादि कुरंगसंत्रासनसिंहनादाः।। (22) स्यां मं.

प्रत्येक पदार्थ में अनन्त धर्म मौजूद हैं। पदार्थों में अनन्त धर्म माने विना, वस्तु की सिद्धि नहीं होती अतएव आपके प्रमाण कुवादी रूप मृगों को डराने के लिए सिंह की गर्जना के समान है। वस्तु में यदि अनन्त धर्म नहीं होंगे तब वस्तु का अस्तित्व ही नहीं होगा।

जं वत्थुं अणेयतं तं चि य कज्ज करेदि णियमेण।
बहुधम्मजुदं अत्थं कज्जकर दीसदे लोए।।

जो वस्तु अनेकान्तामक अर्थात् अनेक धर्मवाली है उसी के नियम से अर्थक्रिया-कारित्व रूप कार्य दिखाई देता है, किन्तु एकान्त धर्म युक्त द्रव्यों का संसार में अर्थक्रिया कारित्व रूप कार्य नहीं दिखाई देता है। जो अर्थक्रिया-कारित्व रूप कार्य नहीं करता है वह द्रव्य कैसे हो सकता है? इसीलिए प्रत्येक द्रव्य को अनेकान्तात्मक अर्थात् अनन्त धर्मात्मक होना चाहिए।

द्रव्य का लक्षण-सत्

सद्द्रव्य लक्षणम्। (29) मोक्ष.शा.

The differention of a Substance or reality is Sat, isness or being.

यह विश्व शाश्वतिक है, क्योंकि इस विश्व में स्थित समस्त द्रव्य भी शाश्वतिक हैं। आधुनिक विज्ञान में भी सिद्ध हो गया है कि शक्ति या मात्रा कभी भी नष्ट नहीं होती

है, परन्तु परिवर्तित होकर अन्य रूप हो जाती है। विज्ञान में कहा भी है-

Matter and energy neither be created nor be destroyed, each can be completely change into another from or into one another.

विज्ञान का मूलभूत सिद्धांत है कि किसी नई वस्तु की सृष्टि नहीं होती है एवं कोई वस्तु सम्पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होती केवल उसके आकार और पर्याय में परिवर्तन होता है।

दवियादि गच्छति ताइं ताइं सब्भाव पज्जयाइं जं।

दवियं तं मण्णते अणण्णभूदं तु सुत्तादो।। (9) प.का.

What flows or maintains its indentity through its several qualities and modifications, and what is not different from Satta or Substance, that is called Dravya by the all knowing.

उन-उन सद्भाव पर्यायों को जो द्रवित होता है, प्राप्त होता है, उसे द्रव्य कहते हैं-जो कि सत्ता अनन्यभूत है।

दव्वं सल्लखणं य उप्पादव्यय धुवत्त संजुत्तं।

गुणपज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हू।। (10)

Whatever has substantiality, has the dialectical triad or birth, death and permanence, and is the substratum of qualities and modes is Dravya, so say the all-knowing.

जो सत् लक्षण वाला है, जो उत्पादव्यय ध्रौव्य संयुक्त है अथवा जो गुणपर्यायों का आश्रय आधार है, उसे सर्वज्ञ भगवान् द्रव्य कहते हैं।

गुणपर्ययवद् द्रव्यम्। (28) तत्त्वार्थ.

Substance is possessed of attributes and modifications.

द्रव्य, गुण और पर्यायों का एक अखंड पिण्ड स्वरूप है। गुण को सामान्य, उत्सर्ग अन्वय भी कहते हैं, पर्याय को विशेष, भेद भी कहते हैं। ऐसे सामान्य और विशेष से सहित द्रव्य होता है। पंचास्तिकाय में कहा भी है-

पज्जयविजुदं दव्वं दव्वविजुत्तं व पज्जया णत्थि।

दोण्हं अणण्णभूदं भावं समणा परुविंति।।(12)

पर्यायों से रहित द्रव्य और द्रव्यरहित पर्यायें नहीं होती हैं। दोनों का अनन्यभाव श्रमण प्ररुपित करते हैं।

जिस प्रकार दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि से रहित गोरस नहीं होता है उसी प्रकार पर्यायों से रहित द्रव्य नहीं होता, जिस प्रकार गोरस से रहित दूध, दही, मक्खन, घी इत्यादि नहीं होते उसी प्रकार द्रव्य से रहित पर्यायें नहीं होती। इसीलिए, यद्यपि द्रव्य और पर्यायों का आदेशवशात्-विवक्षा वश कथंचित् भेद है तथापि, वे अस्तित्व में नियत (दृढ़-रूप से स्थित) होने के कारण अन्योऽन्यवृत्ति नहीं छोड़ती इसलिए वस्तुरूप में उनका अभेद है।

दव्वेण विणा गुणा, गुणेहिं दव्वं विणा ण संभवदि।
अव्वदिरित्तो भावो दव्वगुणाणं हवदि तम्हा।। (13)

द्रव्य के बिना गुण नहीं होते, गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता है, इसलिए द्रव्य और गुणों का अव्यतिरिक्त भाव अनन्यभाव है।

जिस प्रकार पुद्गल के पृथक स्पर्श-रस-गंध-वर्ण नहीं होते उसी प्रकार द्रव्य के बिना गुण नहीं होते, जिस प्रकार स्पर्श-रस-गंध-वर्ण से पृथक् पुद्गल नहीं होता उसी प्रकार गुणों के बिना द्रव्य नहीं होता। इसलिए, यद्यपि द्रव्य और गुणों का आदेशवशात् कथंचित् भेद है तथापि, वे एक अव्यतिरिक्तत्व में नियत होने के कारण अन्योऽन्यवृत्ति नहीं छोड़ते इसलिए वस्तुरूप से उनका भी अभेद है।

द्रव्य के बिना गुण नहीं हो सकते तथा गुणों के बिना द्रव्य संभव नहीं है इसलिए द्रव्य और गुणों का अभिन्न भाव होता है।

जैसे पुद्गल द्रव्य की सत्ता के बिना उसमें स्पर्श-रस, गंध, वर्ण नहीं पाये जा सकते वैसे द्रव्य के बिना गुण नहीं होते तथा जैसे वर्णादि गुणों को छोड़कर पुद्गल द्रव्य नहीं मिलता वैसे गुणों के बिना द्रव्य नहीं प्राप्त हो सकता है। द्रव्य और गुणों की सत्ता अभिन्न है-एक है, क्योंकि द्रव्य की अपेक्षा वे अभिन्न हैं। द्रव्य और गुणों के प्रदेश अभिन्न हैं-एक है क्योंकि क्षेत्र की अपेक्षा एकता है। द्रव्य और गुणों को एक ही काल उत्पाद-व्यय का अविनाभाव है, क्योंकि काल की अपेक्षा दोनों एक हैं। द्रव्य और गुण दोनों एक स्वरूप हैं क्योंकि उनका स्वभाव एक है। अतः द्रव्य और गुणों का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों की अपेक्षा अभेद है इसलिए द्रव्य और गुण अभिन्न हैं, एक है। अथवा दूसरा व्याख्यान करते हैं कि भाव जो पदार्थ वह द्रव्य और गुणों से अभिन्न हैं अर्थात् द्रव्य गुण रूप ही पदार्थ कहा गया है।

द्रव्यों के सामान्य गुण

द्रव्यों के दस सामान्य गुण इस प्रकार है-

(1) अस्तित्व, (2) वस्तुत्व, (3) द्रव्यत्व, (4) प्रमेयत्व, (5) अगुरुलघुत्व, (6) प्रदेशत्व, (7) चेतनत्व, (8) अचेतनत्व, (9) मूर्तत्व और (10) अमूर्तत्व।

(1) अस्तित्व गुणः-जिस द्रव्य का जो स्वभाव प्राप्त है उस स्वभाव से च्युत नहीं होना अस्तित्व गुण है। (विश्व विज्ञान रहस्य पृ.67 से)

(2) वस्तुत्व गुणः-सामान्य-विशेषात्मक वस्तु होती है, उस वस्तु का जो भाव है वह वस्तुत्व गुण है।

(3) द्रव्यत्व गुणः-जो अपने प्रदेश समूह के द्वारा अखण्डता से अपने स्वभाव और विभाव पर्यायों को प्राप्त होता है, होयेगा, हो चुका है वह द्रव्य है। उस द्रव्य का जो भाव है वह द्रव्यत्व गुण है।

(4) प्रमेयत्व गुणः-जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य किसी न किसी प्रमाण (ज्ञान) का विषय अवश्य होता है उसे प्रमेयत्व गुण कहते हैं।

(5) अगुरुलघुत्व गुणः-जो सूक्ष्म है, वचन के अगोचर है, हर समय परिणमनशील है और आगम प्रमाण से जाना जाता है वह अगुरुलघुगुण है अथवा जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य में द्रव्यपना कायम रहता है अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप नहीं होता है, एक गुण दूसरे गुण रूप नहीं होता है और द्रव्य में रहने वाले अनन्तगुण विखरकर अलग-अलग नहीं हो पाते हैं उस शक्ति को अगुरुलघुगुण कहते हैं।

(6) प्रदेशत्व गुणः-जिस गुण के निमित्त से द्रव्य, क्षेत्रता को प्राप्त हो वह प्रदेशत्व गुण है अर्थात् जिस गुण के कारण द्रव्य में कुछ आकार हो उसे प्रदेशत्वगुण कहते हैं।

(7) चेतनत्व गुणः-अनुभूति का नाम चेतना है। जिस शक्ति के निमित्त से स्व-पर की अनुभूति अर्थात् प्रतिभासकता होती है अर्थात् जाना जाता है वह चेतना गुण है।

(8) अचेतनत्व गुणः-जड़पने को अचेतन कहते हैं, अननुभवन सो अचेतनता है। चेतना का अभाव ही अचेतना हैं। इस गुण के माध्यम से स्व-पर का अनुभव नहीं होता है।

(9) मूर्तत्व गुणः-रूपादि भाव को अर्थात् स्पर्श, रस, गंध, वर्ण भाव को मूर्तत्व कहते हैं।

(10) अमूर्तत्व गुणः-स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से रहित भाव अर्मूतत्व है।

ये गुण एक से अधिक द्रव्य में पाए जाते हैं इसलिये सामान्य गुण हैं। जीव द्रव्य अनन्तानन्त होने के कारण तथा एक चेतनत्व सब जीवों के पाये जाने के कारण चेतनत्व गुण सामान्य है। पुद्गल द्रव्य अनन्त होने के कारण एवं सर्व पुद्गलों में मूर्तत्व गुण पाये जाने से मूर्तत्व गुण सामान्य है। जीव के अतिरिक्त अन्य पाँच द्रव्य अचेतन हैं इसलिये अचेतत्वगुण सामान्य है। पुद्गल को छोड़कर अन्य पाँच द्रव्य अमूर्तिक हैं इसलिये अमूर्तत्व गुण सामान्य है।

उपरोक्त दस सामान्य गुणों में से प्रत्येक द्रव्य में आठ-आठ गुण पाये जाते हैं और दो-दो नहीं पाए जाते हैं। जैसे जीव द्रव्य में अचेतनत्व और मूर्तत्व ये दो गुण नहीं है।

पुद्गल द्रव्य में चेतनत्व, अमूर्तत्व ये दो गुण नहीं है। धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य में चेतनत्व, मूर्तत्व ये दो गुण नहीं है। जीव में अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्वः प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व और अमूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यों में अस्तित्व, वस्तुत्व द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरु-लघुत्व, प्रदेशत्व और अचेतनत्व, अमूर्तत्व ये आठ गुण होते हैं।

सोलह विशेष गुणः-

द्रव्यों के 16 विशेष गुण इस प्रकार हैः-

(1) ज्ञान, (2) दर्शन, (3) सुख, (4) वीर्य, (5) स्पर्श, (6) रस, (7) गन्ध, (8) वर्ण, (9) गति हेतुत्व, (10) स्थिति हेतुत्व, (11) अवगाहन हेतुत्व, (12) वर्तना हेतुत्व, (13) चेतनत्व, (14) अचेतनत्व, (15) मूर्तत्व, (16) अमूर्तत्व।

(1) ज्ञानः-जिसके द्वारा जीव त्रिकाल विषयक समस्त गुण और अनेक प्रकार की पर्यायों को प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से जाने सो ज्ञान गुण है। बहिर्मुख चित्प्रकाश को ज्ञान कहते हैं। जिस शक्ति के द्वारा आत्मा, पदार्थ को साकार (सविकल्प) जानता है उसे ज्ञान कहते हैं। भूतार्थ का प्रकाश करने वाले अथवा सद्भाव का निश्चय करने वाले धर्म को ज्ञान कहते हैं।

(2) दर्शनः-अंतर्मुख चित्प्रकाश को दर्शन कहते हैं। जो अवलोकन करता है वह आलोक अर्थात् आत्मा है तथा वर्तन अर्थात् व्यापार वही वृत्ति है। अवलोकन अर्थात् आत्मा की वृत्ति तो अवलोकन वृत्ति या स्वसंवेदन है और वही दर्शन है। प्रकाश ज्ञान है, उस प्रकाश ज्ञान के लिए जो आत्मा का व्यापार सो प्रकाशवृत्ति है और वही दर्शन है। विषय और विषयी के योग्य देश में होने की पूर्वावस्था दर्शन है। सामान्य विशेषात्मक बाह्य पदार्थों को अलग-अलग भेद रूप से ग्रहण नहीं करके जो सामान्य ग्रहण रूप अवभासना होता है उसे दर्शन कहते हैं।

(3) सुखः-जो स्वभाविक भाव के आवरण के विनाश होने से आत्मिक शांतरस अथवा जो आनंद उत्पन्न होता है उसे सुख कहते हैं। सुख का लक्षण अनाकुलता है। स्वभाव प्रतिधान का अभाव ही सुख है। मोहनीय कर्म के उदय से इच्छा रूप आकुलता उत्पन्न होती है सो ही दुःख है। मोहनीय कर्म के अभाव में आकुलता का अभाव हो जाता है और आत्मिक परम आनंद उत्पन्न होता है वह सुख है।

(4) वीर्यः-जीव की शक्ति को वीर्य कहते हैं। आत्मा में अनंत वीर्य है, किन्तु अनादि-काल से वीर्यान्तराय कर्म से उसको घात कर रखा है। उसके क्षयोपशम के अनुसार कुछ वीर्य प्रगट होता है। पूर्ण क्षय होने के बाद अनंत वीर्य प्रकट होता है। ये चारों गुण जीव के विशेष गुण हैं।

(5) स्पर्शः-जो स्पर्श किया जाता है, अर्थात् स्पर्श इन्द्रिय के द्वारा जाना जाता है वह स्पर्श है। कोमल, कठोर, हल्का, भारी ठंडा, गर्म, रुखा, चिकना स्पर्श के आठ भेद है। वायु देखने में नहीं आने पर भी स्पर्श इन्द्रिय के द्वारा उसकी अनुभूति की जाती है इसलिए वायु भी पुद्गल है। सूर्य किरण में गर्म स्पर्श होने के कारण एवं दिखाई देने के कारण भी सूर्य किरण पुद्गल है।

(6) रसः-जो स्वाद को प्राप्त होता है वह रस। तीखा, कडुआ, खट्टा, मीठा, कसायला ये रस के पांच भेद हैं।

(7) गंधः-जो सूंघा जाता है वह गंध है। सुगंध-दुर्गंध के भेद से गंध दो प्रकार की होती है।

(8) वर्णः-जो देखा जाता है वह वर्ण है। काला, पीला, सफेद, नीला, लाल ये वर्ण मुख्य पाँच भेद हैं। स्पर्शादि के जो आठ आदि भेद बताए हैं, वे मूलभूत हैं।

प्रत्येक स्पर्शादि के संख्यात, असंख्यात और अनन्त भेद होते हैं। छाया एवं अंधकार में वर्ण होने के कारण वे भी पुद्गल हैं, क्योंकि अंधकार प्रकाश की भांति चक्षु से दिखाई देता है। जिसमें वर्ण होता है उसमें स्पर्शादि अविनाभावी गुण पाये जाने के कारण एवं पौद्गलिक इन्द्रिय के माध्यम से जानने के कारण अंधकार छायादि पुद्गल की पर्यायें हैं। इस प्रकार भी शंका नहीं करनी चाहिए कि जो चाक्षुष पदार्थ हैं वे प्रतिभासित होने में आलोक की अपेक्षा रखते हैं, परन्तु तम के प्रतिभास में प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। इसलिए तम चक्षु का विषय नहीं हैं? इसका समाधान यह है कि उल्लू आदि बिना प्रकाश के तम को देखते हैं। यह ठीक है कि अन्य चाक्षुष घट, पटादि बिना प्रकाश के हम नहीं देख सकते हैं, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि तम के देखने में भी प्रकाश की आवश्यकता पड़े। संसार में पदार्थों के विचित्र स्वभाव होते हैं। वे विचित्र स्वभाव होने के कारण ज्ञान में विचित्र रूप से प्रतिभासित होते हैं। पीत-स्वर्ण, श्वेत-मोती आदि में तेजस होने पर भी प्रकाश के प्रतिभासित नहीं होते, जबकि दीपक, सूर्य आदि दूसरों के प्रकाश का अवलम्बन नहीं लेते हैं। इसी प्रकार तम भी अपने विचित्र स्वभाव के कारण बिना प्रकाश से चक्षु का विषय होता है, अतः तम भी पुद्गल की पर्याय है। वर्तमान विज्ञान ने भी वैज्ञानिक पद्धति से प्रकाश एवं तम को पौद्गलिक सिद्ध कर दिया है। उपरोक्त स्पर्शादि चार विशेष गुण पुद्गल के हैं। उपरोक्त चारों में से किसी के कभी-कभी किसी एकादि गुण की प्रगटता रहती है, अन्य गुणों की नहीं तो भी उसमें अन्य शेष गुण न्यूनता रूप से रहते हैं। इसके कारण जैन सिद्धांत के अनुसार लोक में जो विभिन्न धातु आदि पाये जाते हैं वे सर्व पुद्गल ही हैं। ऑक्सीजन, हाइड्रोजन, स्वर्ण-चाँदी, रेडियम, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन आदि मौलिक एवं स्वतंत्र द्रव्य नहीं है, किन्तु एक पुद्गल का ही परिणमन या अवस्था विशेष हैं।

(9) गति हेतुत्वः-जीव और पुद्गल को गमन में सहकारी होना गति हेतुत्व है। धर्म द्रव्य का यह विशेष गुण है।

(10) स्थिति हेतुत्वः-जीव और पुद्गल को ठहरने में सहकारी होना स्थिति हेतुत्व है। अधर्म द्रव्य का यह विशेष गुण है।

(11) अवगाहन हेतुत्वः-समस्त द्रव्यों को अवकाश देना अवगाहन हेतुत्व है। आकाश द्रव्य का यह विशेष गुण है।

(12) वर्तना हेतुत्वः-समस्त द्रव्यों के वर्तन में (परिणमन) सहकारी होना वर्तना हेतुत्व है। काल द्रव्य का यह विशेष गुण है।

चेतनत्व एवं अचेनत्व आदि का पहले वर्णन किया जा चुका है। चेतनत्व समस्त जीवों में पाया जाता है इसलिए इसको सामान्य गुण कहा गया है, किन्तु पुद्गलादि में नहीं पाया जाता है इसलिए विशेष गुण कहा गया है। इसी प्रकार अन्य गुणों का भी जानना चाहिए।

शोध पत्र में दावा: गूगल के साइकामॉर ने हासिल की क्वांटम प्रोसेसर में श्रेष्ठता

सुपर कंप्यूटर लगाता 10,000 वर्ष 3 मिनट में ऐसी गणना

कैलीफोर्निया। कंप्यूटर की दुनिया में गूगल ने इतिहास रचकर बड़ी सफलता हासिल की है। गूगल के क्वांटम प्रोसेसर साइकामॉर ने अविश्वसनीय रूप में एक गणना को मात्र 3 मिनट और 20 सेकंड में पूरा कर लिया जिसे कोई अन्य भी अन्य सुपर कंप्यूटर 10,000 वर्ष में पूरा कर पाता।

गूगल ने इस रिसर्च पेपर को नेशनल एयरोनॉटिक्स एंड स्पेस एडमिनिस्ट्रेश (नासा) की बेवसाइट पर पोस्ट किया था लेकिन इसे बाद में हटा लिया। फाइनेंशियल टाइम्स के अनुसार गूगल का रिसर्च पेपर अब पेस्टबिन साइट पर उपलब्ध है।

क्वांटम कंप्यूटर होड़

आइबीएम, माइक्रोसॉफ्ट इंटेल आदि कंपनियां क्वांटम कंप्यूटर विकसित कर रही हैं। गूगल ने क्वांटम कंप्यूटर प्रोसेसर साइकामॉर पर जानकारी सार्वजनिक नहीं की है।

क्वांटम टेक्नोलॉजी

भविष्य है

हैल्थकेयर, कम्युनिकेशन, फाइनेंशियल सर्विसेज, ट्रांसपोर्ट आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस के क्षेत्र में बड़े कार्य होंगे।

खतरा भी

साइबर सुरक्षा को बड़ा खतरा भी है। क्योंकि इससे परंपरागत इंटरनेट सिक्युरिटी प्रोग्राम्स को ब्रेक किया जा सकता है।

बड़ी चुनौती

क्वांटम प्रोसेसर सुपरकंडक्टिविटी यानी पूर्ण जीरो डिग्री तापमान पर कार्य करता है। तापमान में फर्क से क्यूबिट पर असर।

क्या हैं क्वांटम

क्वांटम कंप्यूटर ऑन-ऑफ दोनों स्टेट में रहता है। क्वांटम मैकेनिक्स एटम (अणु) के पार्टिकल्स (पदार्थ) को सूक्ष्म रूप में तेजी से संचालित करता है। इससे गणना तेज होती है।

दशकों से आधुनिक कंप्यूटर बाइनरी कोड पर आधारित होते हैं। इसके बाद क्लासिकल कंप्यूटर ने जीरो व वन्स पर आधारित बिट्स टैक्नोलॉजी अपनाई। अब क्वांटम कंप्यूटर प्रोसेसर में सुपरपोजीशंस से पार्टिकल्स से गणना को बहुत तेज किया जा सकता है। **(रा.पत्रिका)**

वस्तु अनन्त धर्मात्मक

संति अणंताणंत तीसु वि कालेसु सव्व-दव्वाणि।
सव्वं पि अणेयंत तत्तो भणिदं जिणेंदेहिं।। (224) का. अनु.

सब द्रव्य तीनों ही कालों में अनन्तानंत है। अतः जिनेन्द्र देव ने सभी को अनेकान्तात्मक कहा है।

तीनों ही कालों में प्रत्येक द्रव्य अनन्तानन्त है, क्योंकि प्रति समय प्रत्येक द्रव्य में नवीन-नवीन पर्याय उत्पन्न होती है और पुरानी पर्याय नष्ट हो जाती है फिर भी द्रव्य की परम्परा सदा चालू रहती है। अतः पर्यायों के अनन्तानन्त होने के कारण द्रव्य भी अनन्तानन्त है। न पर्यायों का ही अन्त आता है और न द्रव्य का ही अन्त आता है। इसी से जैनधर्म में प्रत्येक वस्तु को अनेक धर्मवाली कहा है। इसका खुलासा इस प्रकार है। जैनधर्म में सत् ही द्रव्य का लक्षण है, असत् या अभाव नामक कोई स्वतन्त्र तत्त्व जैन धर्म में नहीं माना किन्तु जो सत् है वही दृष्टि बदलने से असत् हो जाता है। न कोई वस्तु केवल सत् ही है और न कोई वस्तु केवल असत् ही है। यदि प्रत्येक वस्तु को केवल सत् ही माना जायेगा तो सब वस्तुओं के सर्वथा सत् होने से उनके बीच में जो भेद देखा जाता है उसका अभाव हो जायेगा और उसके अभाव

होने से सब वस्तुएँ परस्पर में एकमेक हो जायेगी। उदाहरण के लिये, घट और पट ये दो वस्तु हैं। किन्तु जब हम किसी को घट लाने को कहते हैं तो वह घट ही लाता है और जब हम पट लाने को कहते हैं तो पट ही लाता है। इससे सिद्ध है कि घट घट ही है पट नहीं है, और पट पट ही है घट नहीं है। अतः दोनों का अस्तित्व स्व-स्व मर्यादा में ही सीमित है, उसके बाहर नहीं है। यदि वस्तुएँ इस मर्यादा का उल्लंघन कर जाएं तो सभी वस्तुएँ सब रूप हो जायेंगी। अतः प्रत्येक वस्तु स्वरूप की अपेक्षा से ही सत् है और पररूप की अपेक्षा से असत् है। जब हम किसी वस्तु को सत् कहते हैं तो हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि वस्तु स्वरूप की अपेक्षा से ही सत् कही जाती है, अपने से अन्य वस्तुओं के स्वरूप की अपेक्षा संसार की प्रत्येक वस्तु असत् है। देवदत्त का पुत्र संसारभर के मनुष्यों का पुत्र नहीं है और न देवदत्त संसारभर के पुत्र का पिता है। इससे क्या सिद्ध नहीं होता कि देवदत्त का पुत्र है और नहीं भी है। इसी तरह देवदत्त पिता है और नहीं भी है। अतः संसार में जो कुछ सत् है वह किसी अपेक्षा से असत् भी है। सर्वथा सत् या सर्वथा असत् कोई वस्तु नहीं है। अतः एक ही समय में प्रत्येक द्रव्य सत् भी है और असत् भी है। स्वरूप की अपेक्षा सत् और परद्रव्य की अपेक्षा असत् है। इसी प्रकार एक ही समय में प्रत्येक वस्तु नित्य भी है और अनित्य भी है। द्रव्य की अपेक्षा नित्य है, क्योंकि द्रव्य का विनाश नहीं होता और पर्याय की अपेक्षा अनित्य है, क्योंकि पर्याय नष्ट होती है तथा एक ही समय में प्रत्येक वस्तु एक भी है और अनेक भी है। पर्याय की अपेक्षा अनेक है क्योंकि एक वस्तु की अनेक पर्यायें होती हैं और द्रव्य की अपेक्षा ऐक है क्योंकि एक ही समय में प्रत्येक वस्तु भिन्न भी है और अभिन्न भी है। गुणी होने से अभेद रूप है और गुणों के अपेक्षा भेद रूप है; क्योंकि एक वस्तु में अनेक गुण होते हैं। इस तरह वस्तु अनेक धर्मात्मक है। उस अनन्त धर्मात्मक वस्तु को जानना उतना कठिन नहीं है जितना शब्दों के द्वारा उसका कहना कठिन है; क्योंकि एक ज्ञान अनेक धर्मों को एक साथ जान सकता है, किन्तु एक शब्द एक समय में वस्तु के एक ही धर्म को कह सकता है। इस पर भी शब्द की प्रवृत्ति वक्ता के अधीन है। वक्ता वस्तु के अनेक धर्मो में से किसी एक धर्म का मुख्यतया से वचन व्यवहार करता है। जैसे देवदत्त को एक ही समय में उसका पिता भी पुकारता है और उसका पुत्र भी पुकारता है। पिता उसे 'पुत्र' कहकर पुकारता

है और उसका पुत्र उसे 'पिता' कहकर पुकारता है, किन्तु देवदत्त केवल पिता की दृष्टि से देवदत्त का पुत्रत्व धर्म मुख्य है और शेष धर्म गौण हैं और पुत्र की दृष्टि से देवदत्त का पितृत्वधर्म मुख्य है और शेष धर्म गौण है; क्योंकि अनेक धर्मात्मक वस्तु के जिस धर्म की विवक्षा होती है, वह धर्म मुख्य कहाता है और शेष धर्म गौण। अतः वस्तु के अनेक धर्मात्मक होने और शब्द में पूरे धर्मों को एक साथ एक समय में कह सकने की सामर्थ्य न होने के कारण, समस्त वाक्यों के साथ 'स्यात्' शब्द व्यवहार आवश्यक समझा गया है, जिससे सुनने वालों को कोई धोखा न हो। यह 'स्यात्' शब्द विवक्षित धर्म में इतर धर्मों का द्योतक या सूचक होता है। 'स्यात्' का अर्थ है, 'कथंचित्' या 'किसी अपेक्षा से'। यह बतलाता है कि जो सत् वह किसी अपेक्षा से ही सत् है। अतः प्रत्येक वस्तु 'स्यात् सत् और स्यात् असत् है। इसी का नाम स्याद्वाद है। वस्तु के प्रत्येक धर्म को लेकर अविरोधपूर्वक विधि प्रतिषेध का कथन सात भंगों के द्वारा किया जाता है। उसे सप्तभंगी कहते हैं। जैसे वस्तु के अस्तित्व धर्म को लेकर यदि कथन किया जाये तो वह इस प्रकार होगा-'स्यात् सत्' अर्थात् वस्तु स्वरूप की अपेक्षा है-(1)'स्यात् असत्'-वस्तु पररूप की अपेक्षा नहीं है। (2) 'स्यात् सत् स्यात् असत्'-वस्तु स्वरूप की अपेक्षा है और पररूप की अपेक्षा नहीं है। (3) इन तीनों वाक्यों में से पहला वाक्य वस्तु का अस्तित्व बतलाता है, दूसरा वाक्य नास्तित्व बतलाता है। इन दोनों धर्मों को यदि कोई एक साथ कहना चाहे तो नहीं कह सकता, क्योंकि एक शब्द एक समय में विधि और निषेध में से एक का कथन कर सकता है। अतः ऐसी अवस्था में वस्तु अवक्तव्य ठहरती है, अर्थात् उसे शब्द के द्वारा नहीं कहा जा सकता। अतः 'स्यात् अवक्तव्य' यह चौथा भंग है। (4) सप्तभंगी के ये चार ही मूल भंग हैं। इन्हीं को मिलाने से सात भंग होते हैं अर्थात् चतुर्थ भंग 'स्यात् अवक्तव्य' के साथ क्रम से पहले, दूसरे और तीसरे भंग को मिलाने से पांचवा, छठा और सातवां भंग बनता है। यथा, स्यात् सद्वक्तव्य (5) स्यादसदवक्तव्य (6) और स्यात् सदसदवक्तव्य (7) यानी वस्तु कथंचित् सत् और अवक्तव्य है (5) कथंचित् असत् और अवक्तव्य है (6) तथा कथंचित् सत्, कथंचित् असत् और अवक्तव्य है (7) इन सात भंगों में से वस्तु के अस्तित्व धर्म की विवक्षा होने से प्रथम भंग है, नास्तिक धर्म की विवक्षा होने से दूसरा भंग है। क्रम से 'अस्ति' 'नास्ति' दोनों

धर्मों की विवक्षा होने से तीसरा भंग है। एक साथ दोनों धर्मों की विवक्षा होने से चौथा भंग है। अस्तित्व धर्म के साथ युगपत् दोनों धर्मों की विवक्षा होने से पांचवां भंग नास्तित्व धर्म के साथ युगपत् दोनों धर्मों की विवक्षा होने से छठा भंग है और क्रम से तथा युगपत् दोनों धर्मों की विवक्षा होने सो सातवां भंग है। इसी तरह एक, अनेक, नित्य अनित्य आदि धर्मों में एक की विधि और दूसरे के निषेध के द्वारा सप्तभंगी लगा लेनी चाहिये।

अनेकान्तात्मक वस्तु ही अर्थ क्रियाकारी

जं वत्थु अणेयंतं तं चिय कज्जं करेदि णियमेण।
बहु-धम्म-जुदं अत्थं कज्ज-करं दीसदे लोए।। (225)

जो वस्तु अनेकान्त रूप है वही नियम से कार्यकारी है; क्योंकि लोक में बहुत धर्मयुक्त पदार्थ ही कार्यकारी देखा जाता है।

अनेक धर्मात्मक वस्तु ही कोई कार्य कर सकती है। इसी से पूज्यपाद स्वामी ने अपने जैनेन्द्र व्याकरण का प्रथम सूत्र 'सिद्धिरनेकान्तात्' रखा है। जो बतलाता है कि किसी भी कार्य की सिद्धि अनेकान्त से हो सकती है। उदाहरण के लिये जो वादी वस्तु को नित्य अथवा क्षणिक ही मानते हैं, उनके मत में अर्थक्रिया नहीं बनती। कार्य करने के दो ही प्रकार हैं-एक क्रम से और एक एक-साथ। नित्यवस्तु क्रम से काम नहीं कर सकती; क्योंकि सब कार्यों को एक साथ उत्पन्न करने की उनमें सामर्थ्य है। यदि कहा जाये कि सहायकों के मिलने पर नित्य पदार्थ कार्य करता है और सहायकों के अभाव में कार्य नहीं करता तो इसका यह मतलब हुआ कि पहले वह नित्य पदार्थ कार्य करने में असमर्थ था, पीछे सहकारियों के मिलने पर समर्थ हुआ। तो असमर्थ स्वभाव को छोड़कर समर्थ स्वभाव को ग्रहण करने के कारण वह सर्वथा नित्य नहीं रहा। सर्वथा नित्य तो वही हो सकता है जिसमें कुछ भी परिवर्तन न हो। यदि वह नित्य पदार्थ एक साथ सब काम कर लेता है तो प्रथम समय में ही सब काम कर लेने से दूसरे समय में उसके करने का कुछ भी काम शेष न रहेगा। और ऐसी अवस्था में वह असत् हो जायेगा; क्योंकि सत् वही है जो सदा कुछ न कुछ किया करता है। अतः क्रम से और एक साथ काम न कर सकने से नित्य वस्तु में अर्थक्रिया नहीं बनती। इसी तरह से जो वस्तु को पर्याय की तरह सर्वथा क्षणिक मानते हैं उनके मत

में भी अर्थक्रिया नहीं बनती। क्योंकि क्षण वस्तु तो क्रम से कार्य नहीं कर सकती; क्योंकि क्षणिक तो एक क्षणिकवर्ती होता है, अतः वहाँ क्रम बन ही कैसे सकता है? क्रम से तो वही कार्य कर सकता है जो कुछ क्षणों तक ठहर सके। और यदि वह कुछ क्षणों तक ठहरता है तो वह क्षणिक नहीं रह सकता। इसी तरह क्षणिक वस्तु एक साथ भी काम नहीं कर सकती, क्योंकि वैसे होने से कारण के रहते हुए ही कार्य की उत्पत्ति हो जायेगी तथा उस कार्य के कार्य की भी उत्पत्ति उसी क्षण में हो जायेगी। इस तरह सब गड़बड़ हो जायेगा। अतः वस्तु को द्रव्य की अपेक्षा नित्य और पर्याय की अपेक्षा अनित्य मानना ही उचित है। तभी वस्तु अर्थक्रियाकारी बन सकती है।

सर्वथा एकान्त रुप वस्तु कार्यकारी नहीं

एयंतं पुणं दव्वं कज्जं ण करेदि लेस-मेत्तं पि।
जं पुणु ण करदि कज्जं तं वुच्चदि केरिसं दव्वं।। (226)

एकान्त स्वरूप द्रव्य लेशमात्र भी कार्य नहीं करता और जो कार्य नहीं करता उसे द्रव्य कैसे कहा जा सकता है।

यदि जीवादि वस्तु सर्वथा नित्य या सर्वथा सत् या सर्वथा भिन्न, अथवा सर्वथा एक या सर्वथा अनित्य आदि एकान्त रूप हो तो वह कुछ भी कार्य नहीं कर सकती और जो कुछ भी कार्यकारी नहीं उसे वस्तु या द्रव्य कैसे कहा जा सकता है; क्योंकि जो कुछ न कुछ भी कार्यकारी है, वही वास्तव में सत् है। सत् का लक्षण ही अर्थक्रिया है। अतः जो कुछ भी काम नहीं करता वह गधे के सींग की तरह अवस्तु ही है। कहा भी है-'दुर्नय के विषयभूत एकान्त रूप पदार्थ वास्तविक नहीं है, क्योंकि दुर्नय केवल स्वार्थिक हैं, वे अन्य नयों की अपेक्षा न करके केवल अपनी पुष्टि करते हैं,और जो स्वार्थिक अतएव विपरीत होते हैं वे नय सदोष होते हैं।' इसका खुलासा इस प्रकार है। यदि वस्तु को सर्वथा एकान्त से सद्रूप माना जायेगा तो संकर आदि दोषों के आने से नियत अर्थ की व्यवस्था नहीं बनेगी। अर्थात् जब प्रत्येक वस्तु सर्वथा सत् स्वरूप मानी जायेगी तो वह सब रूप होगी। और ऐसी स्थिति में जीव, पुद्गल आदि के भी परस्पर में एक रूप होने से जीव पुद्गल का भेद ही समाप्त हो जायेगा। इसी तरह जीव, जीव और पुद्गल, पुद्गल का भेद भी समाप्त हो जायेगा तथा

वस्तु को सर्वथा असद्रूप मानने से समस्त संसार शून्यरूप हो जायेगा। इसी तरह वस्तु को सर्वथा नित्य मानने से वह सदा एकरूप रहेगी और सदा एकरूप रहने से अर्थक्रिया नहीं कर सकेगी तथा अर्थक्रिया न करने से वस्तु का अभाव हो जायेगा। वस्तु को सर्वथा क्षणिक मानने से दूसरे क्षण में ही वस्तु का सर्वथा विनाश हो जाने से वह कोई कार्य कैसे कर सकेगी और कुछ भी कार्य न कर सकने से वस्तु का अस्तित्व ही सिद्ध नहीं हो सकेगा। इसी तरह वस्तु को सर्वथा एक रूप मानने पर उसमें विशेष धर्म का अभाव हो जायेगा, क्योंकि वह सर्वथा एक रूप है और विशेष धर्म का अभाव होने से सामान्य धर्म का भी अभाव हो जायेगा; क्योंकि बिना विशेष के सामान्य गधे के सींग की तरह असत् है और न बिना सामान्य के विशेष रह सकता है और न बिना विशेष के सामान्य रह सकता है। अतः दोनों का ही अभाव हो जायेगा तथा वस्तु को सर्वथा अनेक रूप मानने पर द्रव्य का अभाव हो जायेगा; क्योंकि उस अनेक रूपों का कोई आधार नहीं मानते तथा आधार और आधेय का ही अभाव हो जायेगा, क्योंकि सामान्य के अभाव में विशेष और विशेष के अभाव में सामान्य नहीं रह सकता। सामान्य और विशेष में सर्वथा भेद मानने पर निराधार होने से विशेष कुछ क्रिया नहीं कर सकेंगे और कुछ भी क्रिया नहीं करने पर द्रव्य का भी अभाव हो जायेगा। सर्वथा अभेद मानने पर सब एक हो जायेंगे, और सबके एक हो जाने पर अर्थक्रिया नहीं बनती। अर्थक्रिया के अभाव में द्रव्य का भी अभाव हो जायेगा। इस प्रकार सर्वथा नित्य, सर्वथा अनित्य, सर्वथा एक, सर्वथा अनेक, सर्वथा भेद सर्वथा अभेदरूप एकान्तों के स्वीकार करने पर वस्तु में अर्थक्रिया नहीं बन सकती तथा आत्मा को सर्वथा अचेतन मानने से चैतन्य का अभाव हो जायेगा। सर्वथा मूर्त मानने से उसे कभी मोक्ष नहीं हो सकेगा। सर्वथा अमूर्त मानने से संसार का अभाव हो जायेगा। सर्वथा अनेक प्रदेशी मानने से आत्मा में अर्थक्रिया कारित्व नहीं बनेगा; क्योंकि उस अवस्था में घट पट की तरह आत्मा के प्रदेश भी पृथक्-पृथक् हो सकेंगे और इस तरह आत्मा स्वभावशून्य हो जायेगा तथा आत्मा को सर्वथा शुद्ध मानने से कभी वह कर्म मल से लिप्त नहीं हो सकेगा, क्योंकि वह सर्वथा निर्मल है। इन कारणों से सर्वथा एकान्त ठीक नहीं है।

सर्वथा नित्य में अर्थक्रिया का अभाव

परिणामेण विहीणं णिच्चं दव्वं विणस्सदे णेव।
णो उप्पज्जेदि सया एवं कज्जं कहं कुणदि।। (227)

परिणाम से रहित नित्य द्रव्य न तो कभी नष्ट हो सकता है और न कभी उत्पन्न हो सकता है। ऐसी अवस्था में वह कार्य कैसे कर सकता है।

यदि वस्तु को सर्वथा ध्रुव माना जायेगा तो उसमें उत्पाद और व्ययरूप पर्याय नहीं हो सकेंगी और उत्पाद तथा व्यय के न होने से वह वस्तु कभी नष्ट नहीं होगी। यदि इसकी पूर्व पर्याय का विनाश माना जायेगा तो वह सर्वथा नित्य नहीं रहेगी। इसी तरह उस वस्तु में कभी भी नवीन पर्याय उत्पन्न नहीं होगी। यदि होगी तो वह नित्य नहीं ठहरेगी और पूर्व पर्याय का विनाश तथा उत्तर पर्याय की उत्पत्ति न होने से वह वस्तु कुछ भी कार्य न कर सकेगी; क्योंकि कुछ भी कार्य करने से वस्तु में परिणमन अवश्य होगा और परिणमन के होने से वस्तु सर्वथा नित्य नहीं रहेगी। अतः नित्य वस्तु में अर्थक्रिया संभव नहीं है।

क्षणिक वस्तु में अर्थक्रिया नहीं

पज्जय-मित्तं तच्चं विणस्सरं खणे खणे वि अण्णण्णं।
अण्णइ-दव्वं-विहीणं ण य कज्जं पि साहेदि।। (228)

क्षण-क्षण में अन्य-अन्य होने वाला पर्याय मात्र विनश्वर तत्त्व, अन्वयी द्रव्य के बिना कुछ भी कार्य नहीं कर सकता।

यदि नाना पयार्यों में अनुस्यूत एक द्रव्य को न मानकर केवल पर्याय मात्र को ही माना जायेगा अर्थात् मति ज्ञानादि पर्यायों को ही माना जाये और जीव द्रव्य न माना जाये, या मिट्टी को न माना जाये और स्थास, कोश, कुसूल, घट, कपाल आदि पर्यायों को ही माना जाये तो बिना जीव द्रव्य के मत्यादि पर्याय और बिना मिट्टी के स्थास आदि पर्याय हो कैसे सकती है? इसी से आप्तमीमांसा में कहा है कि नाना पर्यायों में अनुस्यूत एकत्व को न मानने पर सन्तान, समुदाय, साधर्म्य, पुनर्जन्म वगैरह कुछ भी नहीं बन सकता। इसका खुलासा इस प्रकार है-एक वस्तु की क्रम से होने वाली पर्यायों की परम्परा का नाम संतान है। जब एकत्व को नहीं

माना जायेगा तो एक संतान कैसे बन सकेगी? जैसे एकत्व परिणाम को न मानने पर एक स्कन्ध के अवयवों का समुदाय नहीं बन सकता वैसे ही सदृश परिणामों में एकत्व को न मानने पर उनमें साधर्म्य भी नहीं बन सकता। इसी प्रकार इस जन्म और परजन्म में रहने वाले एक आत्मा को न मानने पर पुनर्जन्म नहीं बनता तथा देन-लेन का व्यवहार भी एकत्व के अभाव में नहीं बन सकता है; क्योंकि जिसने दिया और जिसने लिया, वे दोनों तो उसी क्षण नष्ट हो गये, तब न कोई देने वाला रहा और न कोई लेने वाला रहा। अतः नित्यैकान्त की तरह क्षणिकैकान्त में भी अर्थक्रिया नहीं बनती।

अनेकान्त में कार्य कारण भाव

णवणव-कज्ज-विसेसा तीसु वि कालेसु होंति वत्थूणं।
एक्केक्कम्मि य समये पुव्वत्तर-भावमासिज्ज।। (229)

वस्तु में तीनों ही कालों में प्रतिसमय पूर्व और उत्तर परिणाम की अपेक्षा नये-नये कार्य विशेष होते हैं।

वस्तु को सर्वथा क्षणिक और सर्वथा नित्य न मानकर परिणामी नित्य मानने से कार्यकारण भाव अथवा अर्थक्रिया बनती है; क्योंकि वस्तुस्वरूप से ध्रुव होते हुए भी वस्तु में प्रतिसमय एक पर्याय नष्ट होती है और एक पर्याय पैदा होती है। इस तरह पूर्व पर्याय का नाश और उत्तर पर्याय का उत्पाद प्रति समय होते रहने से नये-नये कार्य (पर्याय) होते रहते हैं।

पूर्व परिणाम और उत्तर परिणाम से युक्त द्रव्य में कार्य कारण भाव

पुव्व परिणाम-जुत्तं कारण-भावेण वट्टदे दव्वं।
उत्तर-परिणाम-जुदं तं चिय कज्जं हवे णियमा।। (230)

पूर्व परिणाम से युक्त द्रव्य नियम से कारण रूप होता है और वही द्रव्य जब उत्तर परिणाम से युक्त होता है, तब नियम से कार्यरूप होता है।

अनेकान्तरूप एक ही द्रव्य मे कार्यकारण भाव नियम से बनता है। पूर्व

परिणाम से युक्त वही द्रव्य कारण होता है। जैसे मिट्टी का पिण्ड पर्याय कारण रूप होती है और वही द्रव्य जब उत्तर पर्याय से युक्त होता है तो कार्यरूप होता है। जैसे घट पर्याय से युक्त वही मिट्टी पूर्व पर्याय का कारण होने से कार्यरूप हैं, क्योंकि मृत्पिण्ड घट कार्य का उपादान कारण होता है। इस प्रकार अनेकान्तरूप परिणामी नित्य द्रव्य में कार्यकारण भाव नियम से बन जाता है।

अनादिनिधन जीव में कार्यकारण भाव

जीवो आणाइ-णिहणो परिणममाणो हु णव णवं भावं।
सामग्गीसु पवट्टदि कज्जाणि समासदे पच्छा।। (231)

जीव द्रव्य अनादिनिधन है, किन्तु वह नवीन-नवीन पर्यायरूप परिणमन करता हुआ प्रथम तो अपनी सामग्रीयुक्त होता है, पीछे कार्यों को करता है।

जीव द्रव्य अनादि और अनन्त है अर्थात् न उसकी आदि है और न अन्त है। परन्तु अनादि होते हुए भी वह सर्वथा नित्य नहीं है, किन्तु उसमें प्रतिसमय नई-नई पर्याय उत्पन्न होती रहती है। नई-नई पर्यायों को उत्पन्न करने के लिये प्रथम वह जीव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव आदि रूप सामग्री से युक्त होता है फिर नई-नई पर्यायों को उत्पन्न करता है। जैसे कोई जीव देव पर्याय रूप परिणमन करने के लिये पहले समीचीन व्रतों का धारण, सामायिक, धर्मध्यान आदि सामग्री को अपनाता है, पीछे वर्तमान पर्याय को छोड़कर देवपर्याय धारण करता है। कोई जीव नारकी अथवा तिर्यंच पर्यायरूप परिणमन करने के लिये पहले सात व्यसन, बहुत आरम्भ, बहुत परिग्रह, मायाचार कपट दल छद्म वगैरह सामग्री को अपनाता है पीछे नारकी अथवा तिर्यंच पर्याय धारण करता है। इस प्रकार अनादिनिधन जीव में भी कार्यकारण भाव बन जाता है।

स्व चतुष्टय युक्त जीव कार्य करता

ससरूवत्थो जीवो कज्जं साहेदि वट्टमाणं पि।
खेत्ते एक्कम्मि ठिदो णिय-दव्वे संठिदो चेव।। (232)

स्वरूप में स्वक्षेत्र में, स्वद्रव्य में और स्वकाल में स्थित जीव है, अपने पर्यायरूप कार्य को करता है।

जो इन्द्रिय आदि द्रव्यप्राणों से या सुख सत्ता चैतन्य और ज्ञानरूप भाव प्राणों से जीता है, जिया था अथवा जियेगा उसे जीव कहते हैं। वह जीव नवीन नवीन नर नारक आदि रूप वर्तमान पर्याय का और 'अपि' शब्द से अतीत और अनागत पर्यायों का कर्त्ता है। अर्थात् वह स्वयं ही अपनी पर्यायों को उत्पन्न करता है, किन्तु अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव में स्थित होकर ही जीव अपनी पर्यायों को उत्पन्न करता है। अर्थात् अपने चैतन्य स्वरूप आत्मद्रव्य में स्थित जीव ही अपने कार्य को करता है, आत्मान्तर में स्थित हुआ जीव स्वकार्य को नहीं करता। अपनी आत्मा से अवष्टब्ध क्षेत्र में स्थित जीव ही स्वकार्य को करता है, अन्य क्षेत्र में स्थित जीव स्वकार्य को नहीं करता। अपने ज्ञान, दर्शन, सुख, सत्ता आदि स्वरूप में स्थित जीव ही अपनी पर्याय को करता है, पुद्गल आदि स्वभावन्तर में स्थित जीव अपनी पर्याय को नहीं करता तथा स्वकाल में वर्तमान जीव ही अपनी पर्याय को करता है, परकाल में वर्तमान जीव स्वकार्य को नहीं करता। आशय यह है कि प्रत्येक वस्तु का वस्तुपना दो बातों पर निर्भर है-एक वह स्वरूप को अपनाये, दूसरे वह परवस्तु को अपनाये। इन दोनों के बिना वस्तु का वस्तुत्त्व कायम नहीं रह सकता। जैसे, स्वरूप की तरह यदि पररूप से भी वस्तु को सत् माना जायेगा तो चेतन अचेतन हो जायेगा तथा पररूप की तरह यदि स्वरूप में भी वस्तु को असत् माना जायेगा तो वस्तु सर्वथा शून्य हो जायेगी। स्वद्रव्य की तरह परद्रव्य से भी यदि वस्तु को सत् माना जायेगा तो द्रव्यों की निश्चित संख्या नहीं रहेगी तथा परद्रव्य की तरह स्वद्रव्य की अपेक्षा भी यदि वस्तु को असत् माना जायेगा तो किसी वस्तु का प्रतिनियत क्षेत्र नहीं रहेगा और स्वक्षेत्र की तरह परक्षेत्र से भी यदि वस्तु को सत् माना जायेगा तो किसी वस्तु का प्रतिनियत क्षेत्र नहीं रहेगा और परक्षेत्र की तरह स्वक्षेत्र से भी यदि वस्तु को असत् माना जायेगा तो वस्तु का कोई प्रतिनियत काल नहीं रहेगा और परकाल की तरह स्वकाल से भी यदि वस्तु को असत् माना जायेगा तो वस्तु किसी भी काल में नहीं रहेगी। अतः प्रत्येक वस्तु स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव में स्थित रहकर ही कार्यकारी होती है। सरांश यह है कि प्रत्येक वस्तु चार भागों में विभाजित है। वे चार भाग हैं-द्रव्य, द्रव्यांश, गुण और गुणांश। (इन चारों की विशेष चर्चा के लिये पंचाध्यायी पढ़ना चाहिये। अनु.) अनन्त गुणों के अखण्ड पिण्ड को तो द्रव्य कहते हैं। उस अखण्ड

पिण्डरूप द्रव्य की प्रदेशों की अपेक्षा जो अंश कल्पना की जाती है उसे द्रव्यांश कहते हैं। द्रव्यों में रहने वाले गुणों को गुण कहते हैं और उन गुणों के अंशों को गुणांश कहते हैं। प्रत्येक वस्तु में ये चार बातें होती हैं। इनको छोड़कर वस्तु और कुछ भी नहीं है।

इन्हीं चारों की अपेक्षा एक वस्तु दूसरी वस्तु से पृथक् मानी जाती है, इन्हीं को स्वचतुष्टय कहते हैं। स्वचतुष्टय से स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव लिये जाते हैं। अनन्त गुणों का अखण्ड पिण्ड रूप जो द्रव्य है, वही स्वद्रव्य है। वह द्रव्य अपने जिन प्रदेशों में स्थित है, वही उसका स्वक्षेत्र है। उसमें रहने वाले गुण ही उसका स्वभाव है और उन गुणों की पर्याय ही स्वकाल है। अर्थात् द्रव्य, द्रव्यांश गुण और गुणांश ही वस्तु के स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभाव है। वस्तु का स्वद्रव्य उसके अनन्त गुण रूप अखण्ड पिण्ड के सिवा दूसरा नहीं है। वस्तु का क्षेत्र उसके प्रदेश ही हैं, न कि वह जहाँ रहती है। उस वस्तु के गुण ही उसका स्वभाव है और उन गुणों की कालक्रम से होने वाली पर्याय ही उसका स्वकाल है। प्रत्येक वस्तु का यह स्वचतुष्टय भिन्न-भिन्न है। इस स्वचतुष्टय में स्थित द्रव्य ही अपनी-अपनी पर्यायों को करता है।

पररूप में स्थित जीव कार्य नहीं करता

स-सरूवत्थो जीवो अण्ण-सरूवम्मि गच्छदे जदि हि।
अण्णोण्ण-मेलणादो एक्क-सरूवं हवे सव्वं।। (233)

यदि स्वरूप में स्थित जीव परस्वरूप में चला जावे तो परस्पर में मिल जाने से सब द्रव्य एक स्वरूप हो जायेंगे।

यदि अपने चेतन्य स्वरूप में स्थित जीव चैतन्य स्वरूप को छोड़कर पुद्गल आदि द्रव्यों के अचेतन स्वरूप हो जायें अर्थात् परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल और परभाव को अपना लें तो सब द्रव्यों का कोई निश्चित स्वरूप न होने से सब एकरूप हो जायेंगे। चेतन द्रव्य अचेतन रूप हो जायेगा और अचेतन द्रव्य चेतनरूप हो जायेगा और ऐसा होने से जब सब वस्तु सब रूप हो जायेंगी और किसी वस्तु का कोई विशेष धर्म नहीं रहेगा तो किसी मनुष्य से यह कहने पर कि 'दही खाओ' वह ऊँट को भी खाने को दौड़ पड़ेगा; क्योंकि उस अवस्था में

दही और ऊँट में कोई भेद नहीं रहेगा। अतः स्वरूप में स्थित वस्तु ही कार्यकारी है।

सव्वे कम्म-णिबद्धा संसरमाणा अणाइ-कालम्हि।
पच्छा तोडिय बंधं सिद्धा सुद्धा धुवं होंति।। (202)

अर्थ-सभी जीव अनादिकाल से कर्मों से बंध हुए हैं इसी से संसार में भ्रमण करते हैं। पीछे कर्मबन्धन को तोड़कर तब निश्चल सिद्ध पद पाते हैं तब शुद्ध होते है।

भावार्थ-अनादिकाल से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से चाररूप अथवा चारों गतियों की अपेक्षा चार रूप और द्रव्य, क्षेत्र, काल भव और भाव की अपेक्षा पांचरूप संसार में भटकनेवाले सभी संसारी जीव ज्ञानावरण आदि कर्मों की सांकलों से बंधे हुए हैं। पीछे प्रकृतिबन्ध स्थितिबंध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध की अपेक्षा से चार प्रकार से कर्म बन्धन को तोड़कर कर्ममलरूपी कलङ्क से रहित सिद्ध हो जाते हैं। तब वे शुद्ध बुद्ध स्वरूपवाले, और जन्म, बुढ़ापा और मृत्यु से रहित होते हैं। तथा अनन्तानन्त काल तक वही बने रहते हैं। अर्थात् फिर वे कभी भी लौटकर संसार में नहीं आते।

जो अण्णोण्ण-पवेसो जीव-पएसाण कम्म-खंधाणं।
सव्व-बंधाण वि लओ सो बंधो होदि जीवस्स।। (203) स्वा.का.

अर्थ-जीव के प्रदेशों का और कर्म के स्कन्धों का परस्पर में प्रवेश होना ही जीव का बन्ध है। इस बन्ध में सब बन्धों का विलय हो जाता है।

भावार्थ-जीव के लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशों का और सिद्धराशि के अनन्तवें भाग अथवा अभव्यराशि से अनन्तगुणी कर्मवर्गणाओं का परस्पर में मिलना सो बन्ध है। अर्थात् एक आत्मा के प्रदेशों में अनन्तानन्त पुद्गल स्कन्धों के प्रवेश का नाम प्रदेश बन्ध है। इसी में प्रकृतिबन्ध, स्थितिबंध और अनुभागबन्ध का लय होता है। कहा भी है-''जीव राशि अनन्त है और एक एक जीव के असंख्यात प्रदेश होते हैं। तथा एक एक आत्मप्रदेश पर अनन्त कर्मप्रदेश होते हैं। आत्मा और कर्म के प्रदेशों का लोहे के मुद्गर की तरह मजबूत जो सम्बन्ध होता है वही बन्ध है। तत्त्वार्थ सूत्र में प्रदेशबन्ध का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है-प्रदेश बन्ध का कारण सब कर्म प्रकृतियां ही हैं, उन्हीं की वजह से कर्मबन्ध होता है। तथा वह योग के द्वारा होता है और सब भवों

में होता है। जो कर्मस्कन्ध कर्मरूप होते हैं वे सूक्ष्म होते हैं, आत्मा के साथ उनका एक क्षेत्रावगाह होता है। बन्धनेपर वे आत्मा में आकर ठहर जाते हैं और आत्मा के सब प्रदेशों में हिलमिल जाते हैं तथा अनन्तानन्त प्रदेशी होते हैं। जो आत्मा कर्मों से बंधा हुआ है उसी के प्रतिसमय अनन्तानन्त प्रदेशी कर्मस्कन्धों का बन्ध हुआ करता है। बन्ध के चार भेद हैं-प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध। प्रकृति नाम स्वभाव का है। काल की मर्यादा को स्थिति कहते हैं। फल देने की शक्ति का नाम अनुभाग है और प्रदेशों की संख्या का परिमाण प्रदेशबन्ध है। ये चारों बन्ध एक साथ होते हैं। जैसे ही अनन्तानन्त प्रदेशी कर्मस्कन्धों का आत्मा के प्रदेशों के साथ सम्बन्ध होता है तत्काल ही उनमें ज्ञान को घातने आदि का स्वभाव पड़ जाता है, वे कब तक आत्मा के साथ बंधे रहेंगे इसकी मर्यादा बन्ध जाती है और फल देने की शक्ति पड़ जाती है। अतः प्रदेशबन्ध के साथ ही शेष तीनों बन्ध हो जाते हैं। इसी से यह कहा है कि प्रदेशबन्ध में ही सब बन्धों का लय है।

उत्तम-गुणाण धामं सव्व-दवाण उत्तमं दव्वं।
तच्चाण परम-तच्चं जीवं जाणेहि णिच्छयदो।। (204)

अर्थ-जीव ही उत्तमगुणों का धाम है, सब द्रव्यों में उत्तम द्रव्य है और सब तत्त्वों में परमतत्त्व है, यह निश्चय से जानो।

भावार्थ-निश्चयनय से अपनी आत्मा को जानो। यह आत्मा केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त सुख, अनन्तवीर्य आदि गुणों का, अथवा सम्यक्त्व, दर्शन, ज्ञान अगुरुलघु, अवगाहना, सूक्ष्मत्व, वीर्य, अव्याबाध इन आठ गुणों का, अथवा चौरासी लाख गुणों अथवा अनन्त गुणों का आधार है। सब द्रव्यों में यही उत्तम द्रव्य है क्योंकि अजीव द्रव्य-धर्म, अधर्म, काल, आकाश और पुद्गल तो जड़ है अचेतन हैं किन्तु जीवद्रव्य चेतन है, वह वस्तुओं का प्रकाशक अर्थात् जानने देखनेवाला है; क्योंकि उसका लक्षण उपयोग है। इसी से जीवद्रव्य ही सर्वोत्तम है। तथा जीव ही सब तत्त्वों में परमतत्त्व है।

अंतर-तच्चं जीवो वाहिर-तच्चं हवंति सेसाणि।
णाण-विहीणं दव्वं हियाहियं णेय जाणेदि।। (205)

अर्थ-जीव ही अन्तस्तत्त्व है, बाकी सब बाह्य तत्त्व हैं। वे बाह्यतत्त्व ज्ञान से रहित हैं अतः वे हित अहित को नहीं जानते।

भावार्थ-आत्मा अभ्यन्तर तत्त्व है बाकी के अजीव, आस्रव, बन्ध वगैरह पुत्र, मित्र, स्त्री, शरीर, मकान आदि चेतन और अचेतन द्रव्य बाह्य तत्त्व हैं। एक जीव ही ज्ञानवान् है बाकी के सब द्रव्य अचेतन होने के कारण ज्ञान से शून्य हैं। पुद्गल, कर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्य हित अहित, हेय, उपादेय, पुण्य, पाप, सुख दुःख वगैरह को नहीं जानते।

अतः शेष द्रव्यों के अज्ञस्वभाव होने से और जीव के ज्ञानस्वभाव होने से जीव ही उत्तम है। परमात्मप्रकाश में भी कहा है-'जो आत्म पदार्थ से जुदा जड़ पदार्थ है, उसे परद्रव्य जानो। और पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और पाँचवाँ कालद्रव्य ये सब परद्रव्य जानो।' जीवद्रव्य का निरूपण समाप्त हुआ।

सव्वो लोयायासो पुग्गल-दव्वेहिं सव्वदो भरिदो।
सुहुमेहिँ वायरेहि य णाणा-विह-सत्ति-जुत्तेहिं।। (206)

अर्थ-अनेक प्रकार की शक्ति से सहित सूक्ष्म और बादर पुद्गल द्रव्यों से समस्त लोकाकाश पूरी तरह भरा हुआ है।

भावार्थ-यह लोकाकाश जगत् श्रेणी के घनरूप अर्थात् 343 राजु प्रमाण है। सो यह पूरा का पूरा लोकाकाश शरीर आदि अनेक कार्य करने की शक्ति से युक्त तेईस प्रकार की वर्गणा रूप पुद्गलद्रव्यों से, जो सूक्ष्म भी हैं और स्थूल भी हैं, भरा हुआ है। उन पुद्गलों के सूक्ष्म और बादर भेद इस प्रकार कहे-''जिनवर देव ने पुद्गल द्रव्य के छः भेद बतलाये हैं-पृथ्वी, जल, छाया, चक्षु के सिवा शेष चार इन्द्रियों का विषय, कर्म और परमाणु।

अहिंसाव्रतरक्षार्थ यमजातं जिनैर्मतम्।
नारोहति परां कोटिं तदेवासत्यदूषितम्।। (2) ज्ञानार्णव.

जिनेन्द्र भगवान् ने जो यमनियमादि व्रतों का समूह कहा है वह एक मात्र अहिंसा व्रत की रक्षा के लिये ही कहा है। क्योंकि अहिंसाव्रत यदि असत्य वचन से दूषित हो तो वह उत्कृष्ट पद को प्राप्त नहीं होता अर्थात् असत्य वचन के होने से अहिंसा व्रत पूर्ण नहीं होता।

असत्यमपि तत्सत्यं यत्सत्त्वाशंसकं वचः।

सावद्यं यच्च पुष्णाति तत्सत्यमपि निन्दितम्।। (3)

जो वचन जीवों का इष्ट हित करनेवाला हो, वह असत्य हो तो भी सत्य है और जो वचन पापसहित हिंसारूप कार्य को पुष्ट करता हो, वह सत्य हो तो भी असत्य और निन्दनीय है।

अनेकजन्मक्लेशशुद्ध्यर्थं यस्तपस्यति।

सर्वं सत्त्वहितं शश्वत्स ब्रूते सूनृतं वचः।। (4)

जो मुनि अनेक जन्म में उत्पन्न क्लेशों (दुःखों) की शान्ति के लिये तपश्चरण करता है वह जीवों के हितरूप निरन्तर सत्य वचन ही बोलता है। क्योंकि असत्य वचन बोलने से मुनिपन नहीं संभवता है।

सूनृतं करुणाक्रान्तमविरुद्धमनाकुलम्।

अग्राम्यं गौरवाश्लिष्टं वचः शास्त्रे प्रशस्यते।। (5)

जो वचन सत्य हो, करुणा से व्याप्त हो, विरुद्ध न हो, आकुलतारहित हो, छोटे ग्रामकासा गँवारीवचन न हो और गौरवसहित हो अर्थात् जिसमें हलकापन नहीं हो वह वचन शास्त्रों में प्रशंसित किया गया है।

मौनमेव हितं पुंसां शश्वत्सर्वार्थसिद्धये।

वचो वाचि प्रियं तथ्यं सर्वसत्त्वोपकारि यत्।। (6)

पुरुषों को प्रथम तो समस्त प्रयोजनों का सिद्ध करनेवाला निरंतर मौन ही अवलंबन करना हितकारी है। और यदि वचन कहना ही पड़े तो ऐसा कहना चाहिये जो सबको प्यारा हो, सत्य हो और समस्त जनों का हित करनेवाला हो।

जयन्ति ते जगद्वन्द्या यैः सत्यकरुणामये।

अवञ्चकेऽपि लोकोऽयं पथि शश्वत्प्रतिष्ठितः।। (9)

जिन पुरुषों ने इस लोक को सत्यरूप, करुणामय तथा वंचनारहित मार्ग में निरन्तर चलाया वे ही जयशाली हैं और वे ही जगत में वंदनीय व पूज्यनीय हैं।

न सास्ति काचिद्व्यवहावर्तिनी न यत्र वाग्विस्फुरति प्रवर्तिका।

ब्रुवन्नसत्यामिह तां हताशयः करोति विश्वव्यवहारविप्लवम्।। (11)

अर्थ-इस जगत् में व्यवहार में प्रवर्तनेवाली वाणी ऐसी नहीं है कि जिसमें समस्त व्यवहारों को सिद्ध करनेवाली स्याद्वादरूप सत्यार्थ वाणी स्फुरायमान न हो, किन्तु ऐसी स्याद्वादरूप सत्यार्थ वाणी को भी मिथ्यादृष्टि नष्टचित्तपुरुष असत्य कहते हुए समस्त व्यवहार का लोप करते हैं। **भावार्थ**-मिथ्यादृष्टि (सर्वथा एकान्ती) स्याद्वाद का निषेध करते हैं अतएव वह नष्टाशय है। क्योंकि सर्वथा एकान्त असत्य है। उस असत्य वचन से न तो लोकव्यवहार की सिद्धि होती है और न धर्मव्यवहार की ही सिद्धि होती है। ऐसे असत्य वचनों को कहते हुए मिथ्यादृष्टि समस्त व्यवहारों का लोप करते हैं।

पृष्टैरपि न वक्तव्यं न श्रोतव्यं कथंचन।
वचः शङ्काकुलं पापं दोषाढ्य चाभिसूयकम्।। (12)

जो वचन सन्देहरूप हो तथा पापरूप हो और दोषों से संयुक्त हो एवं ईर्षा को उत्पन्न करनेवाला हो वह अन्य के पूछने पर भी नहीं कहना चाहिये तथा किसी प्रकार सुनना भी नहीं चाहिये। **भावार्थ**-निषिद्धवचन का प्रसंग भी नहीं करना चाहिये।

मर्मच्छेदि मनःशल्यं च्युतस्थैर्यं विरोधकम्।
निर्दयं च वचस्त्याज्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि।। (13)

तथा मर्म का छेदनेवाला, मन में शल्य उपजानेवाला, स्थिरतारहित (चंचलरूप), विरोध उपजानेवाला तथा दयारहित वचन कण्ठगत प्राण होने पर भी नहीं बोलना चाहिये।

धन्यास्ते हृदये येषामुदीर्णः करुणाम्बुधिः।
वाग्वीचिसञ्चयोल्लासैर्निर्वापयति देहिनः।। (14)

इस जगत में वे पुरुष धन्य है, जिनके हृदय में करुणारूप समुद्र उदय होकर वचनरूप लहरों के समूहों के उल्लासों से जीवों को शान्ति प्रदान करता है। **भावार्थ**-करुणारूप वचनों को सुन कर दुःखी जीव भी सुखी हो जाते हैं।

धर्मनाशे क्रियाध्वंसे सुसिद्धान्तार्थविप्लवे।
अपृष्टैरपि वक्तव्यं तत्स्वरूपप्रकाशने।। (15)

जहाँ धर्म का नाश हो, क्रिया बिगड़ती हो तथा समीचीन सिद्धान्त का लोप होता हो उस जगह समीचीन धर्मक्रिया और सिद्धान्त के प्रकाशनार्थ बिना पूछे भी विद्वानों को बोलना चाहिये क्योंकि यह सत्पुरुषों का कार्य है।

या मुहुर्मोहयत्येव विश्रान्ता कर्णयोर्जनम्।

विषमं विषमृत्सृज्य साऽवश्यं पन्नगी न गीः।। (16)

जो वाणी लोक के कानों में बारबार पड़ी हुई तथा विषम विष को उगलती हुई जीवों को मोहरूप करती है और समीचीन मार्ग को भुलाती है वह वाणी नहीं है किन्तु सर्पिणी है। **भावार्थ**-जिन वचनों को सुनते ही संसारी प्राणी, उत्तम मार्ग को छोड़कर कुमार्ग में पड़ जाय वह वचन सर्प के समान हैं।

न तथा चन्दनं चन्द्रो मणयो मालतीस्त्रजः।

कुर्वन्ति निर्वृतिं पुंसां यथा वाणी श्रुतिप्रिया।। (20)

जीवों को जिस प्रकार कर्णप्रिय वाणी सुखी करती है, उसी प्रकार चन्दन, चंद्रमा, चन्द्रमणि, मोती तथा मालती के पुष्पों की माला आदि शीतल पदार्थ सुखी नहीं कर सकते यह प्रसिद्ध लोकोक्ति है।

अपि दावानलप्लुष्टं शाड्वलं जायते वनम्।

न लोकः सुचिरेणापि जिह्वानलकदर्थितः।। (21)

दावानल अग्नि से दग्ध हुआ वन तो किसी काल में हरित (हरा) हो भी जाता है परन्तु जिह्वारूपी अग्नि से (कठोर मर्मच्छेदी वचनों से) पीड़ित हुआ लोक बहुत काल बीत जाने पर भी हरित (प्रसन्नमुख) नहीं होता। **भावार्थ**-दुर्वचन का दाह मिटाना कठिन है।

सर्वलोकप्रिये तथ्ये प्रसन्ने ललिताक्षरे।

वाक्ये सत्यपि किं ब्रूते निकृष्टः परुषं वचः।। (22)

जो वचन सर्वलोक को प्रिय, सत्य तथा प्रसन्न करनेवाले व ललिताक्षरवाले हैं उनके होते हुए भी नीचपुरुष कठोर वचन किसलिये कहते हैं, सो ज्ञात नहीं होता है।

सतां विज्ञाततत्त्वानां सत्यशीलावलम्बिनाम्।

चरणस्पर्शमात्रेण विशुद्ध्यति धरातलम्।। (23)

जो महापुरुष सत्यवचन बोलनेवाले हैं, तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप को जानते हैं और सत्य शीलादि के अवलंबी है उनके चरणों के स्पर्शमात्र से यह धरातल पवित्र होता है। ऐसे ही लोग उत्तम पुरुष हैं और जो असत्य बोलते हैं, वे ही नीच हैं।

यमव्रतगुणोपेतं सत्यश्रुतसमन्वितम्।

यैर्जन्म सफलं नीतं ते धन्या धीमतां मताः।। (24)

जिन पुरुषों ने अपना जन्म यमव्रतादि गुणों से युक्त सत्यशास्त्रों के अध्ययनपूर्वक सफल किया है, वे ही धन्य और विद्वानों के द्वारा पूजनीय हैं।

नृजन्मन्यपि यः सत्यप्रतिज्ञाप्रच्युतोऽधमः।

स केन कर्मणा पश्चाज्जन्मपङ्कात्तरिष्यति।। (25)

जो अधम पापी नीचपुरुष मनुष्य जन्म पाकर भी सत्य प्रतिज्ञा से रहित है वह पापी फिर संसाररूपी कर्दम से किस कार्य से पार होगा? **भावार्थ**–तरने का अवसर तो मनुष्यजन्म ही है। इसमें ही धर्माचरण तथा प्रतिज्ञादि बन सकते हैं। इसके चले जाने पर फिर तरने का अवसर प्राप्त होना कठिन है, अतएव मनुष्यजन्म को सत्यशीलादि से सफल करना चाहिये।

अदयैः संप्रयुक्तानि वाक्शास्त्राणीह भूतले।

सद्यो मर्माणि कृन्तन्ति शितास्त्राणीव देहिनाम्।। (26)

निर्दय पुरुषों के द्वारा चलाये हुए वचनरूप शास्त्र इस पृथ्वीतल पर जीवों के मर्म को तीक्ष्ण शस्त्रों के समान तत्काल छेदन करते हैं, क्योंकि असत्य वचन के समान दूसरा कोई भी शस्त्र नहीं है।

व्रतश्रुतयमस्थानं विद्याविनयभूषणम्।

चरणज्ञानयोर्बीजं सत्यसंज्ञं व्रतं मतम्।। (27)

यह सत्यनामा व्रत, व्रत श्रुत और यमों का तो स्थान है तथा विद्या और विनय का भूषण हैं क्योंकि विद्या और विनय सत्य वचन से ही शोभा को प्राप्त होते हैं। और सम्यक्चारित्र तथा सम्यग्ज्ञान का बीज उत्पन्न करने का कारण सत्य वचन ही है।

न हि सत्यप्रतिज्ञस्य पुण्यकर्मावलम्बिनः।

प्रत्यूहकरणे शक्ता अपि दैत्योरगादयः।। (28)

सत्य प्रतिज्ञावाले पुण्यकर्मावलंबी पुरुष का दुष्ट दैत्य तथा सर्पादिक कुछ भी बुरा करने को समर्थ नहीं हो सकते हैं।

चन्द्रमूर्तिरिवानन्दं वर्द्धयन्ती जगत्त्रये।

स्वर्गिभिर्ध्रियते मूर्ध्ना कीर्त्तिः सत्योत्थिता नृणां।। (29)

तीन लोक में चन्द्रमा के समान आनन्द को बढ़ानेवाली सत्य वचन से उत्पन्न हुई मनुष्यों की कीर्ति को देवता भी मस्तक पर धारण करते हैं।

खण्डितानां विरूपाणां दुर्विधानां च रोगिणाम्।

कुलजात्यादिहीनानां सत्यमेकं विभूषणम्।। (30)

जिनके हाथ नाक आदि अवयव कटे हों तथा जो विरूप हों, और जो दरिद्री तथा रोगी हों, वा कुलजात्यादि से हीन हों उनका भूषण सत्यवचन बोलना ही है, अर्थात् यही उनकी शोभा करनेवाला है। क्योंकि जो उक्त समस्त बातों से हीन और सत्यवचन बोलता हो, उसकी सब कोई प्रशंसा करते हैं।

यस्तपस्वी जटी मुण्डो नग्नो वा चीवरावृतः।

सोऽप्यसत्यं यदि ब्रूते निन्द्यः स्यादन्त्यजादपि।। (31)

जो तपस्वी हो, जटाधारी हो, मस्तक मुंडाये हो अथवा नग्न (दिगम्बर) हो, वा वस्त्रधारी हो और असत्य बोलता हो तो वह चंडाल से भी बुरा और अतिशय निंदनीय है।

कुटुम्बं जीवितं वित्तं यद्यसत्येन वर्द्धते।

तथाऽपि युज्यते वक्तुं नासत्यं शीलशालिभिः।। (32)

यदि असत्य वचन से अपने कुटुम्ब, जीवन और धन की वृद्धि हो तो भी शील से शोभित पुरुषों को असत्य वचन कहना उचित नहीं है।

एकतः सकलं पापं असत्योत्थं ततोऽन्यतः।

साम्यमेव वदन्त्यार्यास्तुलायां धृतयोस्तयोः।। (33)

आर्य पुरुषों ने तराजू में एक तरफ तो समस्त पापों को रक्खा और एक तरफ असत्य से उत्पन्न हुए पाप को रखकर तौला तो दोनों समान हुए। **भावार्थ**-असत्य अकेला ही समस्त पापों के बराबर है।

मूकता मतिवैकल्यं मूर्खता बोधिविच्युतिः।

बाधिर्यं मुखरोगित्वमसत्यादेव देहिनाम्।। (34)

गूंगापन, बुद्धि की विकलता, मूर्खता, अज्ञानता, बधिरता तथा मुख में रोग होना

इत्यादि जो सब ही जीवों के होते हैं, वे असत्य वचन बोलने के पाप से ही होते हैं।

प्रसन्नोन्नतवृत्तानां गुणानां चन्द्ररोचिषाम्।

सङ्घातं घातयत्येव सकृदप्युदितं मृषा।। (36)

एक बार भी बोला हुआ असत्य वचन चन्द्रमा की किरणों के समान प्रसन्न (निर्मल) तथा उन्नत गुणों के समूह को नष्ट करता है। **भावार्थ**-असत्य वचन ऐसा मलिन है कि चंद्रवत् निर्मल गुणों को भी मलिन कर देता है।

न हि स्वप्नेऽपि संसर्गमसत्यमलिनैः सह।

कश्चित्करोति पुण्यात्मा दुरितोल्मुकशङ्क्या।। (37)

जो असत्य से मलिन पुरुष है, उनके साथ, पापरूप कालिमा के भय से कोई पुण्यात्मा पुरुष स्वप्न में भी साक्षात् भेट नहीं करते। **भावार्थ**-झूठे की संगत से सच्चे को भी कालिमा लगती है।

जगद्वन्द्ये सतां सेव्ये भव्यव्यसनशुद्धिदे।

शुभे कर्मणि योग्यः स्यान्नासत्यमलिनो जनः।। (38)

जगत् के वंदनीय, सत्पुरुषों के पूजनीय, संसार के कष्ट आपदाओं से शुद्धि के देने वाले शुभ कार्यों में असत्य से मैले पुरुष योग्य नहीं गिने जाते। **भावार्थ**-शुभ कार्यों में झूठे का अधिकार नहीं है।

महामतिभिर्निष्ठ्यूतं देवदेवैर्निषेधितम्।

असत्यं पोषितं पापैर्दुःशीलाधमनास्तिकैः।। (39)

बड़े-बड़े बुद्धिमानों ने तो असत्य वचन को त्याग दिया है और देवाधिदेव सर्वज्ञ वीतरागने इसका निषेध किया है, किन्तु खोटे स्वभाववाले नीच नास्तिक पापियों ने इसका पोषण किया है। ठीक ही है, पापियों को पाप ही इष्ट होता है। महापुरुष जिसकी निंदा करते हैं, नीच उसकी प्रशंसा ही किया करते हैं।

परोपरोधादतिनिन्दितं वचो ब्रुवन्नरो गच्छति नारकीं पुरीं।

अनिन्द्यवृत्तोऽपि गुणी नरेश्वरो वसुर्यथाऽगादिति लोकविश्रुतिः।। (41)

मनुष्य अन्य के अनुरोध से (प्रार्थना) अन्य के लिये अति निन्दनीय असत्य कह कर नरकपुरी को चला जाता है। जैसे वसु राजा अनिन्द्य आचरणवाला और

गुणी था, परन्तु अपने सहाध्यायी गुरुपुत्र (पर्वत) के लिये झूठी साक्षी देने से नरक को गया। यह जगत्प्रसिद्ध वार्त्ता है (इसकी कथा पुराणों में प्रसिद्ध हैं।) इस कारण पर के लिये भी झूठ बोलना नरक को ले जाता है।

स्मृति शेषः आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत को दी थी चुनौती

गुमनामी में खो गया गणित का 'विशष्ठ' पार्थिव शरीर करता रहा एंबुलेंस का इंतजार

पटना। गुमनामी का जीवन बिता रहे आइंस्टीन के सिद्धांत को चुनौती देने वाले प्रख्यात गणितज्ञ वशिष्ठ नारायण सिहं का गुरुवार को पटना मेडिकल कॉलेज व अस्पताल (पीएमसीएच) में निधन हो गया। लेकिन शर्मिंदगी की बात यह है कि निधन के बाद उनका पार्थिव शरीर काफी देर तक एंबुलेंस का इंतजार करता रहा।

अस्पताल प्रशासन की तरफ से एंबुलेंस नहीं मुहैया करवाने के कारण उनका पार्थिव शरीर अस्पताल परिसर में बाहर की और करीब डेढ़ घंटे तक स्ट्रेचर पर रखा रहा। परिजनों के साथ पटना के एक अपार्टमेंट में गुमनामी की जिंदगी बिता रहे विशष्ठ 40 साल से ज्यादा समय से मानसिक बीमारी सिजोफ़ेनिया से पीड़ित थे।

गुरुवर सुबह अचानक उनकी तबीयत बिगड़ गई, जिसके बाद परिजन तत्काल उन्हें पीएमसीएच लेकर गए, जहां डॉक्टरों ने उन्हें मृत घोषित कर दिया। उनके भाई ने बताया कि एंबुलेंस वाले ने पार्थिव शरीर भोजपुर ले जाने के लिए पांच हजार रुपए मांगे। बाद में कलक्टर और कुछ नेता पहुंचे, जिसके बाद पार्थिव देह को एंबुलेंस से उनके पैतृक आवास भोजपुर ले जाने की व्यवस्था हुई।

कम्प्यूटर और उनका कैलकुलेशन एक जैसा

वशिष्ठ ने महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत को चुनौती दी थी। उनके बार में यह भी मशूहर था कि नासा में अपोलों की लॉन्चिंग से पहले जब 31 कम्प्यूटर कुछ समय के लिए बंद हो गए तो ठीक होने पर उनका और कम्प्यूटरों का कैलकुलशेन एक जैसा था।

प्रोफेसर कैली ने पहचानी थी प्रतिभा

बिहार के बसंतपुर गांव में 2 अप्रेल 1942 को वशिष्ठ का जन्म हुआ।

पटना सांइस कॉलेज में पढ़ते हुए उनकी मुलाकात अमरीका के प्रोफेसर जॉन कैली से हुई। उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर प्रो.कैली ने उन्हें अमरीका आकर शोध करने का निमंत्रण दिया। 1965 में वे अमरीका चले गए। 1969 में कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी से पीएचडी की डिग्री हासिल की। इसके बाद वॉशिगंटन यूनिवर्सिटी में एसोसिएट प्रोफेसर बन गए। वशिष्ठ ने नासा में भी काम किया, पर 1971 में भारत लौट आए। 1973 में उनकी शादी हो गई। शादी के एक साल बाद उन्हें मानसिक दौरे आने लगे और धीरे-धीरे वह सिजोफ्रेनिया से पीड़ित हुए।

राष्ट्रपति और पीएम ने दी श्रद्धांजलि

वशिष्ठ नारायण सिंह के निधन पर, राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद, प्रधानमंत्री नरेद्र मोदी, बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार और कई अन्य नेताओं ने शोक जताते हुए श्रद्धांजलि दी। विलक्षण प्रतिभा के धनी वशिष्ठ के निधन को अपूरणीय क्षति बताया।

स्मृति शेषः नासा के कैलकुलशैन को मात देने वाले गणितज्ञ का मानसिक संतुलन गड़बड़ा गया था

आइंस्टीन के सिद्धांत को चुनौती देने वाले वशिष्ठ को बर्कले यूनिवर्सिटी ने जीनियसों का जीनियस कहा था

गणितज्ञ डॉ. वशिष्ठ नारायण सिहं का 73 साल की उम्र में निधन

जन्म-2 अप्रैल 1946 मृत्यु-14 नवंबर 2019

पटना। ख्याति प्राप्त गणितज्ञ डॉ. वशिष्ठ नारायण सिंह नहीं रहे। वह 73 साल के थे। गुरुवार सुबह पटना में उनका निधन हुआ। उन्होंने हर परीक्षा में पहला स्थान पाया। बर्कले यूनिवर्सिटी (कैलिफोर्निया) ने उन्हें 'जीनियसों का जीनियस' कहा था। उन्होंने आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत को भी चुनौती दी थी। उनके बारे में मशहूर है कि नासा में अपोलों की लॉन्चिंग से पहले जब 31 कम्प्यूटर कुछ समय के लिए बंद हो गए तो ठीक होने पर उनका और कम्प्यूटरों का कैलकुलशेन एक था। 1973 में उनका मानसिक संतुलन बिगड़ा। वह अंततः हम सबको अलविदा कह गए।

श्रद्धांजलि तो सभी ने दी पर एंबुलेंस नहीं, शव डेढ़ घंटे अस्पताल के बाहर पड़ा रहा

40 साल से सिज़ोफ्रेनिया नामक मानसिक बीमारी से पीड़ित वशिष्ठ नारायण सिंह पटना के एक अपार्टमेंट में गुमनामी का जीवन जी रहे थे। किताब, कॉपी और एक पेंसिल उनकी सबसे अच्छी दोस्त थी। पटना में उनके साथ रह रहे भाई अयोध्या सिंह ने बताया कि अमेरिका से वो अपने साथ 10 बक्से किताबें लाए थे, जिन्हें वो पढ़ा करते थे।

वशिष्ठ नारायण के नाम पर बनाया जाएगा शोध केंद्र

पटना। पटना विश्वविद्यालय में दिवंगत गणितज्ञ वशिष्ठ नारायण सिंह के नाम पर शोध केंद्र बनाया जाएगा। वशिष्ठ नारायण सिंह इसी विश्वविद्यालय के छात्र थे। निधन के बाद विश्वविद्यालय भी जगा है। इसके पहले इसे भी अपने छात्र के बारे में जानकारी नहीं थी। कुलपति रासबिहारी सिंह के अनुसार, वशिष्ठ नारायण की आदमकद प्रतिमा सांइस कॉलेज में लगाई जाएगी।

जीनियसों के जीनियस
वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी गुरुराज

गणितज्ञ डॉ. वशिष्ठ नारायण सिंह जिन्होंने आइन्स्टीन के सापेक्षता सिद्धान्त की समीक्षा की, जिससे बर्कले यूनिवर्सिटी कैलिफोर्निया ने उन्हें जीनियसों का जीनियस कहा, तब वैज्ञानिक आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव वर्ष 1982 से ही ''विश्व विज्ञान रहस्य'' ''वैज्ञानिक आइन्सटीन के सिद्धान्तों की पुनर्परीक्षण की आवश्यकता'' ''डार्विन आदि जीव वैज्ञानिकों के सिद्धान्त आंशिक सत्य, अधिक असत्य'' ''ब्रह्माण्डीय जैविक रासायनिक विज्ञान'' ''अनन्तशक्ति सम्पन्न परमाणु से लेकर परमात्मा तक'' आदि प्रायः अर्द्धशतक ग्रन्थ लिख लिए हैं व लिख रहे हैं जो ''आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से परे जैन तथ्य'' आदि 50 ग्रन्थ सृजित हैं और देश-विदेश के वैज्ञानिक शिष्यों को पढ़ा रहे हैं तो फिर वैज्ञानिक आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुराज क्यों जीनियसों के जीनियस नहीं होंगे?! अर्थात् अवश्य हैं। इतना ही नहीं शिक्षा, इतिहास, कानून, राजनीति, धर्म, दर्शन आदि बहुआयामी ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी शोधपूर्ण अभी तक गद्य-पद्यमय प्रायः 350 ग्रन्थ सृजित किये व कर रहे हैं। दीर्घ इतिहास साक्षी है, भारतीय लोग ''घर का

जोगी जोगना अनदेश का सिद्ध'' जैसा व्यवहार करते हैं। इन कमियों को त्यागकर प्रतिभाओं का सम्मान, सहयोग, सदुपयोग करना चाहिए। ''जीते बाप से लट्ठमलट्ठा, मरे हुए को पहुँचाए गंगा'' की उक्ति को भाव-व्यवहार से त्यागना चाहिए।

जिज्ञासु-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर
संघस्थ-आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव

''चैतन्य चमत्कार''

(चैतन्य की विशुद्धि से चमत्कार होता, चैतन्य की मन्दता से चमत्कार अनसुलझा (रहस्य, अज्ञात) होता)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1.आत्मशक्ति....2.सायोनारा...)

चमत्कार! चमत्कार! चैतन्य ही सबसे महान् चमत्कार।
चैतन्य ही सबको देखे-जाने, चैतन्य ही सुख-दुःख अनुभव करे।।
निगोद से ले सिद्ध तक, कुज्ञानी मोही से महाज्ञानी तक।
चैतन्य द्वारा ही उक्त काम हुए, चैतन्य बिन सभी निर्जीव होते।। (1)
अशुभ शुभ शुद्ध भाव भी, चैतन्य द्वारा ही होते।
पाप, पुण्य, मोक्ष भी चैतन्य भाव से ही होते।।
ऋद्धि सिद्धि उपलब्धियाँ भी, चैतन्य से ही होते।
मंत्र यंत्र तंत्र टोना, टोटका, जादू भी चैतन्य से ही होते।। (2)
शिक्षा दीक्षा से ले सभ्यता संस्कार संस्कृति भाषा भाव।
कविता नाटक चित्रकला मूर्ति मन्दिर कार्य अभिनव।।
शोध बोध अविष्कार खोज नव-निर्माण क्रान्ति।
धर्म दर्शन विज्ञान गणित आयुर्वेद कानन व राजनीति।। (3)
स्वप्न शकुन अंगस्फूरण आदि अष्टांग निमित्त से पूर्वाभास।
ज्ञात-अज्ञात दूरूह विषयों के ज्ञान से ले लोकालोक का परिज्ञान।।
सत्य-असत्य परिज्ञान हितग्रहण व अहित त्याग।

श्रद्धा प्रज्ञा अनुभूति सही से लेकर गलत तक।। (4)
शान्ति क्रान्ति से ले आध्यात्मिक क्रान्ति से खूनी-क्रान्ति।
व्यक्तिगत क्रान्ति से ले राजनैतिक से ले विश्वक्रान्ति।।
चैतन्य सम्पादन भी चैतन्य चमत्कार से भी होता।
चमत्कार को न समझना चैतन्य की मन्दता से भी होता।। (5)
चैतन्य के कारण ही जीव होते ज्ञान दर्शन मय।
मतिश्रुत अवधि मनः पर्यय केवलज्ञान चतुर्विध दर्शन।।
आत्म श्रद्धान ज्ञान चारित्र सत्य समता शान्ति द्वारा।
चैतन्य चमत्कार बढ़ता जाता ध्यान अध्ययन द्वारा।। (6)
एकान्त मौन एकाग्रता धैर्य सहिष्णुता पवित्रता द्वारा।
चैतन्य चमत्कार बढ़ता जाता आत्मविशुद्धि अनुभव द्वारा।।
चैतन्य चमत्कार से अन्य भी होते हैं प्रभावित।
चेतन से ले परमाणु (क्वांटम) प्रकृति कर्मवर्गणा तक।। (7)
तन मन इन्द्रिय मस्तिष्क भी चैतन्य से होते चेतनामय।
अन्यथा तनमनादि होते हैं अचेतन या निर्जीवमय।।
चैतन्य के विशुद्ध (विकास) से मानव बनते भगवान् तक।
चैतन्य के विकार (पतन) से मानव बनते दानव तक।। (8)
चैतन्य की विशुद्धि से गुणस्थानों का होता विकास।
चैतन्य की अशुद्धि से गुणस्थानों का होता पतन।।
चैतन्य की विशुद्धि हेतु ही समस्त धर्म साधना।
चैतन्य चमत्कार की प्राप्ति हेतु ''कनकसूरी'' करे साधना।। (9)

नन्दौड़ दि-21-9-2019 प्रातः 9.35

अयमात्मा स्वयं साक्षाद्गुणरत्नमहार्णवः।
सर्वज्ञः सर्वदृक् सार्वः परमेष्ठी निरञ्जनः।। (1) ज्ञानार्णव.

यह आत्मा स्वयं साक्षात् गुणरूपी रत्नों का भरा हुआ समुद्र है तथा यही आत्मा सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी है, सबके हितरूप है, समस्त पदार्थों में व्याप्त है, परमेष्ठी (परमपद

में स्थित) है और निरंजन है अर्थात् जिसके किसी प्रकार की कालिमा नहीं है। शुद्ध नय का विषयभूत आत्मा ऐसा ही है।

तत्स्वरूपमजानानो जनोऽयं विधिवञ्चितः।

विषयेषु सुखं वेत्ति यत्स्यात्पाके विषान्नवत्।। (2)

उस आत्मा के स्वरूप को नहीं जानता हुआ यह मनुष्य कर्मों से वंचित हो इन्द्रियों के विषयों में सुख जानता है सो बड़ी भूल है क्योंकि इन्द्रियों का विषय विपाकसमय में विषमिश्रित अन्न के समान होता है।

यत्सुखं वीतरागस्य मुनेः प्रशमपूर्वकम्।

न तस्यानन्तभागोऽपि प्राप्यते त्रिदशेश्वरैः।। (3)

जो सुख वीतराग मुनि के प्रशमरूप (मंदकषायरूप) विशुद्धतापूर्वक है उसका अनन्तवाँ भाग भी इन्द्र को प्राप्त नहीं है।

अनन्तबोधवीर्यादिनिर्मला गुणिभिर्गुणाः।

स्वस्मिन्नेव स्वयं मृग्या अपास्य करणान्तरम्।। (4)

अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्यादि गुण गुणी पुरुषों के द्वारा अपने आत्मा में ही अन्य इन्द्रियादि की सहायता को छोड़ अपने आप ही खोजने चाहिए।

अहो अनन्तवीर्योऽयमात्मा विश्वप्रकाशकः।

त्रैलोक्यं चालयत्येव ध्यानशक्तिप्रभावतः।। (5)

अहो देखो, यह आत्मा अनन्त वीर्यवान् है तथा समस्त वस्तुओं को प्रकाशित करनेवाला है तथा ध्यानशक्ति प्रभाव से तीनों लोकों को भी चलायमान कर सकता है। **भावार्थ**-मुनि जब ध्यान करते हैं तब तीनों लोकों के इन्द्रों के आसन कम्पायमान होते हैं अथवा ध्यान के फल से जो कोई जीव तीर्थंकरपद प्राप्त करता है उसका जन्म होने के समय तीनों लोकों में क्षोभ होता है।

अस्य वीर्यमहं मन्ये योगिनामप्यगोचरम्।

यत्समाधिप्रयोगेण स्फुरत्यव्याहतं क्षणे।। (6)

आचार्य महाराज कहते हैं कि इस आत्मा की शक्तिको मैं ऐसा समझता हूँ कि वह योगियों के भी अगोचर है, क्योंकि वह समाधि ध्यान में लय स्वरूप के प्रयोग से

क्षणमात्र में अव्याहत प्रकाश होती है। **भावार्थ**-अनन्त पदार्थों के देखने जानने की शक्ति प्रगट होती है।

अयमात्मा स्वयं साक्षात्परमात्मेति निश्चयः।

विशुद्धध्याननिर्धूत-कर्मेन्धनसमुत्करः।। (7)

जिस समय विशुद्ध ध्यान के बल से कर्मरूपी ईन्धनों को भस्म कर देता है उस समय यह आत्मा ही स्वयं साक्षात्परमात्मा हो जाता है; यह निश्चय है।

ध्यानादेव गुणग्राममस्याशेषं स्फुटी भवेत्।

क्षीयते च तथानादिसंभवा कर्मसन्ततिः।। (8)

इस आत्मा के गुणों का समस्त समूह ध्यान से ही प्रगट होता है तथा ध्यान से ही अनादिकाल की संचित की हुई कर्मसन्तति नष्ट होती है।

शिवोऽयं वैनतेयश्च स्मरश्चात्मैव कीर्त्तितः।

अणिमादिगुणनर्घ्यरत्नवार्धिर्बुधैर्मतः।। (9)

विद्वानों ने इस आत्मा को ही शिव, गरुड और काम कहा है, क्योंकि यह आत्मा ही अणिमा महिमादि अनर्घ्य (अमूल्य) गुणरूपी रत्नों का समुद्र है। भावार्थ-शिवतत्त्व, गरुडतत्त्व और कामतत्त्व जो अन्यमती ध्यान के लिये स्थापन करते हैं सो आचार्य महाराज कहते हैं कि यह आत्मा की ही चेष्टा है, आत्मा से भिन्न अन्य कोई पदार्थ नहीं है।

''आत्यन्तिकस्वभावोत्थानन्तज्ञानसुखः पुमान्।

परमात्मा विपः कन्तुरहो माहात्म्यमात्मनः।।'' (1) ग्रन्थांतरे

अहो! आत्मा का माहात्म्य कैसा है कि आत्यन्तिक कहिये अन्तरहित अविनश्वर स्वभाव से उत्पन्न हुए अनन्त ज्ञान अनन्त सुखवाला ऐसा परमात्मस्वरूप शिव तथा गुरुड और काम यह आत्मा ही है।

यदिह जगति किञ्चिद्विस्मयोत्पत्तिबीजं भुजगमनुजदेवेष्वस्ति सामर्थ्यमुचैः।

तदखिलमपि मत्वा नूनमात्मैकनिष्ठं भजत नियतचित्ताः शश्वदात्मानमेव।। (18)

हे भव्य जीवों! इस जगत् में जो कुछ अधोलोक में भवनवासी देवों की, मध्यलोक के मनुष्यों की और ऊर्ध्वलोक में देवों की सामर्थ्य विस्मय उत्पन्न करने का

कारण है सो सब ही सामर्थ्य निश्चय करके इस एक आत्मा में ही है; इस कारण हम उपदेश करते हैं कि निश्चलचित्त होकर, तुम एक आत्मा को ही निरन्तर भजो। **भावार्थ**-आत्मा अनंत शक्ति का धारक है, सो इसको जिस प्रकार वा जिस रीति से प्रकट किया जावे उसी प्रकार से यह आत्मा व्यक्तरूप (प्रगट) होता है।

अचिन्त्यमस्य सामर्थ्यं प्रवक्तुं कः प्रभुर्भवेत्।
तच्च नानाविधध्यानपदवीमधितिष्ठति।। (19)

इस आत्मा की शक्ति अचिन्त्य है। उसको प्रगट करने को कोई समर्थ नहीं है। यह शक्ति (सामर्थ्य) नाना प्रकार के ध्यान की पदवी के आश्रय से होती है अर्थात् नाना प्रकार के ध्यान से ही आत्मा की अचिन्त्य शक्तियाँ प्रगट होती हैं।

तदस्य कर्तुं जगदंघ्रिलीनं तिरोहिताऽऽस्ते सहजैव शक्तिः।
प्रबोधितस्तां समभिव्यनक्ति प्रसह्य विज्ञानमयः प्रदीपः।। (20)

पूर्वोक्त आत्मा की सामर्थ्य इस जगत् को अपने पद में (प्रभाव में) लीन करने को स्वभाव स्वरूप ही है, परन्तु वह कर्मों से आच्छादित है। विज्ञानरूप उत्कृष्ट दीपक को प्रज्ज्वलित करने से वह उस शक्ति को प्रगट (स्वानुभवगोचररूप) करता है। **भावार्थ**-आत्मा की शक्तियाँ सब स्वाभाविक हैं। सो अनादिकाल से कर्मों के द्वारा ढँकी हुई हैं। वे ध्यानादिक करने से प्रगट होती हैं। सब उत्पन्न हुई दिखती है, सो ज्ञान रूपी दीपक से प्रकाशित होने पर प्रकट होती है। परकी की हुई वस्तु में कोई भी शक्ति नहीं होती, अन्य निमित्त से उत्पन्न होने पर जो अन्य से हुई मानते हैं सो भ्रम है। वे पर्यायबुद्धि हैं। जब वस्तु का स्वरूप द्रव्यपर्यायरूप जानें तब भ्रम नहीं रहता।

अयं त्रिजगतीभर्त्ता विश्वज्ञोऽनन्तशक्तिमान्।
नात्मानमपि जानाति स्वस्वरूपात्मपरिच्युतः।। (21)

अर्थ-यह आत्मा तीन जगत् का भर्त्ता (स्वामी) है, समस्त पदार्थों का ज्ञाता है, अनन्त शक्तिवाला है, परंतु अनादिकाल से अपने स्वरूप से च्युत होकर अपने आपको नहीं जानता। **भावार्थ**-यह अपनी ही भूल है अर्थात् कर्म के पक्ष से यह दूसरा अज्ञान पक्ष बताया गया है।

अनादिकालसम्भूतैः कलङ्कैः कश्मलीकृतः।

स्वेच्छयार्थान्समादत्ते स्वतोऽत्यन्तविलक्षणान्।। (22)

यह आत्मा अनादि से उत्पन्न हुए कलंक से मलिन किया हुआ अत्यन्त विलक्षण अपने से भिन्न पदार्थों को स्वेच्छा से ग्रहण करता है। **भावार्थ**-पदार्थों में रागद्वेष मोह से अहंकार ममकार इष्टानिष्ट आदि बुद्धि करता है।

दृग्बोधनयनः सोऽयमज्ञानतिमिराहतः।

जानन्नपि न जानाति पश्यन्नपि न पश्यति।। (23)

यह आत्मा दर्शन ज्ञान नेत्रवाला है, परंतु अज्ञानरूपी अंधकार से व्याप्त हो रहा है; इस कारण जानता हुआ भी नहीं जानता और देखता हुआ भी कुछ नहीं देखता।

अविद्योद्भूतरागादिगरव्यग्रीकृताशयः।

पतत्यनन्तदुःखाग्निप्रदीप्ते जन्मदुर्गमे।। (24)

अविद्या (मोह) से उत्पन्न रागादिकरूपी विष के विकार से व्यग्रचित्त होने से यह आत्मा दुःखरूपी अग्नि से जलते हुए दुर्गम संसार में पड़ता है।

लोष्टेष्वपि यथोन्मतः स्वर्णबुद्धया प्रवर्त्तते।

अर्थेष्वनात्मभूतेषु स्वेच्छयाऽयं तथा भ्रमात्।। (25)

जैसे धतूरा खाया उन्मत्त पुरुष पत्थरादि में सुवर्णबुद्धि से प्रवृत्ति करता है उसी प्रकार यह आत्मा अज्ञान से अपने स्वरूप से भिन्न अन्य पदार्थों में स्वेच्छाचाररूप प्रवृत्ति करता है। **भावार्थ**-उनसे रागद्वेष मोह करता है।

वासनाजनितान्येव सुखदुःखानि देहिनाम्।

अनिष्टमपि येनायमिष्टमिथ्याभिमन्यते।। (26)

जीवों के जो सुखदुःख हैं वे अनादि अविद्या की वासना से उत्पन्न हुए हैं इसी कारण यह आत्मा अज्ञान से अनिष्ट को भी इष्ट मानता है। **भावार्थ**-संसारसंबंधी सुख दुःख हैं, वे कर्मजनित होने के कारण अनिष्ट ही हैं तथापि यह आत्मा उनको इष्ट मानता है।

अविश्रान्तमसौ जीवो यथा कामार्थलालसः।

विद्यतेऽत्र यदि स्वार्थे तथा किं न विमुच्यते।। (27)

यह आत्मा जिस प्रकार काम और अर्थ के लिये अविश्रान्त परिश्रम करता है उस प्रकार यदि अपने स्वार्थ मोक्ष व मोक्षमार्ग में लालसासहित प्रवृत्ति करे तो क्या यह कर्मों से मुक्त न होगा? अवश्य ही होगा।

इस प्रकार इस त्रितत्त्व के प्रकरण में तात्पर्य यह है कि इन तीन तत्त्वों की जो चेष्टा कही गई है सो सब इस आत्मा की ही चेष्टा है और वे सब ध्यान करने से प्रगट होती हैं। इस कारण आत्मा के ध्यान करने का विधान है। सो ऐसा ही करना चाहिये। मिथ्याकल्पना किसलिये करनी? मिथ्याकल्पनाओं से कुछ लौकिक चमत्कार ही तो हो सकता है परंतु उससे मोक्ष का साधन नहीं होता। इस कारण ऐसा ध्यान ही करना उत्तम है कि जिससे मोक्ष और सांसारिक अभ्युदय प्रगटे।

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी
स्फुटमुपरितरंतोप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समंतात्
जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम्।। (11) अमृतक.

श्लोकार्थः-(जगत् तं एव सम्यक्त्वभावम् अनुभवतु) जगत के प्राणियों! इस सम्यक स्वभाव का अनुभव करो कि **(यत्र)** जहां **(अमी बद्धस्पृष्टादिभावादयः)** यह बद्धस्पृष्टादिभाव **(एत्य स्फुटम् उपरि तरन्तः अपि)** स्पष्टतया उस स्वभाव के ऊपर तरते हैं, तथापि वे **(प्रतिष्ठाम् न हि विदष्यति)** (उसमें) प्रतिष्ठा नहीं पाते, क्योंकि द्रव्यस्वभाव तो नित्य है एकरूप है और यह भाव अनित्य हैं अनेकरूप है; पर्यायें द्रव्यस्वभाव में प्रवेश नहीं करती, ऊपर ही रहती हैं। **(समन्तात् द्योतमानं)** यह शुद्ध स्वभाव सर्व अवस्थाओं में प्रकाशमान है। **(अपगतमोहीभूय)** ऐसे शुद्ध स्वभाव का, मोह रहित होकर जगत् अनुभव करे; क्योंकि मोहकर्म के उदय से उत्पन्न मिथ्यात्वरूपी अज्ञान जहां तक रहता है, वहां तक अनुभव यथार्थ नहीं होता।

भावार्थः-यहां यह उपदेश है कि शुद्धनय के विषय रूप आत्मा का अनुभव करो।

भूतं भांतमभूतमेव रभसान्निर्भिद्य बंधं सुधो-
र्यद्यंतः किल कोऽप्यहो कलयति व्याहत्य मोहं हठात्।

आत्मात्मानुभवैकगम्यमहिमा व्यक्तोऽयमास्ते ध्रुवं
नित्यं कर्मकलंकपंकविकलो देवः स्वयं शाश्वतः।। (12)

श्लोकार्थः-(यदि) यदि **(कः अपि सुधीः)** कोई सुबुद्धि (सम्यग्दृष्टि) **(भूतं भान्तम् अभूतम् एव बन्ध)** जीव भूत, वर्तमान और भविष्य-तीनों काल में कर्मों के बन्ध को अपने आत्मा से **(रभसात्)** तत्काल-शीघ्र **(निर्भद्य)** भिन्न करके तथा **(मोहं)** उस कर्मोदय के निमित्त से होनवाले मिथ्यात्व **(अज्ञान)** को (हठात्) अपने बल से **(पुरुषार्थ से) (व्याहत्य)** रोककर अथवा नाश करके **(अन्तः)** अन्तरङ्ग में **(किले अहो कलयति)** अभ्यास करे-देखे तो **(अयत् आत्मा)** यह आत्मा (आत्म-अनुभव-एक-गम्य-महिमा) अपने अनुभव से ही जाननेयोग्य जिसकी योग्य जिसकी प्रगट महिमा है ऐसा **(व्यक्तः)** व्यक्त **(अनुभवगोचर)**, **(ध्रुवं)** निश्चल **(शाश्वतः)** शाश्वत, **(नित्यं-कर्म-कलङ्क-पङ्क-विकलः)** नित्य कर्मकलङ्क-कर्दम से रहित **(स्वयं देवः)** स्वयं ऐसा स्तुति करने योग्य देव **(आस्ते)** विराजमान है।

भावार्थः-शुद्धनय की दृष्टि से देखा जाये तो सर्व कर्मों से रहित चैतन्यमात्र देव अविनाशी आत्मा अन्तरङ्ग में स्वयं विराजमान है। यह प्राणी-पर्यायबुद्धि बहिरात्मा-उसे बाहर ढूँढता है, यह महाअज्ञान है।

अब, 'शुद्धनय के विषयभूत आत्मा की अनुभूति ही ज्ञान की अनुभूति है' इस प्रकार आगे की गाथा की सूचना के अर्थरूप काव्य कहते हैः-

आत्मानुभूतिरिति शुद्धनयात्मिका या
ज्ञानानुभूतिरियमेव किलेति बुद्ध्वा।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकंप-
मेकोऽस्ति नित्यमबोधधनः समंतात्।। (13)

श्लोकार्थः-(इति) इस प्रकार **(या शुद्धनयात्मिका आत्म-अनुभूतिः)** जो पूर्वकथित शुद्धनयस्वरूप आत्मा की अनुभूति है **(इयम् एव किल ज्ञान-अनुभूतिः)** वही वास्वत में ज्ञान की अनुभूति है, **(इति बुद्ध्वा)** यह जानकर तथा **(आत्मनि आत्मानम् सुनिष्प्रकम्पम् निवेश्य)** आत्मा में आत्मा को निश्चल स्थापित करके, **(नित्यम् समन्तात् एक अवबोध-धनः अस्ति)** 'सदा सर्व ओर एक

ज्ञानधन आत्मा है' इस प्रकार देखना चाहिये।

भावार्थः-पहले सम्यग्दर्शन को प्रधान करके कहा था; अब ज्ञान को मुख्य करके कहते हैं कि शुद्धनय के विषयरूप आत्मा की अनुभूति ही सम्यक्ज्ञान है।

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठ अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं।। (15)

टीकाः-जो यह अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष और संयुक्त ऐसे पांच भावस्वरूप आत्मा की अनुभूति है वह निश्चय से समस्त जिनशासन की अनुभूति है, क्योंकि श्रुतज्ञान स्वयं आत्मा ही है। इसलिए ज्ञान की अनुभूति ही आत्मा की अनुभूति है। परन्तु अब वहां, सामान्यज्ञान के आविर्भाव (प्रगटपना) और विशेष ज्ञेयाकार ज्ञान के तिरोभाव (आच्छादन) से जब ज्ञानमात्र का अनुभव किया जाता है तब ज्ञान प्रगट अनुभव में आता है तथापि जो अज्ञानी है, ज्ञेयों में आसक्त हैं उन्हें वह स्वाद में नहीं आता। यह प्रगट दृष्टान्त से बतलाते हैः जैसे-अनेक प्रकार के शाकादि भोजनों के सम्बन्ध से उत्पन्न सामान्य लवण के तिरोभाव और विशेष लवण के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला जो (सामान्य के तिरोभाव और शाकादि के स्वाद भेद से भेदरूप-विशेषरूप) लवण है उसका स्वाद अज्ञानी, शाक लोलुप मनुष्यों को आता है किन्तु अन्य की सम्बन्धरहितता से उत्पन्न सामान्य के आविर्भाव और विशेष के तिरोभाव से अनुभव में आनेवाला जो एकाकार अभेदरूप लवण है उसका स्वाद नहीं आता; और परमार्थ से देखा जाये तो, विशेष के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला (क्षाररसरूप) लवण ही सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आनेवाला (क्षाररसरूप) लवण है। इस प्रकार-अनेक प्रकार के ज्ञेयों के आकारों के साथ मिश्ररूपता से उत्पन्न सामान्य के तिरोभाव और विशेष के आविर्भाव के अनुभव में आनेवाला (विशेषभावरूप, भेदरूप, अनेकाकाररूप) ज्ञान व अज्ञानी, ज्ञेय-लुब्ध जीवों के स्वाद में आता है किन्तु अन्य ज्ञेयाकार की संयोग रहितता से उत्पन्न सामान्य के आविर्भाव और विशेष के तिरोभाव से अनुभव में आनेवाला एकाकार अभेदरूप ज्ञान स्वाद में नहीं आता, और परमार्थ से विचार किया जाये तो, जो ज्ञान विशेष के आविर्भाव अनुभव में आता है वही ज्ञान सामान्य के आविर्भाव से अनुभव में आता है। अलुब्ध ज्ञानियों को तो, जसै सैंधव की डली, अन्य द्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद

करके केवल सैंधव का ही अनुभव किये जाने पर, सर्वतः एक क्षाररसत्व के कारण क्षाररूप से स्वाद में आती है उसी प्रकार आत्मा भी, परद्रव्य के संयोग का व्यवच्छेद करके केवल आत्मा का ही अनुभव किये जाने पर, सर्वतः एक विज्ञानघनता के कारण ज्ञानरूप में स्वाद में आता है।

भावार्थः-यहाँ आत्मा की अनुभूति को ही ज्ञान अनुभूति कहा गया है। अज्ञानी जन ज्ञेयों में ही-इन्द्रियज्ञान के विषयों में ही-लुब्ध हो रहे हैं; वे इन्द्रियज्ञान के विषयों से अनेकाकार हुए ज्ञान को ही ज्ञेय मात्र आस्वादन करते हैं परन्तु ज्ञेयों से भिन्न मात्र का आस्वादन नहीं करते। और जो ज्ञानी हैं, ज्ञेयों में आसक्त नहीं है वे ज्ञेयों से भिन्न एकाकार ज्ञान का ही आस्वाद लेते हैं, क्योंकि जो ज्ञान है सो आत्मा है और जो आत्मा है सो ज्ञान है। इस प्रकार गुण-गुणी की अभेद दृष्टि में आनेवाला सर्व परद्रव्यों से भिन्न, अपनी पर्यायों में एकरूप निश्चल, अपने गुणों में एकरूप, परनिमित्त से उत्पन्न हुए भावों से भिन्न अपने स्वरूप का अनुभव, ज्ञान का अनुभव हैं; और यह अनुभवन भावश्रुतज्ञानरूप जिनशासन का अनुभवन है। शुद्धनय से इसमें कोई भेद नहीं है।

अखण्डितमनाकुलं ज्वलदनंतमंतर्बहि-
र्महः परममस्तु नः सहजमुद्विलासं सदा।
चिदुच्छलननिर्भरं सकलकालमालंबते
यदेकरसमुल्लसल्लवणखिल्यलीलायितम्।। (24)

श्लोकार्थः-आचार्य कहते हैं कि **(परमम् महः नः अस्तु)** हमें वह उत्कृष्ट तेज-प्रकाश प्राप्त हो **(यत् सकलकालम् चिद्-उच्छलन-निर्भरं)** कि जो तेज सदाकाल चैतन्य के परिणमन से परिपूर्ण है, **(उल्लसत्-लवण-खिल्य-लीलायितम्)** जैसे नमक की डली एक क्षार रस की लीला का आलम्बन करती है, उसी प्रकार जो तेज **(एक-रसम् आलंबते)** एक ज्ञानरसस्वरूप का आलम्बन करता है; **(अखण्डितम्)** जो तेज अखण्डित है-जो ज्ञेयों के आकाररूप अखण्डित नहीं होता, **(अनाकुलं)** जो अनाकुल है-जिसमें कर्मों के निमित्त से होनेवाले रागादि से उत्पन्न आकुलता नहीं है, **(अनन्तम् अन्तः बहिः ज्वलत्)** जो अविनाशीरूप से अन्तरङ्ग से और बाहर में प्रगट दैदीप्यमान है-जानने में आता है, **(सहजम्)** जो स्वभाव से हुआ है-जिसे किसी ने नहीं रचा और **(सदा उद्विलासं)** सदा जिसका

विलास उदयरूप है-जो एक रूप प्रतिभासमान है।

भावार्थः-आचार्य देव ने प्रार्थना की है कि यह ज्ञानानन्दमय एकाकार स्वरूप-ज्योति हमें सदा प्राप्त रहो।

एष ज्ञानघनो नित्यमात्मा सिद्धिमभीप्सुभिः।
साध्यसाधकभावेन द्विधैकः समुपास्याताम्।। (25)

भावार्थः-आत्मा तो ज्ञानस्वरूप एक ही है परन्तु उसका पूर्णरूप साध्यभाव है और अपूर्णरूप साधकभाव है; ऐसे भावभेद से दो प्रकार से एक का ही सेवन करना चाहिए।

दंसणणाणचरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णि वि अप्पाणं चेव णिच्छयदो।। (16)

टीकाः-यह आत्मा जिस भाव से साध्य तथा साधन हो उस भाव से ही नित्य सेवन करने योग्य है, इस प्रकार स्वयं विचार करके दूसरों को व्यवहार से प्रतिपादन करते हैं कि 'साधु पुरुष को दर्शन ज्ञान चारित्र सदा सेवन करने योग्य है।' किन्तु परमार्थ से देखा जाये तो यह तीनों एक आत्मा ही है क्योंकि वे अन्य वस्तु नहीं-किन्तु आत्मा की ही पर्याय है। जैसे किसी देवदत्त नाम के पुरुष के ज्ञान, श्रद्धान और आचरण, देवदत्त के स्वभाव का उल्लंघन न करने से (वे) देवदत्त ही हैं,-अन्यवस्तु नहीं, इसी प्रकार आत्मा में भी आत्मा के ज्ञान, श्रद्धान और आचरण आत्मा के स्वभाव का उल्लंघन न करने से आत्मा ही है-अन्य वस्तु नहीं। इसलिये यह स्वयमेव सिद्ध होता है कि एक आत्मा ही सेवन करने योग्य है।

भावार्थः-दर्शन, ज्ञान, चारित्र-तीनों आत्मा की ही पर्याय है, कोई भिन्न वस्तु नहीं है; इसलिये साधु पुरुषों को एक आत्मा का ही सेवन करना यह निश्चय है और व्यवहार में दूसरों को भी यही उपेदश करना चाहिए। मैं भविष्य में नहीं होऊँगा,-मैं अपना ही भविष्य में होऊँगा, इस (परद्रव्य) का यह (परद्रव्य) भविष्य में होगा।'' ऐसा जो स्वद्रव्य में ही सत्यार्थ आत्मविकल्प होता है वही प्रतिबुद्ध (ज्ञानी) का लक्षण है, इससे ज्ञानी पहिचाना जाता है।

त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीनं
रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत्।

इह कथमपि नात्मानात्मना साकमेकः

किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम्।। (22)

गाथार्थः-(जगत्) जगत् अर्थात् जगत् के जीवो! **(आजन्मलीनं मोहम्)** अनादि संसार से लेकर आज तक अनुभव किये गये मोह को **(इदानीं त्यजतु)** अब तो छोड़ो और **(रसिकानां रोचनं)** रसिक जनों को रुचिकर, **(उद्यत् ज्ञानम्)** उदय हुवा जो ज्ञान उसको **(रसयतु)** आस्वादन करो; क्योंकि **(इह)** इस लोक में **(आत्मा)** आत्मा **(किल)** वास्तव में **(कथम् अपि)** किसी प्रकार भी **(अनात्मना साकम्)** अनात्मा **(परद्रव्य)** के साथ **(क्व अपि काले)** कदापि **(तादात्म्यवृत्तिम् कलयति न)** तादात्म्यवृत्ति **(एकत्व)** को प्राप्त नहीं होता, क्योंकि आत्मा **(एकः)** एक है वह अन्य द्रव्य के साथ एकतारूप नहीं होता।

भावार्थः-आत्मा परद्रव्य के साथ किसी प्रकार किसी समय एकता के भाव को प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार आचार्य देव ने, अनादिकाल से परद्रव्य के प्रति लगा हुवा जो मोह है उसका भेदविज्ञान बताया है और प्रेरणा की है कि इस एकत्वरूप मोह को अब छोड़ दो और ज्ञान का आस्वादन करो; मोह वृथा है, झूठा है, दुःख का कारण है।

अब अप्रतिबुद्ध को समझाने के लिए प्रयत्न करते हैः-

दृष्टान्त देकर इसी बात को स्पष्ट करते हैः-जैसे खारापन जिसका लक्षण है ऐसा नमक पानी रूप होता हुआ दिखाई देता है और द्रवत्व (प्रवाहीपन) जिसका लक्षण है, ऐसा पानी नमकरूप होता दिखाई देता है, क्योंकि खारेपन और द्रवत्व का एक साथ रहने में अविरोध है, अर्थात् उसमें कोई बाधा नहीं आती, इस प्रकार नित्य उपयोगलक्षण वाला जीवद्रव्य पुद्गलद्रव्य होता हुआ दिखाई नहीं देता और नित्य अनुपयोग (जड़) लक्षणवाला पुद्गलद्रव्य जीवद्रव्य होता हुआ देखने में नहीं आता क्योंकि प्रकाश और अन्धकार की भांति उपयोग और अनुपयोग का एक ही साथ रहने में विरोध है; जड़ और चेतन कभी भी एक नहीं हो सकते। इसलिये तू सर्व प्रकार से प्रसन्न हो, (अपने चित्त को उज्ज्वल करके) सावधान हो, और स्वद्रव्य को ही 'यह मेरा है' इस प्रकार अनुभव कर।

भावार्थः-यह अज्ञानी जीव पुद्गल द्रव्य को अपना मानता है; उसे उपदेश

देकर सावधान किया है कि जड़ और चेतनद्रव्य दोनों सर्वथा भिन्न भिन्न है, कभी भी किसी भी प्रकार से एकरूप नहीं होते ऐसा सर्वज्ञ भगवान् ने देखा है; इसलिये हे अज्ञानी! तू परद्रव्य को एकरूप मानना छोड़ दे; व्यर्थ की मान्यता से बस कर।

अयि कथमपि मृत्वा तत्त्वकौतूहली सन्
अनुभव भव मूर्त्तेः पार्श्ववर्त्ती मुहूर्तम्।
पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन
त्यजसि झगिति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम्।। (23)

गाथार्थः-(अयि) 'अयि' यह कोमल सम्बोधन का सूचक अव्यय है। आचार्यदेव कोमल संबोधन कहते हैं कि हे भाई! तू **(कथम् अपि)** किसी प्रकार महा कष्ट से अथवा **(मृत्वा)** मरकर भी **(तत्त्वकौतूहली सन्)** तत्त्वों को कौतूहली होकर **(मूर्तेः मुहूर्तम् पार्श्ववर्ती भव)** इस शरीरादि से मूर्त द्रव्य का एक मुहूर्त **(दो घड़ी)** पड़ौसी होकर **(अनुभव)** आत्मानुभव कर **(अय येन)** कि जिससे **(स्वं विलसन्तं)** अपने आत्मा के विलासरूप, **(पृथक्)** सर्व परद्रव्यों से भिन्न **(समालोक्य)** देखकर **(मूर्त्या साकम्)** इस शरीरादि मूर्तिक पुद्गल द्रव्य के साथ **(एकत्वमोहम्)** एकत्व के मोह को **(झगिति त्यजसि)** शीघ्र ही छोड़ देगा।

भावार्थः-यदि यह आत्मा दो घड़ी पुद्गलद्रव्य से भिन्न अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव करे (उसमें लीन हो), परीषह आने पर भी डिगे नहीं, तो घातियाकर्म का नाश करके, केवलज्ञान उत्पन्न करके, मोक्ष को प्राप्त हो। आत्मानुभव की ऐसी महिमा है तब मिथ्यात्व का नाश करके सम्यक्दर्शन की प्राप्ति होना तो सुगम है; इसलिये श्रीगुरु ने प्रधानता से यही उपदेश दिया है।

यदि जीवो न शरीरं तीर्थकराचार्यसंस्तु चेव।
सव्वा वि हवदि मिच्छा तेण दु आदा हवदि देहो।। (26)

गाथार्थः-अप्रतिबुद्ध जीव कहता है कि-**(यदि)** यदि **(जीवः)** जीव **(शरीर नं)** शरीर नहीं है तो **(तीर्थकराचार्यसंस्तुतिः)** तीर्थंकरों और आचार्यों की जो स्तुति की गई है वह **(सर्वा अपि)** सभी **(मिथ्या भवति)** मिथ्या है; **(तेन तु)** इसलिये हम (समझते हैं कि) **(आत्मा)** जो आत्मा है वह **(देहः च एव)** देह ही **(भवति)** है।

टीका: जो आत्मा है वही पुद्गलद्रव्यस्वरूप यह शरीर है। यदि ऐसा न हो तो तीर्थंकरों और आचार्यों की जो स्तुति की गई है वह सब मिथ्या सिद्ध होगी। वह स्तुति इस प्रकार है:

(मुझसे) बाह्य अनेक प्रकार की स्वरूप-सम्पदा के द्वारा समस्त परद्रव्य स्फुरायमान हैं तथापि, कोई भी परद्रव्य परमाणुमात्र भी मुझरूप भासते नहीं कि जो मुझे भावरूप तथा ज्ञेयरूप से मेरे साथ एक होकर पुनः मोह उत्पन्न करे; क्योंकि निजरस से ही मोह को मूल से उखाड़कर-पुनः अंकुरित न हो इस प्रकार नाश करके, महान् ज्ञानप्रकाश मुझे प्रगट हुआ है।

भावार्थ:-आत्मा अनादि काल से मोह के उदय से अज्ञानी था, वह श्री गुरुओं के उपेदश से और स्व-काललब्धि से ज्ञानी हुआ तथा अपने स्वरूप को परमार्थ से जाना कि मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, अरूपी हूँ, दर्शनज्ञानमय हूँ। ऐसा जानने से मोह का समूल नाश हो गया, भावकभाव और ज्ञेयभाव से भेदज्ञान हुआ, अपनी स्वरूपसंपदा अनुभव में पाई, तब फिर पुनः मोह कैसे उत्पन्न हो सकता है? नहीं हो सकता।

अब, ऐसा जो आत्मानुभव हुआ उसकी महिमा कहकर आचार्यदेव प्रेरणारूप काव्य कहते हैं कि-ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा में समस्त लोक निमग्न हो जाओ।

मज्जंतु निर्भरममी सममेव लोका
आलोकमुच्छलति शांतरसे समस्ता:।
आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणीं भरेण
प्रोन्मग्न एष भगवानवबोधसिंधु:।। (32)

गाथार्थ:-**(एव: भगवान् अवबोधसिन्धु:)** यह ज्ञानसमुद्र भगवान् आत्मा **(विभ्रम तिस्त्रकरिणों भरेण आप्लाव्य)** विभ्रमरूपी आड़ी चादर को समूलतया डुबोकर **(दूर करके) (प्रोन्मग्न:)** स्वयं सर्वांग प्रगट हुआ है; **(अमी समस्ता लोका:)** इसलिये अब समस्त लोक **(शांतरसे)** उसके शांत रस में **(समम् एव)** एक साथ ही **(निर्भरम्)** अत्यन्त **(मज्जन्तु)** मग्न हो जाओ जो शांत रस **(आलोकम् उच्छलति)** समस्त लोक पर्यंत उछल रहा है।

भावार्थ:-जैसे समुद्र के आड़े कुछ आ जाये तो जल दिखाई नहीं देता और जब वह आड़ दूर हो जाती है तब जल प्रगट होता है; वह प्रगट होने पर, लोगों को

प्रेरणायोग्य होता है कि 'इस जल में सभी लोग स्नान करो', इसी प्रकार यह आत्मा विभ्रम से आच्छादित था तब उसका स्वरूप दिखाई नहीं देता था; अब विभ्रम दूर हो जाने से यथास्वरूप (ज्यों का त्यों स्वरूप) प्रगट हो गया; इसलिए 'अब उसके वीतराग विज्ञानरूप शांतरस में एक ही साथ सर्व लोक मग्न होओ' इस प्रकार आचार्य देव ने प्रेरणा की है अथवा इसका अर्थ यह भी है कि जब आत्मा का अज्ञान दूर होता है तब केवलज्ञान प्रगट होता है और केवलज्ञान प्रगट होने पर समस्त लोक में रहनेवाले पदार्थ एक ही समय में ज्ञान में झलकते हैं उसे समस्त लोक देखो।

इस प्रकार इस समयप्राभृतग्रंथ की आत्मख्याति नामक टीका में टीकाकारने पूर्वरङ्गस्थल कहा। यहाँ टीकाकारका यह आशय है कि इस ग्रंथ को अलङ्कार से नाटकरूप में वर्णन किया है। नाटक में पहले रङ्गभूमि रची जाती है। वहां देखनेवाले, नायक तथा सभा होती है और नृत्य (नाट्य, नाटक) करनेवाले होते हैं जो विविध प्रकार के स्वांग रखते हैं तथा श्रृङ्गारादिक आठ रसों का रूप दिखलाते हैं। वहाँ शृङ्गार, हास्य, रौद्र, करुणा, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्‌भुत-यह आठ रस लौकिक रस है; नाटक में इन्हीं का अधिकार है। नवमा शांत रस है जो कि अलौकिक हैः नृत्य में उसका अधिकार नहीं है। इन रसों के स्थायी भाव, सात्विक भाव, अनुभावी भाव, व्यभिचारी भाव, और उनकी दृष्टि आदि का वर्णन रस ग्रंथों में है वहाँ से जान लेना। सामान्यता रस का यह स्वरूप है कि ज्ञान में जो ज्ञेय आया उसमें ज्ञान तदाकार हुवा, उसमें पुरुष का भाव लीन हो जाय और अन्य ज्ञेय की इच्छा नहीं रहे सो रस है। उन आठ रसों का रूप नृत्य में नृत्यकार बतलाते हैं; और उनका वर्णन करते हुए कवीश्वर जब अन्य रसको अन्य रस के समान कर के भी वर्णन करते हैं तब अन्य रस अङ्गभूत होने से तथा अन्यभाव रसों का अङ्ग होने से, रसवत् आदि अलङ्कार से उसे नृत्यरूप में वर्णन किया जाता है।

यहां पहले रगंभूमिस्थल कहा। वहां देखनेवाले तो सम्यग्दृष्टि पुरुष हैं और अन्य मिथ्यादृष्टि पुरुषों की सभा है, उनको दिखलाते हैं। नृत्य करनेवाले जीव-अजीव पदार्थ हैं और दोनों का एकपना, कर्ताकर्मपना आदि उनके स्वांग हैं। उनमें वे परस्पर अनेकरूप होते हैं,-आठ रसरूप होकर परिणमन करते हैं, सो वह नृत्य है। वहां सम्यक्‌दृष्टि दर्शक जीव-अजीव के भिन्न स्वरूप को जानता है; वह तो इन सब

स्वांगों को कर्मकृत जानकर शांत रसमें ही मग्न है और मिथ्यादृष्टि जीव-अजीव के भेद नहीं जानते इसलिये ये इन स्वांगों को ही यथार्थ जानकर उसमें लीन हो जाते हैं। उन्हें सम्यक्दृष्टि यथार्थ स्वरूप बतलाकर, उनका भ्रम मिटाकर, उन्हें शांतरस में लीन करके सम्यक्दृष्टि बनाता है। उनकी सूचनारूप में रंगभूमि के अन्त में आचार्य ने 'मज्जतु' इत्यादि इस श्लोक की रचना की है, वह अब जीव-अजीव के स्वांग का वर्णन करेंगे इसका सूचक है ऐसा आशय प्रगट होता है।

इंस्पायरिंग। मेडिटेशन करेंगे तो गलतियां कम होगी

मिशिगन यूनिवर्सिटी (अमेरिका) में मेडिटेशन पर हुए अब तक के सबसे बड़े अध्ययन के अनुसार इससे आपकी भूलने की आदत में सुधार होता है। आप कम गलतियाँ करते हैं। मेडिटेशन आपके मस्तिष्क में चल रही गतिविधियों को बदलने की क्षमता रखता है। 'ओपन मॉनीटरिंग मेडिटेशन' नामक इस रिसर्च के लिए 200 लोगों पर प्रयोग किया गया था। ब्रेन सांइसेज जर्नल में प्रकाशित इस रिसर्च के अनुसार ध्यान आपकी भावनाओं, विचारों, संवेदनाओं को तो केंद्रित करता ही है, आपकी याददाशत में इजाफा करता है। साफ शब्दों में कहें तो यह मस्तिष्क के उन तंतुओं की रिपेंयरिंग कर देता है, जो भूलने की आदत के लिए जिम्मेदार हैं। रिसर्च में शामिल जेफ लिन जोकि मनोविज्ञान में डॉक्टरेट हैं, ने कहा-रोजाना कुछ समय किया जाने वाला मेडिटेशन मस्तिष्क में नए विचार, नए आइडिया लाने की क्षमता रखता है।

लिन का कहना है, शोध परिणाम बतातें है कि ध्यान लगाने के विभिन्न तरीकों में अलग-अलग तंत्रिका संबंधी प्रभाव पड़ते हैं। हमारी रिसर्च ओपन मॉनीटरिंग मेडिटेशन विषय पर जारी है, क्योंकि इस विषय पर दुनियाभर में बहुत कम शोध हुआ है। देखा जाए तो मेडिटेशन में आमतौर पर एक ही वस्तु पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, आपकी सांस का उतार-चढ़ाव बताता है कि आपके मस्तिष्क में कुछ चल रहा है। लेकिन यह ओपन मॉनीटरिंग मेडिटेशन थोड़ा अलग कंसेप्ट है-यह आपके भीतर की एक 'धुन' है और आपके शरीर में चल रही हर एक गतिविधि को वॉच करता है। आपका लक्ष्य इस दौरान साइलेंट रहता है, लेकिन आपका मन यहां-वहां की यात्रा करने में व्यस्त रहता है।

लिन और उनके एमएसयू लेखकों 200 से अधिक लोगों को 20 मिनट की ओपन मेडिटेशन मॉनीटरिंग एक्सरसाइज कराई। इसमें ईईजी के माध्यम से इन प्रतिभागियों के मस्तिष्क की गतिविध को मापा गया। ईईजी में मिलीसेकंड स्तर पर भी मस्तिष्क की गतिविधियां की सटीक व सकारात्मक रिपोर्ट मिली। टीम ने पाया कि मन और मस्तिष्क पर निंयत्रण रख किए गए मेडिटेशन के दौरान आपकी स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है।

हालाकि, यह सुधार तत्काल नहीं होता है, इसके लिए लगातार मेडिटेशन करने की जरूरत होगी। शोध टीम के सदस्य जेसन मोजर ने कहा, हमारा प्रयोग इसलिए भी सफल रहा, क्योंकि हम यह बताने में कामयाब हुए कि सिर्फ 20 मिनट का ध्यान भी याददाश्त की क्षमता को बढ़ा सकता है।

''संसार की विपरीत परिणति''

संसार (मार्ग) रमण से विपरीत मोक्षमार्ग

(परस्पर विरोधी है संसार-मोक्ष; मोही-निर्मोही, अन्धविश्वास-सत्य-विश्वास, पवित्रता-अपवित्रता आदि के भाव-लक्ष्य-व्यवहार कथन से)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल: 1.आत्मशक्ति....2.क्या मिलिए....)

आगम-अनुभव-व्यवहार से जो कुछ जाना अभी तक मैंने।
परम सत्य व आत्मतत्त्व की श्रद्धा-प्रज्ञा नहीं अधिकतर जनों में।।
परम सत्य व आत्मतत्त्व से विपरीत पाया है जनगण में।
अन्धश्रद्धा व अन्धानुकरण से, भाव व्यवहार-वचन जनों में।। (1)
अनादि कालीन मोह राग द्वेष काम क्रोध मद ईर्ष्या तृष्णा घृणा से/में।
भावित होकर पशु पक्षी कीट पतंग ही क्या मनुष्य भी विपरीत में।।
परम सत्य आत्मतत्त्व का परिज्ञान न होता इन्द्रिय यंत्र मन से।
तथापि अधिकतर मानव इन से प्राप्त ज्ञान को ही मानते सत्य है।। (2)
यथा चक्षु से आकाश दिखाई देता, सवर्ण व गोलगुम्बद आकार।

सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र गेलेस्की दूर से दिखाई देते छोटे आकार।।
विपरीत श्रद्धा प्रज्ञा के कारण भाव-व्यवहार-वचन भी होते विपरीत।
लोक मूढ़ता व लोक प्रचलन इस से प्रभावित हो व्याप्त लोक में।। (3)
''जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि'' ''जई मई तई गई'' के अनुसार भी।
होता ''अगृहीत मिथ्यात्व'' भी ''गृहीत मिथ्यात्व'' से प्रभावित भी।
अंतरंग-बहिरंग व कार्यकारण निमित्त उपादान परस्पर में।
होते प्रभावित सभी भाव-व्यवहार-कथन नवकोटि द्रव्यक्षेत्र काल में।। (4)
यथा देह को ही मैं (आत्मा, स्वयं, अहं) मानना
देह से सम्बन्धीत को मानना ''मेरे''।
रागद्वेष काम क्रोध मदादि को ''स्वभाव'' मानना इन हेतु भाव-काम सारे।।
सत्ता सम्पत्ति प्रसिद्धि डिग्री व भोगोपभोग, वर्चस्व पाना ''लक्ष्य''।
इस निमित्त पढ़ाई नौकरी विवाह व्यापारादि में लाभ पाना 'सफल'।। (5)
इस में जो सफल होते उस को मानते हैं श्रेष्ठ व जेष्ठ।
व्यक्ति से ले अन्तर्राष्ट्र तक व व्यापार से ले धार्मिक क्षेत्र तक।।
अच्छा भाव व व्यवहार करो कहते लिखते हर धर्म व राष्ट्र में।
किन्तु परमसत्य-समता-शुचिता-व्यापकता-उदारता नहीं भावों में।। (6)
उपरोक्त से विपरीत परमसत्य व आध्यात्मिक भाव-व्यवहार।
शुद्ध-बुद्ध-आनन्द चैतन्य आत्म हित हेतु जो होते भाव-व्यवहार।
इस हेतु चक्रवर्ती तक त्याग करते नवकोटि से राज्यवैभव।
मौन एकान्त निस्पृह वीतरागता से करते हैं स्व (मैं) संशोधन।। (7)
जिससे समस्त विभाव नाश कर बनते सत्य-शिव-सुन्दर।
तन मन इन्द्रियों से भी रहित होकर बनते परमेश्वर।।
ऐसे परमेश्वर ही आत्मिक परमसत्य उनके सम बनना ही परम लक्ष्य।।
तदनुकूल भाव-व्यवहार कथन ही यथार्थ सत्य (यही) ''कनक'' का लक्ष्य।। (8)

नन्दौड़ दि-22/09/2019 रात्रि 8.55

संदर्भ-

आध्यात्मिक भावना से विकास अन्यथा पतन

हे अन्तरात्मन्! तुमने अनन्त दुःख के कारण मूलभूत बहिरात्मपना को त्यागकर परमात्मपना के साधक स्वरूप परम पवित्र, सर्वश्रेष्ठ, समतारूप, सत्य-अहिंसा-अपरिग्रह-ब्रह्मचर्य-रत्नत्रय दस धर्म के जीवन्त/प्रायोगिक रूप जो साधुत्व को प्राप्त किया है उसमें मनसा-वचसा-कर्मणा एक निष्ठ होकर समस्त कल्याण के मूलभूत आत्मकल्याण में सतत, समग्रता से प्रयत्न करो क्योंकि ये ही एक कार्य है जो कि तुमने अनन्त काल से अनन्त जन्म में भी नहीं किया है। इसके अतिरिक्त और समस्तकार्य यथा-जन्म-मरण, भोग-उपभोग-शत्रुता-मित्रता, युद्ध-कलह, मान-अपमान, मरना-मारना, सत्ता-सम्पत्ति, प्रसिद्धि-बुद्धि, वैभव, राजपाट-, अमीरी-गरीबी, रोग-शोक, भय-उद्वेग, क्लेश-संक्लेश, तनाव-उदास आदि समस्त कार्य अवस्थाओं को तुमने किया, करवाय, अनुभव किया है। इन सब कार्यों से तुमने अनन्त दुःख भी भोगे हैं अतएव हे सुखेच्छु! संवेग-वैराग्य युक्त से आत्मन्! अभी तो कम से कम एक बार भी स्वयं के लिए मरकर भी देखो कि स्वयं के लिए मरण से तुम कैसे अमृत बन जाते हो, अजर-अमर, शाश्वतिक ''सच्चिदानंद सत्यं शिवं सुंदरम्'' बन जाते हो। यथाः-

अयि कथमपि मृत्वा तत्व कौतूहली सन्!
अनुभव भव मूर्तेः पार्श्ववर्ती मुहूर्तम्।
पृथगथ विलसंतं स्वं समालोक्य येन
त्यजसि झगति मूर्त्या साकमेकत्वमोहम्।। (अमृतकलश)

हे शान्ति के इच्छुक आत्मन्! तत्व कौतुहल आदि किसी प्रकार से मरकर भी स्व-विज्ञान घनस्वरूप आत्म तत्त्व को मोह, माया, शोक-दुःख से मुहूर्त मात्र के लिए अलग अनुभव करो और जब ऐसा अनुभव करो तो तत्काल स्वशुद्धात्मा से भिन्न भौतिक/अनात्म/विकारभूत मोहादि को हठात् त्याग कर दो इससे तुम निर्मल/पवित्र, आनन्द, ध्यानस्वरूप हो जाओगे।

विरम किमपरेणाकार्यकोलाहलेन।
स्वयमपि निभृतः सन् पश्य षण्मासमेकम् ।।

हृदयसरसि पुंसः पुद्गलाद्भिन्नधाम्नो।
ननु किमनुपलब्धिर्भाति किंचोपलब्धिः।।

हे आत्मन्! संसार के अकार्य कोलाहल से विराम लो। स्वयं ही समस्त संकल्प-विकल्पों से अवकाश प्राप्त करके स्व-आत्मस्वरूप का अवलोकन/अनुभव करो। तब स्वयं को अनुभव हो जाएगा कि तुम्हारा चैतन्य शुद्ध-स्वरूप समस्त भौतिक स्वरूप से भिन्न है या नहीं? अर्थात् निश्चय से भिन्न है।

अतएव हे आत्मन्! आत्मविश्वास, आत्मज्ञान, आत्म अनुसंधान, आत्म परीक्षण-निरीक्षण, आत्म विश्लेषण, आत्मानुचरण से ही स्वात्मोपलब्धि रूप सुख-शान्ति, संवर, निर्जरा, मोक्ष प्राप्त किया जाता है। अन्य सब धार्मिक क्रिया काण्ड, व्रत-नियम-उपनियम, तप-त्याग, परीषह-उपसर्ग सहन, पूजा-पाठ, जप-तप, मंत्र-ध्यान आदि इसके लिए साधन/निमित्त/कारण/उपाय हैं।

हे साधकात्मन्! तुम्हारा निज आत्म वैभव अक्षय अनन्त है। वर्तमान पंचमकाल के समस्त देश-विदेश के सामान्य जन से लेकर उद्योगपति, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, वैज्ञानिक, साधु-संत के वैभव सीमित हैं, क्षायोपशमिक, कर्म सापेक्ष है। अतएव आत्मवैभव की अपेक्षा वर्तमान के स्व-पर के वैभव अत्यन्त तुच्छ हैं/हेय हैं, इसलिए वर्तमान के स्व-पर वैभव से न राग करो, न ईर्ष्या करो, न अहंभाव करो, न दीनभाव करो। जो कुछ तुम्हारी वर्तमान की उपलब्धि है उसका सदुपयोग निज आत्मवैभव की उपलब्धि के लिए ही करो। वर्तमान की उपलब्धि का उपयोग ख्याति, पूजा, लाभ, प्रसिद्धि संक्लेश-तनाव, ईर्ष्या-द्वेष, लन्द-फन्द करके इह परलोक में दुःखी मत हो! शास्त्रों में वर्णन पाया जाता है कि प्राचीनकाल के तीर्थंकर, गणधर आदि चार ज्ञान एवं चौसठ ऋद्धियों के स्वामी होते हुए भी उन सब का उपयोग ख्याति, पूजा, प्रसिद्धि या यहाँ तक कि उनके ऊपर उपसर्ग-परीषह करने वालों के निवारण के लिए भी नहीं किया क्योंकि ऐसा करने से उपलब्धि का (1) सम्यक् सदुपयोग नहीं होता (2) प्राप्त उपलब्धि में मन्दता आती है (3) आत्मोत्थ अक्षय-उपलब्धि में बाधा होती है। अतः हे आत्मन्! ''वन्दे तद्गुणलब्धये'' अनुसार तुम्हारी पंचपरमेष्ठी में जो पूजा/भक्ति/प्रार्थना तब यथार्थ होगी जब उनके गुणों को स्वीकार करेगे क्योंकि गुणानुस्मरण, गुणानुवादन तथा गुणानुकरण ही यथार्थ भक्ति है, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र है।

हे आत्मन्!

आदहिदं कादव्वं यदि चेत् परहिदं कादव्वं,
आदहिदं परहिदादं आदहिदं सुट्ठू कादव्वं।।
उत्तमा स्वात्मचिंतास्यान्मोहचिन्ता च मध्यमा,
अधमा कामचिन्तास्यात् परचिंताऽधमाधमा।।

अर्थात् जिस प्रकार दीपक स्वयं पहले प्रकाशित होकर दूसरों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार तुम स्वयं स्व उपकार करते हुए परोपकार करो। इसके बिना अन्य समस्त प्रपंच, ढोंग-पाखण्ड, संक्लेश त्याग करो।

सिद्धि एवं श्रेय मार्ग

कुबोध रागादि विचेष्टितैः फलं त्वयाऽपि भूयोजननादि लक्षणम्।
प्रतीहि भव्य प्रतिलोम वर्तिभि, ध्रुवं फलं प्राप्यसि तद्विलक्षणम्।। (106)
(आत्मानुशासनम्)

हे भव्य! तूने बार बार मिथ्यात्व, अज्ञान एवं राग द्वेषादि जनित प्रवृत्तियों से जो जन्म-मरणादि रूप फल प्राप्त किया है उसके विरूद्ध प्रवृत्तियों सम्यग्ज्ञान एवं वैराग्य जनित आचरणों के द्वारा तू निश्चय से उसके विपरीत फल अजर-अमर पद को प्राप्त करेगा, ऐसा निश्चय कर।

दयादमत्याग समाधि संततेः पथि प्रयाहि प्रगुणं प्रयत्नवान्।
नयत्यवश्यं वचसामनगोचर, विकल्पदूरं परमं किमप्यसौ।। (10)

हे भव्य! तू प्रयत्न करके सरल भाव से दया, इंद्रिय दमन, दान और ध्यान की परंपरा के मार्ग में प्रवृत्त हो जा वह मार्ग निश्चय से किसी ऐसे उत्कृष्ट पद को प्राप्त कराता है जो वचन से अनिर्वचनीय एवं समस्त विकल्पों से रहित है।

दया-धर्म-त्याग-समाधिनिष्ठम् नय प्रमाण प्रकृताञ्जसाऽर्थम्
अधत्यमन्यैरखिलैः प्रवादैः जिन! त्वदियं मतद्वितीयम्।। (6)
युक्त्यानुशासनम्

हे वीर जिन! आपका यह अनेकान्त रूप शासन अद्वितीय है। इसमें दया, दम त्याग और समाधि में तपाता है। नयों एवं प्रमाणों द्वारा इसमें द्रव्य, पर्याय स्वरूप

जीवादिक तत्वों का अविरोध रूप से, सुनिश्चित असंभव बोधकरूप से निर्णय किया गया है एवं इसमें समस्त एकान्त प्रवादों दर्शनमोहनीय के उदय से सर्वथा एकान्तवादियों की कल्पित मान्यताओं द्वारा किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आ सकती है।

हे आत्मन्! मोक्ष प्राप्ति का पूर्ण अद्वितीय मार्ग रत्नत्रय ही है। अनन्त अनंतदर्शियों ने इस मार्ग पर चलते हुए मोक्ष को प्राप्त किया है। ये अनंतज्ञान को प्राप्त करके पूर्णरूपेण प्रत्यक्ष से अनुभव करके रत्नत्रयात्मक मार्ग को ही यथार्थ मार्ग और इससे अतिरिक्त कुमार्ग, दुःख का मार्ग एवं संसार का मार्ग कहा है। आचार्य प्रवर समंतभद्र स्वामी ने कहा भी हैः-

सदृष्टिज्ञान वृत्तानि धर्म धर्मेश्वरा विदुः।

यदिय प्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धति।। (3)

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चरित्र ही धर्म है, मोक्ष का मार्ग है, इससे विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं कुचारित्र ही कुधर्म है, दुःख का मार्ग है, संसार का मार्ग है, ऐसा धर्म के ज्ञाता धर्म के प्रभु ने बताया है। आचार्य उमास्वामी भी मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र का प्रतिपादन करते हुए प्रथम सूत्र में बताते हैं किः-

सम्यग्दर्शनज्ञानचरित्राणिमोक्षमार्गः।। ''तत्वार्थ सूत्र''

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनों का सम्यक् संयोग रूप त्रयात्मक मोक्ष का मार्ग है।

Right belief, Right knowledge, Right conduct, these (Together contribute) the path of liberation.

Self reverence, self knowledge and self control, these three alone lead life to sovereign power".

निर्विकार से विकास तो विकार से पतन

मुक्तिमिच्छासि चेत्तातः विषयान् विषवत्यज।

क्षमार्ज्जवदयातोषं सत्यं पियूषवद् भज।। (2) अष्टावक्रगीता

हे प्रिय! यदि तू मुक्ति चाहता है तो विषयों को विष के समान छोड़ दे और

क्षमा, आर्जव, दया, संतोष और सत्य को अमृत के समान सेवन कर।

एको विशुद्ध बोधव्योऽहमिति निश्चयवह्निना।

प्रज्वाल्याज्ञानगहनं वीतशोकः सुखी भव।।

मैं एक विशुद्ध बोध हूँ, ऐसी निश्चयनयरूपी अग्नि से गहन अज्ञान को जलाकर तू शोकरहित हुआ सुखी हो।

निरपेक्षो निर्विकारो निर्भरः शीतलाशयः।

अगाधबुद्धिरब्धो भव चिन्मात्रवासनः।।

''तू निरेपक्ष है, निर्विकार है, स्वनिर्भर है, शान्ति और मुक्ति का स्थान है, अगाध बुद्धिरूप है, क्षोभ-शून्य है। अतः चैतन्य मात्र में निष्ठा वाला हो।''

समदुःखसुखपूर्ण आशानैराश्यौः समः।

समजीवित मृत्युः सन्नेमेव लयं व्रज।।

दुःख और सुख जिसके लिए समान है, जो पूर्ण है, जो आशा और निराशा में समान है, जीवन और मृत्यु में समान है, ऐसा होकर तू मोक्ष को प्राप्त हो।

सारस्वरूप से हे आत्मन्! संसारिक सुख-दुःख, मान-अपमानादि तेरा शुद्ध स्वरूप नहीं होने के कारण इससे प्रभावित होने पर दुःखदायी कर्म संचय होते हैं। तथा आत्मज्ञान, आत्मध्यान, समता, आत्म-लीनता, क्षमादि भाव तेरा शुद्ध स्वरूप होने से इससे कर्म नष्ट होते हैं, जिससे अक्षय सुख शान्ति मिलती है।

णाणं दोसे णासिदि णरस्य इंदियकसायविजयेण।

आउहरणं पहरणं जह णासेदि अरिं ससत्तस्स।। (1331)

जैसे सत्वशालिका आयु को हरने वाला शस्त्र शत्रु को नष्ट करता है वैसे ही इन्द्रिय और कषाय को जीतने से ज्ञान मनुष्य के दोषों को नष्ट करता है।

णाणांपि कुणदि दोसे णरस्य इंदियकसायदोसेण।

आहारो वि हु णाणो णरस्य विससंदुदो हर दि।। (1332)

इन्द्रिय और कषायरूप परिणामों के दोष से ज्ञान भी मनुष्य में दोष उत्पन्न करता है। दूसरे के संसर्ग से उपकारी भी अनुपकारी हो जाता है। जैसे आहार प्राण धारण में निमित्त है किन्तु विष से मिला आहार प्राणों का

घातक होता है।

णाणं करेदि पुरिसस्स गुणे इंदियकसायविजयेण।
बलरूववण्णमाऊ करेहि जुत्तो जधाहारो।। (1333)

और इन्द्रिय कषायों को जीतने से ज्ञान पुरुष में गुण उत्पन्न करता है। जैसे विष से रहित आहार बल, रूप, तेज और आयु को बढ़ाता है।

णाणं पि गुणे णासेदि णरस्स इंदियकसायदोसेण।
अप्पवधाए सत्यं होदि हु कापुरिसहत्थागयं।। (1334)

इंद्रिय और कषाय रूप परिणामों के दोष से ज्ञान भी पुरुष के गुणों को नष्ट करता है। जैसे कायर पुरुष के हाथ में गया शस्त्र उसके ही वध में निमित्त होता है।

सबहुस्सुदो वि अवमाणिज्जादि इंदियकसायदोसेण।
णरमाऊधहत्थंपि हु मदयं गिद्धा परिभवंति।। (1335)

इन्द्रिय और कषायों के दोष से अच्छी प्रकार से बहुत से शास्त्रों का ज्ञाता भी, विद्वान् भी अपमान का पात्र होता है। जैसे शस्त्र हाथ में होते हुए भी मरे मनुष्यों को गिद्ध खा जाते हैं।

इंदियकसायवसगो बहुस्सुदो वि चरणे ण उज्जमदि।
पक्खीव छिण्णपक्खो ण उप्पऽदि इच्छामाणो।। (1336)

इंद्रिय और कषाय के वश में हुआ बहुश्रुत विद्वान भी चारित्र में उद्योग नहीं करता। जैसे जिसका पर कट गया है ऐसा पक्षी इच्छा करते हुए भी नहीं उड़ सकता।

इंद्रिय कषाय के योग से बहुत भी ज्ञान स्वयं नष्ट हो जाता है। जैसे शक्कर के साथ कढ़ा हुआ दूध विष के मिलने से नष्ट हो जाता है अर्थात् अपने स्वभाव को छोड़ देता है। यहाँ शक्कर के साथ कढ़ाया हुआ कहने से मिठास के कारण दूध की सातिशयता बतलायी है। ऐसा दूध भी विष के मेल से हानिकारक होता है।

जिसका ज्ञान होता है उसी का उपकारी होता है। यह बात प्रसिद्ध है। किन्तु इन्द्रिय कषाय से मलिन ज्ञान; जिसका होता है, उसका उपचार नहीं करता है। जैसे गधे पर लदा चंदन दूसरों का उपकार करता है।

इन्द्रिय और कषायों का निग्रह करने में जो अपना उपयोग नहीं लगाता अर्थात् इन्द्रिय

और कषाय से प्रभावित है, उसका ज्ञान वस्तुस्वरूप का प्रकाशक नहीं होता। जैसे जिसने आँखे मूँदी है उसके लिए तीव्रता से जलता हुआ दीपक पदार्थ का प्रकाश नहीं करता।

जिसका परिणाम इन्द्रिय और कषाय से मलिन होता है ऐसा कोई साधु बाह्य गमन आगमन आदि क्रियाओं के द्वारा अपने भोग के लिए विषयों को ग्रहण करता है जैसे निश्चल बैठा पक्षी अपनी चोंच से अपने शिकार को ग्रहण करता है।

जैसे घोड़े की लीद ऊपर से चिकनी और भीतर से खुरदरी होती है वैसे ही किसी का बाह्य आचरण तो समीचीन होता है किन्तु अभ्यन्तर परिणाम शुद्ध नहीं होते। उसे घोड़े की लीद के समान कहा है। जिसके अभ्यन्तर परिणाम शुद्ध नहीं है, उसकी बाह्य क्रिया क्या करेगी? अर्थात् इन्द्रिय और कषाय रूप अशुभ परिणाम के द्वारा अभ्यन्तर तपोवृत्ति जिसकी नष्ट हो चुकी है वह बाह्य अनशन आदि तप करे भी तो क्या लाभ है। वह तो नदी के तट पर निश्चल बैठे हुए बगुले की तरह है।

बाहिकरणंविसुद्धी अब्भंतरकरणसोधणत्थाए।
ण हु कुंडयस्य सोधी सक्कासतुसस्स कादुं जो।। (1342)

अभ्यन्तर क्रिया विनय आदि की शुद्धि के लिए बाह्य क्रिया की विशुद्धि कही है। शीघ्र ही बहुत से कर्मों की निर्जरा में समर्थ अभ्यंतर तपों की वृद्धि के लिए बाह्य अनशन आदि तप सुने जाते हैं इसलिए उनका बाह्य नामक सार्थक है। जो जिसके लिए होता है वह प्रधान होता है। इसलिए अभ्यन्तर तप की प्रधानता है। वह अभ्यन्तर तप शुभ और शुद्ध परिणाम रूप होता है। उनके बिना बाह्य तप निर्जरा में समर्थ नहीं होता है। कहा भी है 'भगवान्! आपने आध्यात्मिक तप की वृद्धि के लिए अत्यन्त कठोर बाह्य तप किया।' ठीक ही है, क्योंकि छिलके के रहते हुए धान्य की अन्तः शुद्धि सम्भव नहीं है।

अब्भंतरसोधीए सुद्धं णियमेण बाहिरं करणं।
अब्भंरतदोसेण हु कुणदि णरो बाहिरं दोसं।। (1343)

नियम से अभ्यन्तर शुद्धि के होने से ही बाह्य शुद्धि होती है। इन्द्रिय कषाय परिणाम आदि अन्तरंग परिणाम दोष से ही मनुष्य वचन और काय सम्बन्धी बाह्य दोषों को दूर करता है।

लिंग च होदि अब्भंतरस सोधीए बाहिरा सोधी।
भिउडीकरणं लिंग जह अंतोजाद कोधस्य।। (1334)

अनशन आदि तप विषयक बाह्य शुद्धि अभ्यन्तर परिणामों की विशुद्धि का चिन्ह है। जैसे क्रोध उत्पन्न होने का चिन्ह भ्रकुटी चढ़ाना होता हैं इस प्रकार बाह्य और अभ्यन्तर की अग्नि और धूम की तरह परस्पर में अविनाभाविता है। जैसे आग के होने पर धूम होता है। अतः जहाँ धूम होता है वहाँ आग अवश्य होती है। इसी को अविनाभाविता कहते हैं। धूम लिंग है आग लिंगी है। इसी प्रकार बाह्य कार्य के साथ अभ्यन्तर कारण लिंगी का भाव सम्बन्ध जानना। संक्षिप्ततः हे आत्मन्! संसार दुःख के कारणभूत कर्मास्रव एवं बंध जीव के वैभाविक योग तथा उपयोग से होता है। अतः दुःख क्षय के लिए संवर, निर्जरा, मोक्ष के कारण भूत, वैभाविक योग (विषय, कषाय) त्याग करना केवल आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

धर्माचरण की प्रेरणा

पापद् दुःखं धर्मात्सुखमिति सर्वजन सुप्रसिद्धमिदम्।
तस्माद्विहाय पापं चरतु सुखार्थी सदा धर्मम्।। (8) आत्मा.

''पाप से दुःख होता है और धर्म से सुख होता है''-यह कथन समस्त लोक में प्रसिद्ध है। सभी ऐसा मानते हैं और कहते हैं। इसलिए जिसे सुख चाहिए है उसे पाप को छोड़कर सदाकाल धर्म का आचरण करना चाहिए।

संसार के सभी प्राणियों को धर्म करने का उपदेश

सुखितस्य दुःखितस्य च संसारे धर्मएव तव कार्यः।
सुखितस्य तदभिवृद्धयै दुःखभुजस्तदुपघाताय।। (18)

(हे जीव!) तू संसार में सुखी हो या दुःखी तुझे धर्म ही करना योग्य है। जो सुखी है, उसे सुख बढ़ाने के लिए और जो दुःखी है उसे दुःख का नाश करने के लिए धर्म ही करना चाहिए।

विषय सुख भोगते हुए भी धर्म की रक्षा करने से प्रेरणा

धर्मारामतरूणां फलानि सर्वेन्द्रियार्थ सौख्यानि।
संरक्ष्य तांस्ततस्तास्युच्चिनु यैस्तैरूपायैस्त्वम्।। (19)

समस्त इन्द्रिय विषयों के सुख धर्मरूपी बाग के सम्यक् और संयमादिक वृक्षों

के फल हैं। इसलिए तू किसी भी उपाय से उन वृक्षों को सुरक्षित रखकर उनके फल को ग्रहण कर।

धर्माचरण से सुख भंग होने से भय का निराकरण

धर्मः सुखस्य हेतुर्हेतुर्न विराधकः स्वकार्यस्य।

तस्मात् सुखभंगधिया मा धर्मस्य विमुखस्त्वम्।। (20)

धर्म सुख का कारण है ओर जो सुख का कारण होता है, वह अपने कार्य का विरोधी नहीं होता, इसलिए तू सुख-भंग होने का भय करके धर्म से विमुख मत हो।

कृषक के उदाहरण से धर्म रक्षा के प्रेरणा

धर्मादवाप्तविभवो धर्मं प्रतिपाल्य भोगमनुभवतु।

बीजादवाप्तधान्यः कृषीवलस्तस्य बीजमिव।। (21)

जिस प्रकार बीज से अन्न प्राप्त करने वाला किसान उस अन्न के बीज को सुरक्षित रखता है, उसी प्रकार जिस जीव ने धर्म से सुख-सम्पत्ति रूप वैभव प्राप्त किया है, उसे धर्म का पालन करते हुए भोग भोगना चाहिए।

धर्म का फल बिना माँगे ही प्राप्त होता है

संकल्प्यं कल्पवृक्षस्य चिन्त्यं चिन्तामणेरपि।

असंकल्प्यमसंचिन्त्यं फलं धर्मादवाप्यते।। (22)

कल्पवृक्ष का फल तो संकल्प योग्य वचनों से याचना करने पर मिलता है और चिन्तामणि का फल भी चिन्तवन योग्य मन द्वार याचना करने पर मिलता है, परन्तु धर्म से ऐसा अद्‌भुत फल मिलता है, जो संकल्प और चिन्तन योग्य नहीं; अर्थात् उसकी प्राप्ति के लिए संकल्प या चिन्तवन की आवश्यकता नहीं है।

आत्मा के परिणामों से ही पुण्य और पाप की उत्पत्ति

परिणाममेव कारणमाहुः खलुः पुण्यपापयोप्राज्ञाः।

तस्मात् पापापचयः पुण्योपचयश्च सुविधेयः।। (23)

बुद्धिमान पुरुष निश्चय से आत्मा के परिणाम (भावों) को ही पुण्य-पाप का कारण

कहते हैं, इसलिए भले प्रकार से पाप का नाश और पुण्य का संचय करना चाहिए।

धर्म संचय न करने वालों की निन्दा

कृत्वा धर्मविघातं विषयसुखान्यनुभवन्ति ये मोहात्।
आच्छिद्य तरून्मूलात् फलानि गृहन्ति ते पापाः।। (24)

जो जीव मोह या भ्रम के कारण धर्म का घात करते हुए विषय सुख को भोगते हैं, वे पापी वृक्ष को मूल से उखाड़ कर फलों को ग्रहण करते हैं।

विषय सुख भोगते हुए भी धर्मोपार्जन सम्भव है

कर्तृत्व हेतु कर्तृत्वानुमतैः स्मरण चरणवचनेषु।
यः सर्वथाभिगम्यः स कथं धर्मो न संग्राह्यः।। (25)

जो धर्म कृत, कारित, अनुमोदना के साथ मन, वचन, काय के द्वारा सर्व प्रकार से प्राप्त करने योग्य है, उसका संग्रह क्यों नहीं करना चाहिए?

शब्दार्थः-कृत=कर्त्तापना, कारित=कार्य के हेतुओं (कारणों) का कर्त्तापना, अनुमोदन=कर्त्ता के अनुसार अभिप्राय रखना, स्मरण=मन में विचार करना, वचन=भाषारूप वचन बोलना, आचरण=काया द्वारा अंगीकार करना।

लौकिक जीवों की मूर्खतापूर्ण प्रवृत्ति

पिता पुत्रं पुत्रः पितरमभिसंधाय बहुधा।
विमोहादीहते सुखलवमवाप्तुं नृपपदम्।।
अहो मुग्धो लोको मृतिजनन दंष्ट्रान्तरगतो।
न पश्यत्यश्रान्तं तनुमपरहन्तं यममुम्।। (34)

मोह के कारण जिसमें सुख का अंश भासित होता है ऐसे राजपद की अभिलाषा से पिता पुत्र को पुत्र पिता को ठगता है। अहो! बड़ा आश्चर्य है कि मूर्ख लोग जन्म-मरण रूपी दाढ़ के मध्य में स्थित, शरीर को निरंतर हरण करने वाले यम को नहीं देखते हैं।

''विषयान्ध पुरुष की दुर्दशा का वर्णन''

अन्धादयं महानन्धो विषयान्धीकृतेक्षणः।
चक्षुषाऽन्धो न जानाति विषयान्धो न केनचित्।। (35)

जिसके सम्यग्ज्ञानरूपी नेत्र विषयों से अन्धे हो रहे हैं, वह अन्धों से भी महा अन्ध है; क्योंकि जो अन्धा है वह मात्र नेत्रों से ही नहीं जान पाता, परन्तु जो विषयों से अन्धा है वह किसी भी इन्द्रिय से नहीं जानता।

''विषयाभिलाषा की व्यर्थता''

आशागर्तः प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपमम्।
कस्य किं कियदायाति वृथा वो विषयैषिता।। (36)

पौद्गलिक कर्म के भावों से जीवों के भाव मिले हुए नहीं होने पर भी अज्ञानी को मिले हुए लगते हैं। इसी प्रकार प्रत्यक्षीभूत चैतन्य स्वरूप आत्मा कर्मकृत भाव से, पर्यायों से, नर, देव आदि रूप पर्यायों से निश्चयनय से अयुक्त होने पर भी, असम्बन्ध होने पर भी अज्ञानी के लिये, मूर्खों के लिये परमार्थ से तृण अग्नि से अलग होने पर भी अग्नि को तथा तृण को एक समान मान लेता है। उसी प्रकार अज्ञानी जीव एवं कर्म को एक मान लेता है भले दोनों अलग-अलग हैं। जिस प्रकार अग्नि से तप्तायमान लौह पिण्ड को दृष्टि भ्रम से अग्नि मान लेता है परन्तु अग्नि तथा लौह पिण्ड पृथक्-पृथक् हैं। इसी प्रकार नर, अमर आदि पर्याय आत्मा से भिन्न होते हुए भी मोहान्धकार से कलुषित चेतना वाले मनुष्य को अभिन्न दिखाई देती हैं। यही प्रतिभास/अभिन्नता भव के लिये बीज स्वरूप बन जाती है। उसी प्रकार निश्चय से पूर्वोक्त प्रतिभास स्वरूप जीव कर्म बन्ध रूप भव बीज होता है। संसार का कारण होता है।

पुरुषार्थसिद्धि का उपाय

विपरीताऽभिनिवेशं, निरस्य सम्यग्व्यवस्य निजतत्वम्।
यत्तस्मादविचलनं, स एव पुरुषार्थसिद्ध्युपायोऽयम्।। (15)

Having got rid of the above perversity and having well realised the nature of the self, steadfastness the reain is the means of the acquisition of the object of Jiva.

जो विपरीत अभिनिवेश स्वरूप एकान्तादि मिथ्या श्रद्धान रूप अभिनिवेश को दूर करके निज आत्म तत्व को सम्यक् से जानकर स्वीकार करके स्वतत्व में अविचल हो जाता है वह पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय को प्राप्त कर लेता है। यही पुरुषार्थसिद्ध्युपाय अर्थात्

मोक्षार्थ उपाय है। विपरीत अभिनिवेश का वर्णन भाव संग्रह के अनुसार-जिस प्रकार धतूरा कोद्रव मदिरा से मोहित जीव कार्य अकार्य को नहीं जानता है उसी प्रकार मिथ्या से मोहित जीव सम्यक् स्वरूप को नहीं जानता है वह मिथ्यात्व विपरीत आदि भेद से सप्त प्रकार का है। अहिंसा लक्षण धर्म को अन्यथा स्वरूप से अर्थात् हिंसा रूप में मानना विपरीत मिथ्यात्व है। किस प्रकार यज्ञादि में हिंसा करने से गवादि पशु की वन्दना करने से जल स्नान से, श्राद्धादि करने से मोक्ष की उपलब्धि हो सकती है। जो जीवादि वस्तु को सर्वथा सत् स्वरूप, असत् स्वरूप, एक स्वरूप, अनेकस्वरूप या क्षणिक रूप मानना एकान्त मिथ्यादृष्टि है। केवल विनय से ही मोक्ष प्राप्त होता है ऐसा मानना विनय मिथ्यात्व है। क्या रत्नत्रय के बिना केवल गुरु पाद पूजादि रूप विनय से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है? जो सर्वत्र संशय को प्राप्त है तथा निश्चित रूप में तत्व का यथार्थ स्वरूप श्रद्धान नहीं करता है उसे संशय मिथ्यात्व कहते हैं। किस प्रकार प्रत्यक्षादि प्रमाण से जाना गया अर्थ में, देशान्तर में, कालान्तर में, व्यभिचार हो सकता है? आप्त वचन आदि प्रमाण से जिसका निर्णय नहीं हो सकता है तथा संशय से युक्त है वह संशय मिथ्यात्व है। केवली-मुक्ति, स्त्री मुक्ति प्रतिमा अलंकार सहित इत्यादि चौरासी महान् वाक्य निरूपण के कारण संशय मिथ्यात्व है। अज्ञान से ही मोक्ष होता है ऐसा मानना अज्ञान मिथ्यात्व है। ज्ञानोपयोग, दर्शनापयोग लक्षण वाला जीव होते हुए भी अज्ञान से मोक्ष मानना अज्ञान मिथ्यात्व है। जीव का अभाव मानना चार्वाक या भौतिक वादी दृष्टि है। पंचभूत से निर्मित शरीर में मदशक्ति रूप तात्कालिक शक्ति का संचार ही जीव है। और वह जीव न पहले था न अभी रहेगा ऐसा मानना भौतिकवादी सिद्धान्त है। जीवों को अस्ति रूप में मानना परन्तु जीव द्वारा किया गया पुण्य पापादि का फल जीव भोग नहीं करता है परन्तु प्रकृति भोगती है परन्तु जीव स्वभाव में परिणमन करता है ऐसा मानना सांख्य मिथ्यात्व है या एकान्त आध्यात्मिक मिथ्यात्व है। ये सब मिथ्या दृष्टि काल अपेक्षा भरत क्षेत्र में होते हैं अर्थात् भाव मिथ्यात्व तो हर क्षेत्र हर काल में संभव है। परन्तु द्रव्य मिथ्यात्व तो केवल हुण्डा-अवसर्पिणी काल में भरत ऐरावत क्षेत्र में होता है।

स्थूल दृष्टि से मिथ्यात्व सात प्रकार का है। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से मिथ्यात्व

असंख्यात लोक मात्र है। जिस प्रकार पित्त ज्वर से आक्रान्त पुरुष को दुग्धादि मधुर रस नहीं रुचता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि को अहिंसा लक्षण, रत्नत्रयात्मक धर्म नहीं रुचता है। इसी प्रकार समस्त मिथ्यादृष्टियों को पुरुषार्थ सिद्धि की कभी भी उपलब्धि नहीं होती है। इसी प्रकार का विचार करके स्याद्वाद से अलंकृत भगवत् वचन रूपी दिनकर रश्मि से मिथ्यात्व को दूर करके शुद्धात्मा स्वरूप ज्ञान में ही निज स्वरूप में जो स्थित होता है वही मोक्ष का उपाय है। मिथ्यात्व का स्वरूप अन्य ग्रन्थों में विस्तार से वर्णन किया गया है विशेष जिज्ञासु उस ग्रन्थ से अध्ययन करें।

मुनियों की अलौकिक वृत्ति

अनुसरतां पदमेतत्, करंविताचार नित्य-निरभिमुखाः।
एकांत विरति रूपा भवंति मुनीनामलौकिकी वृत्तिः।। (16)
एकाकी निस्पृहः शान्तः पाणि पात्रो दिगम्बरः।
कदाऽहं संभविष्यामि, कर्म निर्मूलनेक्षमः।। (1)

संसार-रहित वृत्ति अर्थात् अलौकिक आचार निर्ग्रन्थ मुनियों के होते हैं। इस आत्म तत्व पद का अनुसरण करता हुआ मुनि समस्त पापों से निवृत्त होकर व्यवहार से मिला हुआ आचार से सदैव विमुख होकर अर्थात् पाप क्रिया से मुक्त व्यवहार से विरक्त होकर सदैव आलौकिक वृत्ति अर्थात् पाप रहित वृत्ति में विचरण करता है। कहा भी है-भव्य मुमुक्ष विचार करता है कि मैं कब एकाकी, निस्पृह, शान्त, पाणि-पात्री, दिगम्बर होकर कर्म को नष्ट करने में सक्षम बनूँ। इसलिए समस्त पाप से विरक्ति मुनि की होती है न कि गृहस्थों की।

आराधना-पाठ

-कवि श्री द्यानतराय

(स्नान करते समय बोलना चाहिए)

मैं देव नित अरहंत चाहूँ, सिद्ध का सुमिरन करौं।
सूरि-गुरु-मुनि तीन पद ये, साधुपद हिरदय धरौं।।
मैं धर्म करुणामय जु चाहूँ, जहाँ हिंसा रंच ना।

मैं शास्त्रज्ञान-विराग चाहूँ, जासु में परपंच ना।। (1)
चौबीस श्रीजिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसे।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहू, वंदतैं पातक नसे।।
गिरनार शिखर समेद चाहूँ, चंपापुरी पावापुरी।
कैलाश श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजें भ्रम जुरी।। (2)
नवतत्त्व का सरथान चाहूँ, और तत्त्व न मन धरौं।
षट्द्रव्य-गुन-परजाय चाहूँ, ठीक जासों भय हरौं।।
पूजा परम जिनराज चाहूँ, और देव न चहूँ कदा।
तिहुँकाल की मैं जाप चाहूँ, पाप नहिं लागे कदा।। (3)
सम्यक्त्व-दर्शन-ज्ञान-चारित, सदा चाहूँ भावसों।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूँ, महा-हरख-उछाव सों।।
सोलह जु कारन दुःख निवारण, सदा चाहूँ प्रीतिसों।
मैं नित अठाई-पर्व चाहूँ, महामंगल-रीति सों।। (4)
अनुयोग चारों सदा चाहूँ, आदि-अन्त निवाह-सों।
पाये धरम के चार चाहूँ, चित्त अधिक उछाह सों।।
मैं दान चारों सदा चाहूँ, भवन-बस लाहो लहूँ।
आराधना मैं चारि चाहूँ, अन्त में ये ही गहूँ।। (5)
भावना-बारह जु भाऊँ, भाव निरमल होत हैं।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग-भाव उद्योत हैं।।
प्रतिमा-दिगंबर सदा चाहूँ, ध्यान-आसन सोहना।
वसुकर्मतैं मैं छुटा चाहूँ, शिव लहूँ जहँ मोह ना।। (6)
मैं साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिन ही सों करौं।
मैं पर्व के उपवास चाहूँ, अवर-आरंभ परिहरौं।।
इस दुक्ख पंचमकाल-माहीं, सुकुल-श्रावक मैं लह्यो।
अरु महाव्रत धरि सक्यों नाहीं, निबल-तन मैंने गह्यो।। (7)
आराधना उत्तम सदा, चाहूँ सुनो जिनरायजी।
तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत', दया करना न्याय जी।।

वसुकर्म-नाश विकास, ज्ञान प्रकाश मोको दीजिये।
करि सुगति-गमन समाधिमरन, सुभक्ति-चरनन दीजिये।। (8)

आत्म-कीर्तन

-कवि श्री मनोहरलाल वर्णी 'सहजानंद'

हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता-द्रष्टा आतम-राम।
मैं वह हूँ जो हैं भगवान्, जो मैं हूँ वह हैं भगवान्।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग मैं राग-वितान।। (1)
मम-स्वरूप है सिद्ध-समान, अमित-शक्ति-सुखज्ञान-निधान।
किन्तु आश-वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट-अजान।। (2)
सुख-दुःखदाता कोई न आन, मोह-राग रूष दुःख की खान।
निज को निज पर को पर जान, फिर दुःख का नहिं-लेश निदान।। (3)
जिन-शिव-ईश्वर-ब्रह्मा-राम, विष्णु-बुद्ध-हरि जिनके नाम।
राग-त्याग पहुँचूं निज-धाम, आकुलता का फिर क्या काम।। (4)
होता स्वयं जगत् परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो पर-कृत-परिणाम, 'सहजानन्द' लखूँ अभिराम।। (5)

आत्मरमण

-कवि श्री मनोहरलाल वर्णी 'सहजानंद'

मैं दर्शन-ज्ञान स्वरूपी हूँ, मैं सहजानंद-स्वरूपी हूँ।
हूँ ज्ञानमात्र परभाव शून्य, हूँ सहज-ज्ञानघन स्वयंपूर्ण।
हूँ सत्य-सहज आनंद धाम, मैं सहजानंद-स्वरूपी हूँ।। (1)
हूँ खुद का ही कर्ता भोक्ता, पर में मेरा कुछ काम नहीं।
पर का प्रवेश न कार्य यहाँ, मैं सहजानंद-स्वरूपी हूँ।। (2)
आऊँ उतरूँ रम लूँ निज में निज की निज में दुविधा ही क्या।
निज-अनुभव-रस से सहज-तृप्त, मैं सहजानंद-स्वरूपी हूँ।। (3)

आत्म-भक्ति

-कवि श्री मनोहरलाल वर्णी 'सहजानंद'

मेरे शाश्वत-शरण, सत्य-तारणतरण ब्रह्म प्यारे।
तेरी भक्ति में क्षण जायें सारे।। टेक।।
ज्ञान से ज्ञान में ज्ञान ही हो, कल्पनाओं का एकदम विलय हो।
भ्रांति का नाश हो, शांति का वास हो, ब्रह्म प्यारे।
तेरी भक्ति में क्षण जायें सारे।। (1)
सर्वगतियों में रह गति से न्यारे, सर्वभावों में रह उनसे न्यारे।
सर्वगत आत्मगत, रत न नाहीं विरत, ब्रह्म प्यारे।
तेरी भक्ति में क्षण जायें सारे।। (2)
सिद्धि जिनने भी अबतक है पाई, तेरा आश्रय ही उसमें सहाई।
मेरे संकटहरण, ज्ञान-दर्शन-चरण, ब्रह्म प्यारे।
तेरी भक्ति में क्षण जायें सारे।। (3)
देह-कर्मादि सब जग से न्यारे, गुण व पर्यय के भेदों से परे।
नित्य अन्तःअचल, गुप्त ज्ञायक अमल, ब्रह्म प्यारे।
तेरी भक्ति में क्षण जायें सारे।। (4)
आपका आप ही श्रेय तू है, सर्व श्रेयों में नित श्रेय तू है।
सहजानंदी प्रभो, अन्तर्यामी विभो, ब्रह्म प्यारे।
तेरी भक्ति में क्षण जायें सारे।। (5)

मुक्ति-शान्ति-आत्मविशुद्धि-आत्मशक्ति हेतु-हे आत्मन् (कनक)! निश्चय से तू ही तेरे मोक्षमार्ग-मोक्ष

(निश्चय से मेरा मोक्षमार्ग-मंगल-उत्तम-शरण मैं ही हूँ!)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः इन्साफ की डगर पे...)

मोक्ष की डगर पे...तू चल निडर बनके...
अनन्तशक्ति आतम...निर्भर हो जा तू उस पे...(स्थायी)...

तू सर्वज्ञ परमेश...इस हेतु स्व-श्रद्धान...
अनादि अनिधन ध्रुव...स्वयम्भू-स्वयंपूर्ण...
इसका ही करो ज्ञान...जो है आत्म-विज्ञान...मोक्ष...(1)...
इससे बनोगे सर्वज्ञ...इस हेतु कर चरण....
सर्व बन्धन त्यागो...राग द्वेष मोह क्रोध....
ईर्ष्या तृष्णा घृणा...ख्याति पूजा लाभ वर्चस्व...(मोक्ष)...(2)...
आकर्षण-विकर्षण...अपेक्षा (उपेक्षा) प्रतीक्षा त्याग...
संकल्प-विकल्प से...होता सदा संक्लेश...
भेदभाव तेरा-मेरा...ऊँच-नीच धनी-गरीब...मोक्ष...(3)...
धन जन पराश्रित...मन वच काय कृत कारित...
तेरा वैभव है तुझमें...अन्य के न आश्रित...
परम शरण यही तव...मंगल व उत्तम...मोक्ष...(4)...
अन्य सभी अशरण...अमंगल-अपावन...
व्यवहार चारों मंगलादि...इस हेतु ही है कारण...
स्व में ही स्वयं द्वारा...स्व में ही मोक्ष पाओ...मोक्ष...(5)...
भाव मोक्ष होने पर...द्रव्य मोक्ष होगा (ही) मानो...
निज में ही मुक्ति अनुभवो...जिससे पाओगे शान्ति...
जितने अंश में शान्ति...उतने अंश में मुक्ति...मोक्ष...(6)...
जितने अंश में मुक्ति...उस अंश में साम्य-शुचि...
उतने अंश में होती...आत्मशक्ति व विशुद्धि...
इनकी ही पराकाष्ठा...होता है परम मोक्ष...
(परम मोक्ष के हेतु...'कनक' करे पुरुषार्थ)...मोक्ष...(7)...

नन्दौड़, दि, 25/9/2019, रात्रि 8.15

संदर्भ-

मथित्वात्मानमात्मैव जायतेऽग्निर्यथा तरुः।। (98)

अथवा अपना आत्मा अपने आत्मस्वरूप को ही आराधना चिन्तवन करके परमात्मा हो जाता है जैसे अपने आप को ही रगड़कर बाँस का पेड़ स्वयं ही अग्नि हो जाता है।

जेहउ णिम्मलु णाणमउ सिद्धिहिँ णिवसइ देउ।

तेहउ णिवसइ बंभु परु देहहँ मं करि भेउ।। (गा.26) परमात्म प्रकाश

जैसा-केवलज्ञानादि प्रकटस्वरूप कार्यसमयसार उपाधि रहित भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्मरूप मल से रहित केवलज्ञानादि अनंतगुणरूप सिद्ध परमेष्ठी देवाधिदेव परम आराध्य मुक्ति में रहता है, वैसा ही सब लक्षणों सहित परब्रह्म, शुद्ध, बुद्ध, स्वभाव परमात्मा, उत्कृष्ट शुद्ध द्रव्यार्थिक नयकर शक्ति रूप परमात्मा शरीर में तिष्ठता है, इसलिये हे प्रभाकर भट्ट तू सिद्ध भगवान् में और अपने में भेद मत कर।

जो दिट्ठे तुट्टंति लहु कम्मइं पुव्व कियाइँ।

सो परु जाण हि जोइया देहि वसंतु ण काँई।। (27)

जिस आत्मा को सदा आनंद रूप वीतराग निर्विकल्प समाधिस्वरूप निर्मल नेत्रों कर देखने से शीघ्र ही निर्वाण को रोकने वाले पूर्व उपार्जित कर्म चूर्ण हो जाते हैं, अर्थात् सम्यग्ज्ञान के अभाव से भी जो पहले अशुभ कर्म कमाये थे, वे निजस्वरूप के देखने से ही नाश हो जाते हैं, उस सदानंदरूप परमात्मा को देह में बसते हुए भी हे योगी! तू क्यों नहीं जानता।

देहदेवलजी जो बसइ देउ अणाइ-अणंतु।

केवल-णाण-फुरंत-तणु सो परमप्पु णिभंतु।। (33)

जो व्यवहारनयकर देहरूपी देवालय में बसता है निश्चय नयकर देह से भिन्न है देह की तरह मूर्तिक तथा अशुचिमय नहीं है महापवित्र है, आराधने योग्य है, पूज्य है। देह आराधने योग्य नहीं है। जो परमात्मा आप शुद्ध द्रव्यार्थिकनयकर अनादि अनंत है तथा देह आदि अन्त कर सहित है, जो आत्मा निश्चय नयकर लोक अलोक को प्रकाशने वाले केवल ज्ञान स्वरूप है अर्थात् केवलज्ञान ही प्रकाशरूप शरीर है और देह जड़ है वही परमात्मा निःसंदेह हैं, इसमें कुछ संशय नहीं समझना।

बुज्झंतहँ परमत्थु जिय गुरु लहु अत्थि ण कोइ।

जीवा सयलवि बंभु परु जेण वियाणइ सोई।। (94) प.

हे जीव, परमार्थ को समझने वालों के कोई जीव बड़ा छोटा नहीं है, सभी जीव परमब्रह्म स्वरूप है, क्योंकि निश्चयनय से वह सम्यग्दृष्टि शुद्ध जीव स्वरूप सबको जानता है।

जो भत्तउ-रयण-त्तयह तसु मुणि लक्खणु एउ।

अच्छउ कहिं वि क्रुडिल्लियइ सो तसु करइ ण भेउ।। (95)

जो मुनि रत्नत्रय की आराधना करने वाला है, उसके यह लक्षण जानना कि किसी शरीर में जीव रहे, वह ज्ञानी उस जीव का भेद नहीं करता, अर्थात् देह के भेद से गुरुता-लघुत्ता का भेद करता है, परन्तु ज्ञान दृष्टि से सबको समान देखता है।

जीवहँ तिहुयण संठियहं मूढ़ा भेउ कंरति।

केवल-णाणिं णाणि फुडु सयलु वि एक्कु मुणंति।। (96)

तीन भुवन में रहने वालो जीवों का मूर्ख ही भेद करते हैं-

और ज्ञानी जीव केवल ज्ञान से प्रकट सभी जीवों को समान जानते हैं।

जीवा सयल वि णाण-मय जम्मण-मरण विमुक्क।

जीव-पएसहिं सयल सम सयल वि सगुणहिं एक्क।। (97)

सभी जीव ज्ञानमयी हैं, और अपने अपने प्रदेशों से सब समान हैं, सब जीव केवलज्ञानादि गुणों से समान है।

जीवहँ लक्खणु जिणवरहि भासिउ दंसण णाणु।

तेण ण किज्जइ भेउ तहँ जइ मणि जाउ विहाणु।। (98)

जीवों का लक्षण जिनेन्द्रदेव ने दर्शन और ज्ञान कहा है, इसलिए उन जीवों में भेद मत कर, अगर तेरे मन में ज्ञान रूपी सूर्य का उदय हो गया है, अर्थात् हे! शिष्य तू सबको समान जान।

बंभहँ भुवणि वसंताहँ, जे णवि भेउ करंति।

ते परमप्प पसाययर जोइय विमलु मुणंति।। (99)

इस लोक में रहने वाले जीवों का भेद नहीं करते हैं, वे परमात्मा के प्रकाश करने वाले योगी, अपने निर्मल आत्मा को जानते हैं।

देह विभेयइ जो कुणइ जीवहँ भेउ विचित्तु।

सो णवि लक्खणु मुणइ तहँ दंसण णाणु चरित्तु।। (102)

जो शरीरों के भेद से जीवों का नानारूप भेद करता है, वह उन जीवों का दर्शन ज्ञान चारित्र लक्षण नहीं जानता, अर्थात् उसको गुणों की परीक्षा (पहचान) नहीं है।

जेण सरुविं झाइयइ अप्पा एहु अणंतु।

तेण सरुविं परिणवइ जह-फलिहउ-मणि-मंतु।। (173)

यह प्रत्यक्षरूप अविनाशी आत्मा जिस स्वरूप से ध्याया जाता है, उसी स्वरूप परिणमता है, जैसे स्फटिक मणि और गारुडी मंत्र है।

एहु जु अप्पा जो परमप्पा कम्म विसेसें जायउ जप्पा

जामइँ जाणइ अप्पैं तामइँ सो जि देउ परमप्पा।। (174)

यह प्रत्यक्षीभूत स्वसंवेदन ज्ञान कर प्रत्यक्ष जो आत्मा वही शुद्धनिश्चयकर अनंत चतुष्टयस्वरूप क्षुधादि अठारह दोष रहित निर्दोष परमात्मा है, वह व्यवहारनयकर अनादि कर्म-बन्ध के विशेष से पराधीन हुआ दूसरे का जाप करता है, परन्तु जिस समय वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदनकर अपने को जानता है, उस समय यह आत्मा ही परमात्मा देव है।

जो परमात्मा णाणमउ सो हउँ देउ अणंतु।

सो हउँ सो परमप्पु परु एहउ भावि णिभंतु।। (175)

जो परमात्मा ज्ञानस्वरूप है वह मैं ही हूँ जो कि अविनाशी देवस्वरूप हूँ जो मैं हूँ वही उत्कृष्ट परमात्म है। निःसन्देह तू भावना कर।

जो जीणु सो अप्पा मुणहु इहु सिद्धंवहँ सारु।

हउ जाणेविणु जोइयहो छंडहु मायाचारु।। (21)

जो जिन भगवान् है वही आत्मा है यही सिद्धांत का सार समझो। इसे समझकर हे! योगीजनों मायाचार को छोड़ो।

जो परमप्पा सो जि हउँ सो हउँ सो परमप्पु।

इउ जाणेविणु जोइया अण्णु म करहु वियप्पु।। योगसार (4)

जो परमात्मा है वही मैं हूँ तथा जो मैं हूँ वही परमात्मा है यह समझकर हे! योगिन्! अन्य कुछ भी विकल्प मत करो।

तो तइलोयइँ झेउ जिणु सो अप्पा णिरु वुत्तु।

णिच्छय-णहँ। एमइ भविउ एहउ जाणि णिभंत्तु।। (28)

जो तीन लोकों के ध्येय जिन भगवान् है, निश्चय से उन्हें ही आत्मा कहा है यह कथन निश्चय से है। इसमें भ्रांति नहीं करनी चाहिए।

जं बडमज्झएँ बीउ फुडु बीयहं बडु वि हु जाणु।

तं देहहँ देउ वि मुणाहिं, जो तइलोय पहाणु।। (74)

जैसे बड़ के वृक्ष में बीज दृष्टिगोचर होता है, वैसे ही बीज में भी बड़ वृक्ष रहता है। इसी तरह देह में उस देव को विराजमान समझो जो तीनों लोकों में मुख्य है।

जा जिण सो हउँ सो जि हउँ भाउ णिभंतु।

मोक्खहँ कारण जोइया अण्णु ण तंतु ण मंतु।। (75)

जो जिनदेव है वह मैं हूँ इसकी भ्रांति रहित होकर भावना कर। हे योगिन! मोक्ष का कारण कोई अन्य यंत्र तंत्र नहीं है।

जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होति।

जरमरण जम्ममुक्का अट्ठगुणा लंकिया जेण।। (44) नि.सा.

सिद्ध भगवान् जैसे हैं, भव के आश्रित हुए जीव वैसे ही हैं। जिस हेतु से ये जरा मरण और जन्म से रहित है उसी से ये आठ गुणों से अलंकृत हैं।

असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।

जह लोयग्गे सिद्ध तह जीवा संसिदी णेया।। (48)

अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा सिद्ध भगवान् जैसे लोक के अग्रभाग पर है, वैसे ही संसार में जीव है।

एदे सव्वे भावा ववहारणयं पडुच्चय भणिदा हु।

सव्वे सिद्ध सहावा सुद्धाणया संसिदी जीवा।। (49)

वे सभी जीव व्यवहारनय का आश्रय लेकर कहे गये हैं। किन्तु शुद्धनय से संसार में सभी जीव सिद्ध स्वभाव वाले हैं।

पण्णाए घित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो।

अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णायव्वा।। (267) स.सार

टीका:-नियत स्वलक्षण का अवलम्बन करनेवाली प्रज्ञा के द्वारा भिन्न किया गया जो यह चेतक (चेतनेवाला, चैतन्यस्वरूप आत्मा) है सो यह मैं हूँ; और अन्य स्वलक्षणों से लक्ष्य (अर्थात् चैतन्यलक्षण के अतिरिक्त अन्य लक्षणों से जानने योग्य) जो यह शेष व्यवहार भाव हैं, वे सभी, चेतकत्वरूपी व्यापक के व्याप्य नहीं होते इसलिये, मुझ से अत्यन्त भिन्न हैं। इसलिये मैं ही, अपने द्वारा ही, अपने लिये ही,

अपने में से ही अपने में ही, अपने को ही ग्रहण करता हूँ। आत्मा की, चेतना ही एक क्रिया है इसलिये, 'मैं ग्रहण करता हूँ' अर्थात् 'मैं चेतता ही हूँ'; चेतता हुआ ही चेतता हूँ, चेतते हुए के द्वारा ही चेतता हूँ, चेतते हुए के लिए ही चेतता हूँ, चेतते हुये से ही चेतता हूँ, चेतते में ही चेतता हूँ, चेतते को ही चेतता हूँ। अथवा-न तो चेतता हूँ, न चेतता हुआ चेतता हूँ, न चेतते हुये के द्वारा चेतता हूँ, न चेतते हुए के लिए चेतता हूँ, न चेतते हुए से चेतता हूँ, न चेतते हुए में चेतता हूँ, न चेतते हुए को चेतता हूँ, किन्तु सर्वविशुद्धि चिन्मात्र (चैतन्यमात्र) भाव हूँ।

भावार्थः-प्रज्ञा के द्वारा भिन्न किया गया वह चेतक मैं हूँ और शेष भाव मुझसे पर हैं; इसलिये (अभिन्न छह कारकों से) मैं ही, मेरे द्वारा ही, मेरे लिये ही, मुझसे ही, मुझमें ही, मुझे ही ग्रहण करता हूँ। 'ग्रहण करता हूँ' अर्थात् 'चेतता हूँ' चेतनेवाले के द्वारा ही आत्मा की एक क्रिया है।

इसलिये मैं चेतता ही हूँ; चेतनेवाला ही, चेतनेवाले के द्वारा ही, चेतनेवाले के लिये ही, चेतनेवाले से ही, चेतनेवाले में ही, चेतनेवाले को ही चेतता हूँ। अथवा द्रव्यदृष्टि से तो-मुझ में छह कारकों के भेद भी नहीं है, मैं तो शुद्ध चैतन्यमात्र भाव हूँ। इस प्रकार प्रज्ञा के द्वारा आत्मा को ग्रहण करना चाहिये अर्थात् अपने को चेतयिता के रूप में अनुभव करना चाहिए।

भित्त्वा सर्वमपि स्वलक्षणबलाद्भेत्तु हि यच्छक्यते।
चिन्मुद्रांकितनिर्विभागमहिमा शुद्धश्चियदेवास्म्यहमृ।।
भिद्यन्ते यदि कारकाणि यदि वा धर्मा गुणा वा यदि
भिद्यन्तां न भिदास्ति काचन विभौ भावे विशद्धे चिति।। (182)

श्लोकार्थः-(यत् भेत्तु हि शक्यते सर्वम् अपि स्वलक्षणबलात् भित्वा) जो कुछ भी भेदा जा सकता है उस सबको स्वलक्षण के बल से भेदकर, **(चिन्मुद्रा-अंकित-निर्विभागमहिमा शुद्धः चिद् एव अहम् अस्मि)** जिसकी चिन्मुद्रा से अंकित निर्विभाग महिमा है (अर्थात् चैतन्य की मुद्रा से अंकित विभाग रहित जिसकी महिमा है) ऐसा शुद्ध चैतन्य ही मैं हूँ। **(यदि कारकाणि वा यदि धर्माः वा यदि गुणाः भिद्यन्ते, भिद्यन्ताम्)** यदि कारक के, अथवा धर्मों के, या गुणों के भेद हों, तो भले हो; **(विभौ विशुद्धे चिति भावे काचन भिदा न अस्ति)** किन्तु शुद्ध

(समस्त विभावों से रहित) विभु ऐसा चैतन्यभाव में तो कोई भेद नहीं है। (इस प्रकार प्रज्ञा के द्वारा आत्मा को ग्रहण किया जाता है।)

भावार्थः-जिसका स्वलक्षण चैतन्य नहीं है ऐसे परभाव तो मुझसे भिन्न है, मैं तो मात्र शुद्ध चैतन्य ही हूँ। कर्ता, कर्म, कारण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण-रूप कारकभेद, सत्त्व, असत्त्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, एकत्व अनेकत्व आदि धर्मभेद और ज्ञान, दर्शन आदि गुणभेद यदि कदाचित् हों तो भले हो, परन्तु शुद्ध चैतन्यमात्र भाव में तो कोई भेद नहीं है। इस प्रकार शुद्धनय से अभेदरूप आत्मा को ग्रहण करना चाहिए।

(आत्मा को शुद्ध चैतन्यमात्र तो ग्रहण कराया; अब सामान्य चेतना दर्शन ज्ञानसामान्यमय है इसलिये अनुभव में दर्शनज्ञानस्वरूप आत्मा को इस प्रकार अनुभव करना चाहिये-सो कहते हैंः-)

पण्णाए घित्तव्वो जो दट्ठा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा।। (298)
पण्णाए घित्तव्वो जो णादा सो अहं तु णिच्छयदो।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परे त्ति णादव्वा।। (299)

टीकाः-चेतना दर्शनज्ञानरूप भेदों का उल्लंघन नहीं करती है इसलिये, चेतकत्व की भांति दर्शकत्व और ज्ञातृत्व आत्मा का स्वलक्षण ही है। इसलिये मैं देखनेवाला आत्मा को ग्रहण करता हूँ। 'ग्रहण करता हूँ' अर्थात् 'देखता ही हूँ'; देखता हुआ ही देखता हूँ, देखते हुए के द्वारा ही देखता हूँ, देखते हुए के लिये ही देखता हूँ, देखते हुए से ही देखता हूँ, देखते हुए में ही देखता हूँ, देखते हुये को ही देखता हूँ। अथवा-नहीं देखता; न देखते हुए को देखता हूँ, न देखने हुए के द्वारा देखता हूँ, न देखते हुए के लिये देखता हूँ, न देखते हुए से देखता हूँ, न देखते हुए में देखता हूँ, न देखते हुए को देखता हूँ, किन्तु मैं सर्वविशुद्ध दर्शनमात्र भाव हूँ। और इसी प्रकार-मैं जाननेवाले आत्मा को ग्रहण करता हूँ। 'ग्रहण करता हूँ', अर्थात् 'जानता ही हूँ'; जानता हुआ ही जानता हूं, जानते हुए के द्वारा ही जानता हूं, जानते हुए के लिए ही जानता हूँ, जानते हुए से ही जानता हूं, जानते हुए में ही जानता हूं, जानते हुए को ही जानता हूं। अथवा नहीं जानता; न जानते हुए को जानता हूँ, नहीं जानते हुए के द्वारा जानता हूँ, न जानते हुए के लिये जानता हूँ, न जानते हुये से जानता हूँ, न जानते हुए में जानता हूँ,

न जानते हुए को जानता हूँ, किन्तु मैं सर्वविशुद्ध ज्ञप्ति (जाननक्रिया) मात्र भाव हूँ। (इस प्रकार देखनेवाले आत्मा को तथा जाननेवाले आत्मा को कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरणरूप कारकों के भेदपूर्वक ग्रहण करके, तत्पश्चात् कारकभेदों का निषेध करके आत्मा को अर्थात् अपने को दर्शनमात्र भावरूप तथा ज्ञानमात्र भावरूप अनुभव करना चाहिये अर्थात् अभेदरूप से अनुभव करना चाहिये।)

भावार्थः-इन तीन गाथाओं में, प्रज्ञा के द्वारा आत्मा को ग्रहण करने को कहा गया है। 'ग्रहण करना' अर्थात् अन्य वस्तु को ग्रहण करना अथवा लेना नहीं है; किन्तु चेतना का अनुभव करना ही आत्मा 'ग्रहण करना' है। पहली गाथा में सामान्य चेतना का अनुभव कराया गया है। वहां, अनुभव करनेवाला, जिसका अनुभव किया जाता है वह, और जिसके द्वारा अनुभव किया जाता है वह-इत्यादि कारक भेदरूप से आत्मा को कहकर, अभेदविवक्षा में कारकभेद का निषेध करके, आत्मा को एक शुद्ध चैतन्यमात्र कहा गया है।

अब इन दो गाथाओं में दृष्टा तथा ज्ञाता का अनुभव कराया है, क्योंकि चेतना-सामान्य दर्शनज्ञानविशेषों का उल्लंघन नहीं करती। यहां भी, छह कारकरूप भेद-अनुभवन कराके, और तत्पश्चात् अभेद-अनुभवन की अपेक्षा से कारकभेद को दूर कराके दृष्टाज्ञातामात्र का अनुभव कराया है।

टीकाः-यहां प्रश्न होता है कि-चेतना दर्शनज्ञानभेदों का उल्लंघन क्यों नहीं करती कि जिससे चेतनेवाला दृष्टा तथा ज्ञाता होता है? इसका उत्तर कहते हैः-प्रथम तो चेतना प्रतिभासरूप है। वह चेतना द्विरूपता का उल्लंघन नहीं करती, क्योंकि समस्त वस्तुऐं सामान्य विशेषात्मक हैं। (सभी वस्तुएँ सामान्यविशेषस्वरूप हैं। इसलिये उन्हें प्रतिभासनेवाली चेतना भी द्विरूपता का उल्लंघन नहीं करती।) उसके जो दो रूप हैं वे दर्शन और ज्ञान हैं। इसलिये वह उनका (दर्शनज्ञान का) उल्लंघन नहीं करती। यदि चेतना दर्शनज्ञानका उल्लंघन करे तो सामान्य विशेष का उल्लंघन करने से चेतना ही न रहे (अर्थात् चेतना का अभाव हो जायेगा)। उसके अभाव में दो दोष आते हैं-(1) अपने गुण का नाश होने से चेतन को अचेतनत्व आ जायेगा, अथवा (2) व्यापक (चेतना) के अभाव में व्याप्य ऐसा चेतन (आत्मा) का अभाव हो जायेगा। इसलिये उन दोषों के भय से चेतना को दर्शनज्ञानस्वरूप ही अंगीकार करना चाहिए।

अद्वैतापि हि चेतना जगति चेद् दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत्।
तत्सामान्यविशेषरूपविरहात्साऽस्तित्वमेव त्यजेत्।।
तत्त्यागे जड़ता चितोऽपि भवति व्याप्यो विना व्यापका-
दात्मा चान्तमुपैति तेन नियतं दृग्ज्ञप्तिरूपास्तु चित्।। (183)

श्लोकार्थः-(जगति हि चेतना श्रद्धैता) जगत् में निश्चयतः चेतना अद्वैत है **(अपि चेत् सा दृग्ज्ञप्तिरूपं त्यजेत्)** तथापि यदि वह दर्शनज्ञानरूप को छोड़ दे **(तत्सामान्यविशेषरूपविरहात्)** तो सामान्यविशेषरूप के अभाव से (वह चेतना) **(अस्तित्वम् एव त्यजेत्)** अपने अस्तित्व को ही छोड़ देगी; और **(तत्-त्यागे)** इस प्रकार चेतना अपने अस्तित्व को छोड़ने पर, (1) **(चितः अपि जड़ता भवति)** चेतन के जड़त्व आ जायेगा-अर्थात् आत्मा जड़ हो जाय **(च)** और (2) **(व्यापकात् विना व्याप्यः आत्मा अन्तम् उपैति)** व्यापक (चेतना) के बिना व्याप्य जो आत्मा वह नष्ट हो जायेगा (इस प्रकार दो दोष आते हैं)। **(तेन चित् नियतं दग्ज्ञप्तिरूपा अस्तु)** इसलिये चेतना नियम से दर्शनज्ञानरूप ही हो।

भावार्थः-समस्त वस्तुएँ सामान्यविशेषात्मक हैं। इसलिए उन्हें प्रतिभासने वाली चेतना भी सामान्यप्रतिभासरूप (दर्शनरूप) और विशेषप्रतिभासरूप (ज्ञानरूप) होनी चाहिए। यदि चेतना अपनी दर्शनज्ञानरूपता को छोड़ दे तो चेतना का ही अभाव होने पर, या तो चेतन आत्मा को (अपने चेतना गुण का अभाव होने पर) जड़त्व आ जायेगा, अथवा जो व्यापक के अभाव में व्याप्य ऐसे आत्मा का अभाव हो जायेगा। (चेतना आत्मा की सर्व अवस्थाओं में व्याप्त होने से व्यापक है और आत्मा चेतन होने से चेतना का व्याप्य है। इसलिए चेतना का अभाव होने पर आत्मा का भी अभाव हो जायेगा।) इसलिये चेतना को दर्शनज्ञानस्वरूप ही मानना चाहिए।

यहां तात्पर्य यह है कि कितने ही लोग सामान्य चेतना को ही मानकर एकान्त कथन करते हैं, उनका निषेध करने के लिए यहां यह बताया गया है कि 'वस्तु का स्वरूप सामान्यविशेषरूप है इसलिए चेतना को सामान्य विशेषरूप अंगीकार करना चाहिए।'

एकश्चितश्चिन्मय एव भावो भावाः परे ये किल ते परेषाम्।
ग्राह्यस्ततश्चिन्मय एव भावो भावाः परे सर्वत एव हेयाः।।(184)

श्लोकार्थः-(चितः) चैतन्य का (आत्मा का) तो **(एकः चिन्मयः एक**

भावः) एक चिन्मय ही भाव है, और **(ये परे भावाः)** जो अन्यभाव है **(ते किल परेषाम्)** वे वास्तव में दूसरों के भाव है; **(ततः)** इसलिए **(चिन्मयः भाव एव ग्राह्यः)** (एक) चिन्मय भाव ही ग्रहण करने योग्य है, **(परे भावाः सर्वतः एव हेयाः)** अन्य भाव सर्वथा त्याज्य हैं।

को णाम भणिज्जं बुहो णादुं सव्वे पराइए भावे।
मज्झमिणं ति य वयणं जाखंतो अप्पयं सुद्धं।। (300)

जो (पुरुष) पर के और आत्मा के नियत स्वलक्षणों के विभाग में पड़नेवाली प्रज्ञा के द्वारा ज्ञानी होता है, वह वास्तव में एक चिन्मात्र भाव को अपना जानता है और शेष सर्व भावों को दूसरों का जानता हैं। ऐसा जानता हुआ (वह पुरुष) परभावों को 'यह मेरे हैं' ऐसा क्यों कहेगा? (नहीं कहेगा;) क्योंकि पर में और अपने में निश्चय से स्वस्वामिसम्बन्ध असम्भव है। इसलिये, सर्वथा चिद्भाव ही (एकमात्र) ग्रहण करने योग्य है, शेष समस्त भाव छोड़ने योग्य हैं-ऐसा सिद्धान्त है।

भावार्थः-लोक में भी यह न्याय है कि-जो सुबुद्धि और न्यायवान होता है वह दूसरे के धनादि को अपना नहीं कहता। इसी प्रकार जो सम्यग्ज्ञानी है, वह समस्त परद्रव्यों को अपना नहीं मानता। किन्तु अपने निजभाव को ही अपना जानकर ही ग्रहण करता है।

सिद्धांतोऽयमुदात्तवित्तचरित्तैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यतां
शुद्धं चिन्मयमेकमेव परमं ज्योतिः सदैवास्म्यहम्।
एते ये तु समुल्लसंति विविधा भावाः पृथग्लक्षणा
स्तेऽहं नास्मि यतोऽत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि।।(185)

श्लोकार्थः-**(उदात्तचित्तचरितैः मोक्षार्थिभिः)** जिनके चित्त का चरित्र उदात्त (उदार, उच्च, उज्जवल) है ऐसे मोक्षार्थी **(अयम् सिद्धान्तः)** इस सिद्धान्त का **(सेव्यताम्)** सेवन करें कि-**(अहम् शुद्धं चिन्मयम् एकम् परमं ज्योतिः एव सदा एव अस्मि)** 'मैं तो सदा शुद्ध चैतन्यमय एक परमज्योति ही हूँ; **(तु)** और **(एते ये पृथग्लक्षणः विविधाः भावाः समुल्लसिन्त ते अहं न अस्मि)** जो यह भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं वे मैं नहीं हूँ, **(यतः अत्र ते समग्राः अपि मम परद्रव्यम्)** क्योंकि वे सभी मेरे लिये परद्रव्य है।'

परद्रव्यग्रहं कुर्वन् बध्येतैवापराधवान्।
बध्येतानपराधो न स्वद्रव्ये संवृत्तो यतिः।।(186)

श्लोकार्थः-(परद्रव्यग्रहं कुर्वन्) जो परद्रव्य को ग्रहण करता है **(अपराधवान्)** वह अपराधी है **(बध्येत एव)** इसलिये बन्ध में पड़ता है, **(स्वद्रव्ये संवृत्तः यतिः)** और जो स्वद्रव्य में ही संवृत्त है (अर्थात् जो अपने द्रव्य में ही गुप्त-मग्न है-संतुष्ट है, परद्रव्य का ग्रहण नहीं करता) ऐसा यति **(अनपराधः)** निरपराधी है **(न बध्येत)** इसलिए बँधता नहीं है।

जैनधर्म पावन है-रागद्वेषमोहासक्त न जानते-मानते-पालते
आत्मविशुद्धि श्रद्धा प्रज्ञा से जैनधर्म पलता
(चारों गति के सुदृष्टि होते हैं जैन)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः छिप गया कोई रे...)
जैनधर्म पावन/(महान्) है अपावन/(पापी) न जानते।
रागद्वेषमोहासक्त हो जैनधर्म को न मानते।। (1)
अनन्तानुबन्धीक्रोध-मान-माया-लोभ मिथ्यात्व।
इनसे सहित हो पापी जैनधर्म से विमुख।। (2)
अनन्तानुबन्धी चतुष्क व मिथ्यात्व से मलीन।
तत्त्वार्थ-श्रद्धान व देव-शास्त्र-गुरु का न करते श्रद्धान।। (3)
इसके बिना वे स्वशुद्धात्मा श्रद्धान न करते।
निश्चय से स्वयं को शुद्ध-बुद्ध न मानते।। (4)
स्वयं को देह मानते व परिग्रहों को मम मानते।
आहार भय मैथुन परिग्रहों में आसक्त होते।। (5)
बाहर से यदि भी जैनक्रियाकाण्डों को करते।
वे सभी ख्याति-पूजा-लाभ-(प्रसिद्ध) वर्चस्व हेतु करते।। (6)
आत्मविशुद्धि आत्मश्रद्धा बिना दिखावा करते।
सांसारिक लाभ हेतु ही जैनधर्म पालते।। (7)

संवेग वैराग्य निर्वेद व आस्तिक्य के बिना।
रूढ़ि परम्परा से पालते श्रद्धा-प्रज्ञा के बिना।। (8)
श्रद्धा-प्रज्ञा सहित जो चतुर्गति जीव (पशु, नारकी) होते।
वे भी जैनधर्म मानते, तीर्थेश बताते।। (9)
श्रद्धा-प्रज्ञा बिना चक्री-देव क्यों न होते।
वे भी जैनधर्म न पालते, सर्वज्ञ बताते।। (10)
संकीर्ण पंथ मत जाति पद प्रतिष्ठा युक्त।
जैनधर्म पालन करते लोकपरम्परा से सहित।। (11)
इह परलोक में मिलें सांसारिक वैभव।
इस हेतु धर्म पालते कामना से संयुक्त।। (12)
आत्मप्रतीति विशुद्धि आत्मानुभव बिना।
धर्म करते पूजा दानादि स्व-स्व भूमिका बिना।। (13)
भीड़ प्रदर्शन धन मान (सम्मान) बोली हेतु धर्म करते।
वर्चस्व पंथ-मत आग्रह से बाहर से पालते।। (14)
इससे परे आत्म-उपलब्धि हेतु ही होता जैनधर्म।
आत्मश्रद्धा-प्रज्ञा-विशुद्धि से पालनीय जैनधर्म।। (15)
आत्मा को आत्मा द्वारा आत्मा को पाना है धर्म।
इस हेतु ही 'कनक' नवकोटि से पाले जैनधर्म।। (16)

नन्दौड़, दि-26-09-2019, अपराह्न-3.23

स्व-अनन्त वैभव ध्यान-

मैं हूँ निश्चय से स्वयम्भू-स्वयंपूर्ण-स्वाधीन

(परभाव व विभावों से रहित शुद्ध-बुद्ध-आनन्द मैं हूँ!)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः-ज्योति कलश छलके...)

अनन्त शक्ति पुञ्ज रे!...जिया रे! अनन्त गुण पुञ्ज रे!...
तुझे क्या कैसे हरा सकेगा?...अतः निर्भय बन रे!...(ध्रुव)...

तू तो स्वयम्भू-सनातन!...अजर-अमर-अव्यय हो...
अनन्त गुण-गण सह!...सच्चिदानन्द रूप...(1)...
तू तो अमृत कभी न मरता!...तुझे कौन कैसे मारे?...
द्रव्य-गुण-पर्याय सह!...उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप...(2)...
अतः तू आधि-व्याधि रहित!...उपाधि रूपी विभाव रिक्त...
शुद्ध-बुद्ध-आनन्द!...(दुःख) शोक-सन्ताप रिक्त...(3)...
अनन्त आत्म वैभव युक्त!...अतः तू न दीन-हीन-दम्भी...
दीनादि भाव विभाव!...यह न होता स्वभाव...(4)...
अनन्त गुण गण युक्त तू!...अतः तू सम्पूर्ण-स्वतन्त्र...
परावलम्बी न तू!...अपेक्षा/(उपेक्षा) प्रतीक्षा रिक्त...(5)...
अनन्त आत्म श्रद्धा सह तू!...अतः न चाहिए अन्धश्रद्धान...
अनन्त आत्म ज्ञान सह!...न चाहिए मिथ्याज्ञान...(6)...
अनन्त आत्मानुचरण युक्त तू!...अतः न चाहिए अन्धानुकरण...
स्व (अनन्त) आत्म रमण कर!...स्वभाव न पररमण...(7)...
''सिद्धि स्वात्मोपलब्धि'' है तेरी!...ख्याति-पूजा-प्रसिद्धि न तेरी...
सिद्धि तो स्वआश्रित है!...पराश्रित ख्याति आदि...(8)...
''उत्तम स्वात्म चिन्ता'' तू करो!...''परचिन्ता धमाधमा'' छोड़ो...
''आदहिदं कादव्वं...सुष्ठु कादव्वं''!...
/(परहिद कादव्वं...आनुषंगिक होय!...)...(9)...
त्रिकालवर्ती देव मानवों से भी!...अनन्त गुणा है तेरा वैभव...
स्व-वैभव प्राप्त करो!...पर प्रतिस्पर्द्धा (वर्चस्व) त्यागो...(10)...
स्व-वैभव ध्यान करते गणधर!...मुनि अवस्था में तीर्थङ्कर...
तैतीस सागर करते...अहमिन्द्र देव...
/(अनन्तकाल तक...भोगते सिद्ध...)...(11)...
आत्मशक्ति की विभिन्न अवस्थाएँ!...चौषठ ऋद्धि-अनन्त चतुष्टय...
इन्द्र विद्याधर राक्षस असुर!...बलदेव नारायण से चक्रधर...(12)...

अतः स्वश्रद्धा प्रज्ञा चर्या से!...स्व/(मैं) का ही करो ध्यान-अध्ययन...

मनन-चिन्तन-शोध-बोध (रमण)! 'कनक' बनो सिद्ध/(भगवान्) सम...(13)...

नन्दौड़, दि-27/09/2019, रात्रि 8.24

(यह कविता नन्दा देवी (चातुर्मास कर्त्री) के कारण बनी।)

संदर्भ-

जदि पढदि बहुसुदाणि य, जदि काहिदि बहुविहे य चारित्ते।

तं बालसुदं चरणं, हवेइ अप्पस्स विवरीदं।। (100) अष्टपा.

यदि ऐसा मुनि अनेक शास्त्रों को पढ़ता है तथा नाना प्रकार के चारित्रों का पालन करता है तो उसकी सब प्रवृत्ति आत्मस्वरूप से विपरीत होने के कारण बालश्रुत और बाल चारित्र कहलाती है।

वेरग्गपरो साहू, परदव्वपरम्मुहो य सो होदि।

संसारसुहविरत्तो, सगसुद्धसुहेसु अणुरत्तो।। (101)

जो साधु वैराग्य में तत्पर होता है वह परद्रव्य से पराङ्मुख रहता है, इसी प्रकार जो साधु संसारसुख से विरक्त रहता है वह स्वकीय शुद्ध सुख में अनुरक्त होता है।

गुणगणविहूसियंगो, हेयापादेयणिच्छिदो साहू।

झाणज्झयणे सुरदो, सो पावइं उत्तमं ठाणं।। (102)

गुणों के समूह से जिसका शरीर शोभित है, जो हेय और उपादेय पदार्थों का निश्चय कर चुका है तथा ध्यान और अध्ययन में जो अच्छी तरह लीन रहता है वही साधु उत्तम स्थान को प्राप्त होता है।

णविएहिं जं णविज्जइ, झाइज्जइ झाइज्जइ झाइएहि अणवरयं।

थुव्वंतेहि थुणिज्जइ, देहत्थं किं पि तं मुणह।। (103)

दूसरों के द्वारा नमस्कृत इंद्रादि देव जिसे नमस्कार करते हैं, दूसरों के द्वारा ध्यान किये गये तीर्थंकर देव जिसका निरंतर ध्यान करते हैं और दूसरों द्वारा स्तूयमान-स्तुत किये गये तीर्थंकर भी जिसकी स्तुति करते हैं, शरीर के मध्य में स्थित उस अनिर्वचनीय आत्मतत्त्व को तुम जानो।

अरुहा सिद्धायरिया, उज्झाया साहु परमेट्ठी।

ते वि हु चिट्ठहि आदे, तम्हा आदा हु मे सरणं।। (104)

अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये पाँच परमेष्ठी हैं। ये पाँचों परमेष्ठी भी जिस कारण आत्मा में स्थित हैं उस कारण आत्मा ही मेरे लिए शरण हो।

सम्मत्तं सण्णाणं, सच्चारित्तं हि सत्तवं चेव।

चउरो चिट्ठहि आदे, तम्हा आदा हु मे सरणं।। (105)

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप ये चारों आत्मा में स्थित हैं, इसलिए आत्मा ही मेरे लिए शरण है।

सम्यग्दृष्टि जीव निःशंक तथा निर्भय होता

सम्मद्दिट्ठी जीवा, णिस्संका होंति णिब्भया तेण।

सत्तभयविप्पमुक्का, जम्हा तम्हा दु णिस्संका।। (228)

सम्यग्दृष्टि जीव चूँकि शंकारहित होते हैं इसलिए निर्भय हैं और चूँकि सप्तभय से रहित हैं इसलिए शंकारहित है।

भावार्थः-निर्भयता और निःशंकपने में परस्पर कार्यकारण भाव है।

निःशंकित अंग का स्वरूप

जो चत्तारिवि पाए, छिंदंति ते कम्मबंधमोहकरे।

सो णिस्संको चेदा, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।। (229)

जो आत्मा कर्मबंध के कारण मोह के करने वाले उन मिथ्यात्व आदि पापों को काटता है उसे निःशंक सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

निःकांक्षित अंग का स्वरूप

जो दु ण करेदि कंखं, कम्मफलेसु तह सव्वधम्मेसु।

सो णिक्कंखो चेदा, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।। (230)

जो आत्मा कर्मों के फलों में तथा वस्तु के स्वभावभूत समस्त धर्मों में वांछा नहीं करता है उसे निःकांक्षित सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

निर्विचिकित्सित अंग का स्वरूप

जो ण करेदि जुगुप्पं, चेदा सव्वेसिमेव धम्माणं।

सो खलु णिव्विदिगिच्छो, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।। (231)

जो जीव वस्तु के सभी धर्मों में ग्लानि नहीं करता उसे निश्चय से निर्विचिकित्सित सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

अमूढ़दृष्टि अंग का स्वरूप

जो हवइ असंमूढो, चेदा सद्दिट्ठि सव्वभावेसु।

सो खलु अमूढदिट्ठी, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।। (232)

जो जीव सब भावों में मूढ़ नहीं होता हुआ यथार्थ दृष्टिवाला होता है उसे निश्चय से अमूढ़दृष्टि सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

उपगूहन अंग का लक्षण

जो सिद्धभत्तिजुत्तो, उवगूहणगो दु सव्वधम्माणं।

सो उवगूहकारी, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।। (233)

जो सिद्धभक्ति से युक्त हो समस्त धर्मों का उपगूहन करनेवाला हो उसे उपगूहन अंग का धारी सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

स्थितिकरण अंग का लक्षण

उम्मंगं गच्छंतं, सगंपि मग्गे ठवेदि जो चेदा।

सो ठिदिकरणाजुत्तो, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।। (234)

जो जीव न केवल पर को किंतु उन्मार्ग में जानेवाले अपने आत्मा को भी समीचीन मार्ग में स्थापित करता है उसे स्थितिकरण अंग से युक्त सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

वात्सल्य अंग का स्वरूप

जो कुणदि वच्छलत्तं, तियेह साहूण मोक्खमग्गाम्मि।

सो वच्छलभावजुदो, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।। (235)

जो जीव, आचार्य उपाध्याय तथा साधुरूप मुनियों के त्रिक में और सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र स्वरूप मोक्षमार्ग में वत्सलता करता है उसे वात्सल्य भाव से युक्त सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

प्रभावना अंग का स्वरूप

विज्जारहमारूढो, मणोरहपहेसु भमइ जो चेदा।

सो जिणणाणपहावी, सम्मादिट्ठी मुणेयव्वो।। (236)

जो जीव विद्यारूप रथपर आरूढ होकर मनरूपी रथ के मार्ग में भ्रमण करता है उसे जिनेंद्रदेव के ज्ञान की प्रभावना करनेवाला सम्यग्दृष्टि जानना चाहिए।

अनेकवस्तुसंपूर्ण जगद्यस्य चराचरम्।

स्फुरत्यविकलं बोधविशुद्धिदर्शमण्डले।। (14) ज्ञानार्णव

आचार्य महाराज कहते हैं कि हे मुने, तू आगे लिखे हुए प्रकार से सर्वज्ञ देव का स्मरण कर कि जिस सर्वज्ञ देव के ज्ञानरूप निर्मल दर्पण के मंडल में अनेक वस्तुओं से भरा हुआ चराचर यह जगत् प्रकाशमान है।

स्वभावजमसंदिग्धं निर्दोषं सर्वदोदितम्।

यस्य विज्ञानमत्यक्षं लोकालोकं विसर्पति।। (15)

तथा जिसका मन स्वभाव से ही उत्पन्न हुआ है, संशयादिक रहित है, निर्दोष है, सदाकाल उदयरूप है, तथा इन्द्रियों का उल्लंघन करके प्रवर्त्तनेवाला है और लोकालोक में सर्वत्र विस्तरता है।

यस्य विज्ञानघर्माशु-प्रभाप्रसरपीडिताः।

क्षणादेव क्षयं यान्ति खद्योता इव दुर्नयाः।। (16)

तथा खद्योत (जुगनू) के समान जिसके विज्ञानरूप सूर्य की प्रभा से पीडित हुए दुर्नय (एकान्त पक्ष) क्षणमात्र में नष्ट हो जाते हैं।

पादपीठीकृताशेषत्रिदशेन्द्रसभाजिरम्।

योगिगम्यं जगन्नाथं गुणरत्नमहार्णवम्।।। (17)

तथा जिसने समस्त इंद्रों की सभा के स्थान को सिंहासनरूप किया है तथा जो योगीगणों से गम्य है, जगत का नाथ है, गुणरूपी रत्नों का महान् समुद्र है।

पवित्रितधरापृष्ठं समुद्धृतजगत्त्रयम्।

मोक्षमार्गप्रणेतारमनन्तं पुण्यशासनम्।। (18)

तथा पवित्र किया है पृथ्वीतल जिसने, तथा उद्धार किया है तीन जगत का जिसने ऐसा और मोक्षमार्ग का निरूपण करनेवाला है; अनन्त है और जिसका शासन पवित्र है।

भामण्डलनिरुद्धार्कं चन्द्रकोटिसमप्रभम्।
शरण्यं सर्वगं शान्तं दिव्यवाणीविशारदम्।। (19)

तथा जिसने भामंडल से सूर्य को आच्छादित किया है, कोटि चन्द्रमा के समान प्रभाका धारक है, जो जीवों को शरणभूत है, सर्वत्र जिसके ज्ञान की गति है, शान्त है, दिव्य वाणी में प्रवीण है।

अक्षोरगशकुन्तेशं सर्वाभ्युदयमन्दिरम्।
दुःखार्णवपतत्सत्त्वदत्तहस्तावलम्बनम्।। (20)

तथा इन्द्रियरूपी सर्पों को गरुड़ समान है, समस्त अभ्युदय का मंदिर है तथा दुःखरूप समुद्र में पड़ते हुए जीवों को हस्तावलंबन देनेवाला है।

मृगेन्द्रविष्टरारूढं मारमातङ्गघातकम्।
इन्दुत्रयसमोद्दामच्छत्रत्रयविराजितम्।। (21)

तथा सिंहासन पर स्थित है, कामरूप हस्ती का घातक है, तथा तीन चन्द्रमा के समान मनोहर तीन छत्र विराजमान है।

हंसालीपातलीलाढ्यं चामरव्रजवीजितम्।
वीततृष्णं जगन्नाथं वरदं विश्वरूपिणम्।। (22)

तथा हंसपंक्ति के पड़ने की लीलापूर्ण चमरों के समूह से वीजित है, तृष्णारहित है, जगत का नाथ है, वर का देनेवाला और विश्वरूपी है; अर्थात् ज्ञान के द्वारा समस्त पदार्थों के रूप देखनेवाला है।

दिव्यपुष्पानकाशोकराजितं रागवर्जितम्।
प्रातिहार्यमहालक्ष्मीलक्षितं परमेश्वरम्।। (23)

तथा दिव्य पुष्पवृष्टि, आनक अर्थात् दुदुभि बाजों तथा अशोक वृक्षों सहित विराजमान है, तथा रागरहित (वीतराग) है, प्रातिहार्य महालक्ष्मी से चिह्नित है, परम ऐश्वर्य करके सहित (परमेश्वर) है।

नवकेवलब्धिश्रीसंभवं स्वात्मसंभवम्।
तुर्यध्यानमहावह्नौ हुतकर्मेन्धनोत्करम्।। (24)

तथा अनंतज्ञान 1.दर्शन, 2.दान, 3.लाभ, 4.भोग, 5.उपभोग, 6.वीर्य, 7.क्षायिकसम्यक्तव 8. और चारित्र 9. इन नवलब्धिरूपी लक्ष्मी की जिससे उत्पत्ति है तथा अपने आत्मा से ही उत्पन्न है, और शुक्लध्यानरूपी महान अग्नि में होम दिया है कर्मरूपी इन्धन का समूह ऐसा है।

रत्नत्रयसुधास्यन्दमन्दीकृतभवश्रमम्।
वीतसंगं जितद्वैत शिवं शान्तं सनातनम्।। (25)

तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप अमृत के झरनों से संसार के खेद को दूर करनेवाला है, परिग्रहरहित है, जीत लिया है द्वैतभाव जिसने ऐसा है, कल्याणस्वरूप, शान्तरूप तथा सनातन अर्थात् नित्यरूप है।

अर्हन्तमजमव्यक्तं कामदं कामनाशकम्।
पुराणपुरुषं देवं देवदेवं जिनेश्वरम्।। (26)

तथा अरहन्त है, अजन्मा है, अव्यक्त है अर्थात् इन्द्रियगोचर नहीं है, तथा कामद (मनोवांछित दाता) है, काम का नाशक है, पुराण पुरुष है, देव है, देवों का देव है, जिनेश्वर है।

विश्वनेत्रं जगद्वन्द्यं योगिनाथं महेश्वरम्।
ज्योतिर्मयमनाद्यन्तं त्रातारं भुवनेश्वरम्।। (27)

तथा समस्त लोक को देखने वा दिखाने को नेत्र समान हैं, जगत के वंदने योग्य है, योगियों का नाथ है, महेश्वर है, ज्योतिर्मय (ज्ञानप्रकाशमय) है, आदि अंत रहित है, सबका रक्षक है, तीन भुवन का ईश्वर है।

योगीश्वरं तमीशानमादिदेवं जगद्गुरुम्।
अनन्तमुच्यतं शान्तं भास्वन्तं भूतनायकम्।। (28)

योगीश्वर है, ईशान है, आदिदेव है, जगद्गुरु है, अनन्त है, अच्युत है, शान्त है, तेजस्वी है, भूतनायक है।

सन्मतिं सुगतं सिद्धं जगज्जयेष्ठं पितामहम्।
महावीरं मुनिश्रेष्ठं पवित्रं परमाक्षरम्।। (29)

सन्मति है, सुगत है, सिद्ध है, जगत् में ज्येष्ठ है, पितामह है, महावीर है, मुनिश्रेष्ठ है, पवित्र है, परमाक्षर है।

सर्वज्ञं सर्वदं सार्वं वर्धमानं निरामयम्।

नित्यमव्ययमव्यक्तं परिपूर्णं पुरातनम्।। (30)

सर्वज्ञ है, सबका दाता है, सर्वहितैषी है, वर्द्धमान है, निरामय (रोगरहित) है, नित्य है, अव्यय (नाशरहित) है, अव्यक्त है, परिपूर्ण है, पुरातन है।

इत्यादिसान्वयानेकपुण्यनामोपलक्षितम्।

स्मर सर्वगतं देवं वीरममरनायकम्।। (31)

इत्यादिक अनेक सार्थ पवित्र नाम सहित, सर्वगत, देवों का नायक, सर्वज्ञ, जो श्रीवीरतीर्थंकर है उसका हे मुने, तू स्मरण कर।

अनन्यशरणं साक्षात्तत्संलीनैकमानसः।

तत्स्वरूपमवाप्नोति ध्यानी तन्मयतां गतः।। (32)

उपुर्यक्त सर्वज्ञ देव का ध्यान करनेवाला ध्यानी अन्य शरण से रहित हो, साक्षात् उसमें ही संलीन है मन जिसका ऐसा हो, तन्मयता को पाकर उसी स्वरूप को प्राप्त होता है।

यमाराध्य शिवं प्राप्ता योगिनो जन्मनिस्पृहाः।

यं स्मरन्त्यनिशं भव्याः शिवश्रीसंगमोत्सुकाः।। (33)

जिस सर्वज्ञ देव का आराधन करके संसार में निःस्पृह मुनिगण मोक्ष को प्राप्त हुए हैं तथा मोक्षलक्ष्मी के संगम में उत्सुक भव्यजीव जिसका निरन्तर ध्यान करते हैं।

यस्य वागमृतस्यैकामासाद्य कणिकामपि।

शाश्वते पथि तिष्ठन्ति प्राणिनः प्रास्तकल्मषाः।। (34)

तथा जिनके वचनरूपी अमृत की एक कणिका मात्र को पाकर संसारी जीव कल्मष (मिथ्यात्व पापों) को नष्ट करके शाश्वत मोक्षमार्ग में तिष्ठते हैं।

देवदेवः स ईशानो भव्याम्भोजैकभास्करः।

ध्येय सर्वात्मना वीरः निश्चलीकृत्य मानसम्।। (35)

सो देवों का देव, ईशान, भव्य जीवरूप कमलों को प्रफुलित करने के लिये सूर्य समान ऐसा श्रीवीरजिनेन्द्र मन को निश्चल करके ध्यान करने योग्य (ध्येय) है; अन्य कल्पित ध्येय (ध्यान करने योग्य) नहीं है।

तस्मिन्निरन्तराभ्यासवशात्संजातनिश्चलाः।

सर्वावस्थासु पश्यन्ति तमेव परमेष्ठिनम्।। (36)

उस सर्वज्ञ देव के ध्यान में सदा अभ्यास करने के प्रभाव से निश्चल हुए योगीगण सर्व अवस्थाओं में उसी परमेष्ठी को देखते हैं।

तदालम्ब्य परं ज्योतिस्तुद्गुणग्रामरञ्जितः।

अविक्षिप्तमना योगी तत्स्वरूपमुपाश्नुते।। (37)

योगी (ध्यानी मुनि) उस सर्वज्ञ देव परम ज्योति का आलंबन करके उसके गुणग्रामों में रंजायमान होता हुआ मन में विक्षेप रहित होकर उसी स्वरूप को प्राप्त होता है।

इत्थं तद्भावनानन्दसुधास्यदाभिनन्दितः।

न हि स्वप्नाद्यवस्थासु ध्यायन्प्रच्यवते मुनिः।। (38)

इस प्रकार उस सर्वज्ञ देव की भावना से उत्पन्न हुए आनन्दरूप अमृत से वेग आनंदरूप हुआ मुनि स्वप्नादिक अवस्थाओं में भी ध्यान से च्युत नहीं होता।

तस्य लोकत्रयैश्वर्यं ज्ञानराज्यं स्वभावजम्।

ज्ञानत्रयजुषां मन्ये योगिनाममप्यगोचरम्।। (39)

जो उस सर्वज्ञ देव के तीन लोक का ईश्वरत्व है, स्वभाव से उत्पन्न ज्ञान का राज्य है, वह मतिश्रुत-अवधि इन तीन ज्ञान सहित योगी मुनियों को भी अगोचर है, ऐसा मैं मानता हूँ।

साक्षान्निर्विषयं कृत्वा साक्षं चेतः सुसंयमी।

नियोजयत्यविश्रान्तं तस्मिन्नेव जगद्गुरौ।। (40)

यद्यपि सर्वज्ञ देव का रूप छद्मस्थ ज्ञानी के अगोचर है तथापि इन्द्रिय और मनको अन्य विषयों से हटा कर सुसंयमी मुनि निरन्तर साक्षात् उसी भगवान के स्वरूप में अपने मन को लगता है।

तद्गुणग्रामसंलीनमानसस्तद्गताशयः।

तद्भावभावितो योगी तन्मयत्वं प्रपद्यते।। (41)

उस परमात्मा में मन लगावे तब उसके ही गुणों में लीनचित्त होकर उसमें ही चित्त को प्रवेश करके उसी भाव से भावित योगी मुनि उसी की तन्यमता को प्राप्त होता है।

यदाभ्यासवशात्तस्य तन्मयत्वं प्रजायते।

तदात्मानमसौ ज्ञानी सर्वज्ञीभूतमीक्षते।। (42)

जब अभ्यास के वश से उस मुनि के उस सर्वज्ञ के स्वरूप से तन्मयता उत्पन्न होती है, उस समय वह मुनि अपने असर्वज्ञ आत्मा को सर्वज्ञ स्वरूप देखता है।

एष देवः स सर्वज्ञः सोऽहं तद्रूपतां गतः।

तस्मात्स एव नान्योऽहं विश्वदर्शीति मन्यते।। (43)

जिस समय सर्वज्ञ स्वरूप अपने को देखता है, उस समय ऐसा मानता है कि यह वही सर्वज्ञ देव है, वही तत्स्वरूपता को प्राप्त हुआ मैं हूँ, इस कारण वही सर्व का देखनेवाला मैं हूँ, अन्य मैं नहीं हूँ ऐसा मानता है।

''येन येन हि भावेन युज्यते यन्त्रवाहकः।

तेन तन्मयतां याति विश्वरूपो मणिर्यथा।। (1)

जिस जिस भाव से यह यंत्रवाहक (जीव) जुड़ता है उस भाव से तन्मयता को प्राप्त होता है; जैसे निर्मल स्फटिक मणि जिस वर्ण से युक्त होता है, वैसा ही वर्ण स्वरूप हो जाता है।

भव्यतैव हि भूतानां साक्षान्मुकतेर्निबन्धनम्।

अतः सर्वज्ञता भव्ये भवन्ती नात्र शङ्क्यते।। (44)

अथवा जिस प्रकार है कि जीवों के भव्यत्व भाव है जो साक्षात् मुक्ति का कारण है, इस कारण भव्य प्राणी में सर्वज्ञता होने में संदेह नहीं करना अर्थात् भव्य के निःसंदेह सर्वज्ञता होती ही है।

अयमात्मा स्वसामर्थ्याद्विशुद्ध्यति न केवलम्।

चालयत्यपि संक्रुद्धो भुवनानि चतुर्दश।। (45)

अर्थ-यह आत्मा अपने सामर्थ्य से केवल विशुद्ध ही नहीं होता है, किन्तु यदि क्रोधरूप होता है तो चौदह भुवनों को (लोक कों) भी चला देता है।

भावार्थः-आत्मा की शक्ति अचिन्त्य है-जैसे वह क्रोध के वशीभूत होकर समस्त लोक को क्षुब्ध कर सकता है वैसे ही वह निर्मल ध्यान में निरत होकर मुक्ति को भी प्राप्त कर सकता है।

त्रैलोक्यानन्दबीजं जननजलनिधेर्यानपात्रं पवित्रं
लोकालोकप्रदीपं स्फुरदमलशरच्चन्द्रकोटिप्रभाढ्यम्।
कस्यामप्यग्रकोटी जगदखिलमतिक्रम्य लब्धप्रतिष्ठं
देवं विश्वैकनाथं शिवमजमनघं वीतरागं भजस्व।। (46)

हे मुने, तू वीतराग देव का ही ध्यान कर। कैसे हैं वीतराग भगवान? तीनों लोकों के जीवों को आनन्द के कारण हैं, संसाररूप समुद्र के पार होने के लिये जहाज तुल्य हैं तथा पवित्र अर्थात् द्रव्यभाव मल से रहित हैं तथा लोक अलोक के प्रकाश करने के लिये दीपक के समान हैं और प्रकाशमान तथा निर्मल ऐसे जो करोड़ शरद् के चन्द्रमा उनकी प्रभा से भी अधिक प्रभा के धारक हैं तथा किसी मुख्य कोटि में समस्त जगत का उल्लंघन कर पाई है प्रतिष्ठा जिन्होंने ऐसे हैं; जगत के अद्वितीय नाथ हैं, शिवस्वरूप हैं, अजन्मा है, पाप रहित है, ऐसे वीतराग भगवान का ध्यान करो। अरहंत सर्वज्ञ सर्व अतिशयों से पूर्ण का ध्यान करना कहा है; उसी के अभ्यास से तन्मय होकर, उसके समान अपने आत्मा को ध्यावना, जिससे वैसा ही हो जाता है।

व्योमाकारमनाकारं निष्पन्नं शान्तमच्युतम्।
चारमाङ्गात्किंयन्न्यूनं स्वप्रदेशैर्घनैः स्थितम्।। (22)
लोकाग्रशिखरासीनं शिवीभूतमनामयम्।
पुरुषाकारमापन्नमप्यमूर्त्तं च चिन्तयेत्।। (23)

अर्थ-आकाश के आकार अमूर्त, अनाकार अर्थात् पुद्गल के आकार से रहित निष्पन्न अर्थात् फिर जिसमें किसी प्रकार की हीनाधिकता न हो, शान्त अर्थात् क्षोभ रहित, अच्युत अर्थात् जो अपने रूप से कभी च्युत न हो, चरम शरीर से किञ्चित् न्यून अर्थात् जिस शरीर से मोक्ष हुआ है, उस शरीर से नासिकादि रन्ध प्रदेशों से हीन, अपने घनीभूत प्रदेशों से स्थित तथा लोकाकाश के अग्रभाग में स्थित, शिवीभूत अर्थात् पहले अकल्याणरूप थे अब कल्याणरूप हुए ऐसे, अनामय अर्थात् रोगादिक से सर्वथा रहित और पुरुषाकार को प्राप्त होकर भी अमूर्त अर्थात् आकार तो पुरुष का है परन्तु तो भी उसमें रूप रस गंध स्पर्शादिक नहीं है ऐसे परमात्मा का ध्यान इस रूपातीत ध्यान में करे।

निष्कलस्य विशुद्धस्य निष्पन्नस्य जगद्गुरोः।

चिदानन्दमयस्योच्चैः कथं स्यात्पुरुषाकृतिः।। (24)

जो परमात्मा निष्कल अर्थात् देहरहित है, विशुद्ध अर्थात् द्रव्यभावरूप दोनों मलों से रहित है, निष्पन्न अर्थात् जिसमें कुछ हीनाधिकता होनेवाली नहीं है, जो जगत् का गुरु है और जो चिदानन्द स्वरूप अर्थात् चैतन्य और आनन्द स्वरूप है, महान् है, ऐसे परमात्मा के पुरुषाकृति अर्थात् पुरुष का आकार कैसे हो सकता है?

विनिर्गतमधूच्छिष्टप्रतिमे मूषिकोदरे।

यादृग्गगनसंस्थानं तदाकारं स्मरेद्विभुम्।। (25)

जिससे मोम निकल गया है ऐसी मूषिका के उदर में जैसा आकाश का आकार है, तदाकार परमात्मा प्रभु का ध्यान करे।

सर्वावयसम्पूर्णं सर्वलक्षणलक्षितम्।

विशुद्धादर्शसंक्रान्तप्रतिबिम्बसमप्रभम्।। (26)

समस्त अवयवों से पूर्ण और समस्त लक्षणों से लक्षित ऐसे निर्मल दर्पण में पड़ते हुए प्रतिबिम्ब के समान प्रभाव वाले परमात्मा का चिन्तवन करे। **भावार्थ**-जैसे निर्मल दर्पण में पुरुष का समस्त अवयव और लक्षण दिखाई पड़ते हैं, उसी तरह परमात्मा के प्रदेश शरीर के अवयवरूप परिणत हैं और उनमें समस्त लक्षणों की तरह समस्त गुण रहते हैं।

इत्यसौ सन्ततभ्यासवशात्संजातनिश्चयः।

अपि स्वप्नाद्यवस्थासु तमेवाध्यक्षमीक्षते।। (27)

इस प्रकार जिसके निरन्तर अभ्यास के वश से निश्चय हो गया है ऐसा ध्यानी स्वप्नादिक अवस्था में भी उसी परमात्मा को प्रत्यक्ष देखता है। **भावार्थ**-दृढ़ अभ्यास से स्वप्नादिक में भी परमात्मा ही दिखाई पड़ता है।

सोऽहं सकलवित्सार्वः सिद्धः साध्यो भवच्युतः।

परमात्मा परंज्योतिर्विश्वदर्शी निरञ्जनः।। (28)

तदासौ निश्चलोऽमूर्त्तो निष्कलङ्को जगद्गुरुः।

चिन्मात्रो विस्फुरत्युच्चैर्ध्यानध्यातृविवर्जितः।। (29)

पूर्वोक्त प्रकार से जब परमात्मा का निश्चय हो जाता है और दृढ़ अभ्यास से उसका प्रत्यक्ष होने लगता है, उस समय परमात्मा का चिन्तवन इस प्रकार करे कि ऐसा परमात्मा मैं ही हूँ, मैं ही सर्वज्ञ हूँ, सर्वव्यापक हूँ, सिद्ध हूँ, तथा मैं ही साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य हूँ; संसार से रहित, परमात्मा परमज्योतिस्वरूप, समस्त विश्व का देखनेवाला मैं ही हूँ, मैं ही निरंजन हूँ। ऐसा परमात्मा का ध्यान करे; उस समय अपना स्वरूप निश्चल, अमूर्त्त अर्थात् शरीररहित, निष्कलङ्क, जगत का गुरु चैतन्यमात्र और ध्यान तथा ध्याता के भेदरहित ऐसा अतिशय स्फुरायमान होता है।

पृथग्भावमतिक्रम्य तथैक्यं परमात्मनि।
प्राप्नोति स मुनिः साक्षाद्यथान्यत्वं न बुध्यते।। (30)

यह मुनि जिस समय पूर्वोक्त प्रकार से परमात्मा का ध्यान करता है उस समय परमात्मा में पृथक् भाव अर्थात् अलगपने का उल्लंघन करके साक्षात् एकता को इस तरह प्राप्त हो जाता है कि जिससे पृथक्पने का बिलकुल भान नहीं होता। **भावार्थ-** उस समय ध्याता और ध्येय में द्वैतभाव नहीं रहता।

''निष्कलः परमात्माहं लोकालोकावभासकः।
विश्वव्यापी स्वभावस्थो विकारपरिवर्जितः।। (1)''

निष्कल अर्थात् देहरहित, लोक और अलोक को देखने व जाननेवाला, विश्व में व्यापक, स्वभाव में स्थिर, समस्त विकारों से रहित ऐसा परमात्मा मैं हूँ ऐसा अन्य ग्रन्थों में भी अभेद भाव दिखाया है।

इतिविगतविकल्पं क्षीणरागादिदोषं विदितसकलवेद्यं त्यक्तविश्वप्रपञ्चम्।
शिवमजमनवद्यं विश्वलोकैकनाथं परमपुरुषमुचैर्भावशुद्ध्या भजस्व।।

यहाँ आचार्य विशेष उपदेशरूप प्रेरणा करते हैं कि हे मुने, इस प्रकार जिसके समस्त विकल्प दूर हो गये हैं, जिसके रागादिक सब दोष क्षीण हो चुके हैं, जो जानने योग्य समस्त पदार्थों का जाननेवाला है, जिसने संसार के समस्त प्रपञ्च छोड़ दिये हैं, जो शिव अर्थात् कल्याण स्वरूप अथवा मोक्ष स्वरूप हैं, जो अज अर्थात् जिसको आगे जन्म मरण नहीं करना है, जो अनवद्य अर्थात् पापों से रहित है तथा जो समस्त लोक का एक अद्वितीय नाथ है ऐसे परम पुरुष परमात्मा को भावों की शुद्धता पूर्वक

अतिशय करके भज। **भावार्थ**-शुद्ध भावों से ऐसे परम पुरुष परमात्मा का ध्यान कर। जब ध्यानी सिद्ध परमेष्ठी के ध्यान का अभ्यास करके शक्ति की अपेक्षा से आपको भी उनके समान जान कर और आपको उनके समान व्यक्तरूप करने के लिये उस (आप) में लीन होता है, तब आप कर्म का नाश कर व्यक्तरूप सिद्ध परमेष्ठी होता हैं।

''अलौत्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वं गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पम्।
कान्तिः प्रसादः स्वरसौम्यता च योगप्रवृत्तेः प्रथमं कि चिह्नम्''।। (1)

अर्थ-अलौल्य अर्थात् विषयों में इन्द्रियों की लंपटता न होना और मन का चपल न होना, आरोग्य अर्थात् शरीर नीरोगी होना, निष्ठुरता न होना, शरीर की गन्ध शुभ होना, मलमूत्र का अल्प होना, शरीर कांतिसहित होना अर्थात् शक्तिहीन न होना, चित्त का प्रसन्न होना अर्थात् खेद शोकादिक मलिन भावरूप न होना और स्वर अर्थात् शब्दों का उचारण सौम्य होना, ये चिह्न योग की प्रवृत्ति के अर्थात् ध्यान करनेवाले के प्रारम्भदशा में होते हैं।

भावार्थ-ऐसे चिह्नवाले पुरुष के ध्यान का प्रारम्भ होता है।

धर्म ध्यान का फल

अथावसाने स्वतनुं विहाय ध्यानेन संन्यस्तसमस्तसङ्गाः।
ग्रैवेयकानुत्तरपुण्यवासे सर्वार्थसिद्धौ च भवन्ति भव्याः।। (16)

अर्थ-जो भव्य पुरुष इस पर्याय के अन्तसमय में समस्त परिग्रहों को छोड़कर, धर्मध्यान से अपना शरीर छोड़ते हैं, वे पुरुष पुण्य के स्थानरूप ऐसे ग्रैवेयक और अनुत्तर विमानों में तथा सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न होते है। **भावार्थ**-यदि परिग्रह का त्याग कर मुनि हो धर्मध्यान से इस पर्याय को छोड़े तो नव ग्रैवेयक, पाँच अनुत्तर और सर्वार्थसिद्धि में उत्तम देव होता है।

तत्रात्यन्तमहाप्रभावकलितं लावण्यलीलान्वितं
स्त्रग्भूषाम्बरदिव्यलाञ्छनचितं चन्द्रावदातं वपुः।
संप्राप्योन्नतवीर्यबोधसुभगं कामज्वरार्त्तिच्युतं
सेवन्ते विगतान्तरायमतुलं सौख्यं चिरं स्वर्गिणः।। (17)

जो जीव धर्मध्यान के प्रभाव से स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं, वे वहाँ अत्यन्त महाप्रभाव सहित, सुन्दरता और क्रीडायुक्त तथा माला, भूषण, वस्त्र और दिव्य

लक्षणादि सहित, चन्द्रमासदृश शुक्लवर्ण शरीर को पा कर, उन्नत वीर्य और ज्ञान से सुभग, कामज्वर की वेदना से रहित और अन्तराय रहित ऐसे अतुल सुखों को चिरकाल पर्यन्त भोगते हैं।

ग्रैवेयकानुत्तरभावभाजां विचारहीनं सुखमत्युदारम्।
निरन्तरं पुण्यपरम्पराभिर्विवर्द्धते वार्द्धिरिवेन्दुपादैः।। (18)

अर्थ-ग्रैवेयक व अनुत्तरादि विमानों में रहनेवाले देवों का सुख काम सेवन से रहित होता है अर्थात् उनके कामसेवन सर्वथा नहीं है तथापि उनका सुख अत्यन्त उदार है, और वह जैसे चन्द्रमा की किरणों से समुद्र बढ़ता है, वैसे ही निरन्तर पुण्य की परम्परा से बढ़ता ही रहता है। **भावार्थ**-वहाँ का सुख सदा वृद्धिरूप है।

देवराज्यं समासाद्य यत्सुखंकल्पवासिनाम्।
निर्विशन्ति ततोऽनन्तं सौख्यं कल्पातिवर्त्तिनः।। (19)

इन्द्रपद को पाने पर कल्पवासियों को जो सुख मिलता है, उससे अनन्त गुणा सुख कल्पीतों (नैव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और विजयादिक पाँच विमानों में रहनेवाले अहमिन्द्रों) को प्राप्त होता है।

संभवन्त्यथ कल्पेषु तेष्वचिन्त्यविभूतिदम्।
प्राप्नुवन्ति परं सौख्यं सुराः स्त्रीभोगलाञ्छितम्।। (20)

अथवा धर्मध्यान से पर्याय छोड़ कर, जो उन कल्पस्वर्गों (सोलह स्वर्गों) में उत्पन्न होते हैं वे देव भी अचिन्त्य विभूति के देनेवाले और स्त्रियों के भोगों सहित उत्कृष्ट सुख को प्राप्त होते हैं।

दशाङ्गभोगसम्भूतं महाष्टगुणवर्द्धितम्।
यत्कल्पवासिनां सौख्यं तद्वक्तुं केन पार्यते।। (21)

कल्पवासी देवों का सुख दशाङ्ग भोगों से उत्पन्न हुआ है और अणिमादिक आठ महागुणों से बढ़ा हुआ है; इसलिये उस सुख का कौन वर्णन कर सकता है?

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं सर्वाभ्युदयभूषितम्।
नित्योत्सवयुतं दिव्यं दिवि सौख्यं दिवौकसाम्।। (22)

स्वर्ग में देवों का सुख सर्वद्वन्द्व अर्थात् क्षोभों से रहित है, समस्त अभ्युदयों से भूषित, नित्य उत्सवों सहित और दिव्य है।

प्रतिसमयमुदीर्णं स्वर्गसाम्राज्यरूढं सकलविषयबीजं स्वान्तदत्ताभिनन्दम्।
ललितयुवतिलीललिङ्गनादिप्रसूतं सुखमतुलमुदारं स्वर्गिणो निर्विशन्ति।।

स्वर्ग के देव प्रत्येक समय में उदयरूप अर्थात् विच्छेद रहित, स्वर्ग के साम्राज्य से प्रसिद्ध, समस्त विषयों का कारण, अन्तःकरण को आनन्द देनेवाले, सुन्दर देवाङ्गनाओं की लीला और आलिंगनादिक से उत्पन्न अतुल और उदार सुख का अनुभव करते हैं।

सर्वाभिमतभावोत्थं निर्विघ्नं स्वःसुखामृतम्।
सेव्यमाना न बुद्ध्यन्ते गतं जन्म दिवौकसः।। (24)

स्वर्गनिवासी देव अपने समस्त मनोवांछित पदार्थों से उत्पन्न और निर्विघ्न ऐसे स्वर्ग सुखरूप अमृत का सेवन करते हुए व्यतीत हुए जन्म को अर्थात् गये हुए देवपर्याय को नहीं जानते।

तस्माच्चयुत्वा त्रिदिवपटलाद्दिव्यभोगावसाने
कुर्वन्त्यस्यां भुवि नरनुते पुण्यवंशेऽवतारम्।
तत्रैश्वर्यं परमवपुषं प्राप्य देवोपनीतै-
र्भोगैर्नित्योत्सबपरिणतैर्लाल्यमाना वसन्ति।। (25)

फिर वे स्वर्ग के देव भोगों को भोग कर, उस स्वर्ग पटल से च्युत होते हैं और इस भूमंडल में जिसको लोग नमस्कार करते हैं ऐसे उत्तम पुण्य वंश में अवतार लेते हैं; और वहाँ भी परम (उत्कृष्ट) शरीर और ऐश्वर्य को पाकर, नित्य उत्सवरूप परिणत ऐसे देवोपनीत अनेक भोगों से लालित और पुष्ट हुए निवास करते हैं। यह सब धर्मध्यान का फल है।

ततो विवेकमालम्ब्य विरज्य जननभ्रमात्।
त्रिरत्नशुद्धिमासाद्य तपः कृत्वान्यदुष्करम्।। (26)
धर्मध्यानं च शुक्लं च स्वीकृत्य निजवीर्यतः।
कृत्स्नकर्मक्षयं कृत्वा व्रजन्ति पदमव्ययम्।। (27)

उसके बाद अर्थात् उत्तम मनुष्य भव के सुख भोग कर, पुनः भेदज्ञान (शरीरादिक से आत्मा की भिन्नता) को अवलंबन कर, संसार के परिभ्रमण से विरक्त हो, रत्नत्रय अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र को प्राप्त कर, दुर्धर तप कर तथा

अपनी शक्ति के अनुसार धर्मध्यान और शुक्लध्यान को धारण कर और समस्त कर्मों का नाश कर, अविनाशी मोक्षपद को प्राप्त होते हैं। यह धर्मध्यान का परंपरारूप फल है।

मोहेन सह दुर्द्धर्षे हते घातिचतुष्टये।

देवस्य व्यक्तिरूपेण शेषमास्ते चतुष्टयम्।। (40)

केवली भगवान् के जब मोहनीय कर्म के साथ ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय इन चार दुर्द्धर्ष घातिया कर्मों का नाश हो जाता है तब अवशेष चार अघातिकर्म व्यक्तिरूप से रहते हैं।

सर्वज्ञः क्षीणकर्मासौः केवलज्ञानभास्करः।

अन्तर्मुहूर्त्तशेषायुस्तृतीयं ध्यानमर्हति।। (41)

कर्मों से रहित और केवलज्ञानरूपी सूर्य से पदार्थों को प्रकाश करनेवाले ऐसे वे सर्वज्ञ जब अन्तर्मुहूर्त्तप्रमाण आयु बाकी रह जाती है तब तीसरे सूक्ष्मक्रिया-अप्रतिपाति शुक्लध्यान के योग्य होते हैं।

षण्मासायुषि शेषे संवृत्ता ये जिनाः प्रकर्षेण।

ते यान्ति समुद्घातं शेषा भाज्याः समुद्घाते।। (42)

जो जिनदेव उत्कृष्ट छः महीने की आयु अवशेष रहते हुए केवली हुए हैं वे अवश्य ही समुद्घात करते हैं और शेष अर्थात् जो छः महीने से अधिक आयु रहते हुए केवली हुए हैं वे समुद्घात में विकल्प रूप हैं। **भावार्थ**-उनका कोई नियम नहीं है, समुद्घात करे और न भी करे।

यदायुरधिकानि स्युः कर्माणि परमेष्ठिनः।

समुद्घातविधिं साक्षात्प्रागेवारभूते तदा।। (43)

जब अरहंत परमेष्ठी आयु कर्म अन्तर्मुहूर्त्त का अवशेष रह जाता है और अन्य तीनों कर्मों की स्थिति अधिक होती है जब समुद्घात की विधि साक्षात् प्रथम ही आरम्भ करते हैं।

अनन्तवीर्यप्रथितप्रभावो दण्डं कपाटं प्रतरं विधाय।

स लोकमेनं समयैश्चतुर्भिर्निश्शेषमापूरयति क्रमेण।। (44)

अनन्त वीर्य के द्वारा जिनका प्रभाव फैला हुआ है ऐसे वे केवली भगवान् क्रम से दण्ड, कपाट, प्रतर, इन तीन क्रियाओं को तीन समय करके चौथे समय में इस

समस्त लोक को पूरण करते हैं। **भावार्थ**-आत्मा के प्रदेश पहले समय में दण्डरूप लम्बे, द्वितीय समय में कपाटरूप चौड़े, तीसरे समय में प्रतररूप मोटे होते हैं, और चौथे समय में इसके प्रदेश समस्त लोक में भर जाते हैं, इसी को लोकपूरण कहते हैं। ये सब क्रिया चार समय में होती है।

तदा स सर्वगः सार्वः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः।

विश्वव्यापी विभुर्भर्त्ता विश्वमूर्त्तिर्महेश्वरः।। (45)

केवली भगवान् जिस समय लोकपूर्ण होते हैं, उस समय उनके, सर्वगत, सार्व, सर्वज्ञ सर्वतोमुख, विश्वव्यापी, विभु, भर्त्ता, विश्वमूर्ति और महेश्वर ये नाम यथार्थ (सार्थक) होते हैं।

विज्ञान की उपलब्धियाँ व कमियाँ

(सत्य हेतु विज्ञान प्रगतिशील किन्तु परम सत्य से अज्ञात)

(विदेशी वैज्ञानिक टी.वी. चैनलों के आधार से)

सृजेता-आचार्य कनकनन्दी

(चालः1.क्या मिलिए....2.आत्मशक्ति...)

धीरे धीरे सत्य के लिए विज्ञान नित्य आगे बढ़ रहा है।
परम सत्य तो अभी नहीं जाना भौतिक में ही आगे बढ़ रहा है।।
इलेक्ट्रोन न्यूट्रोन प्रोट्रोनमय अणु से आगे बढ़ रहा है।
प्लाज्मा क्वार्क से ले न्यूट्रीनो से क्वाटम तक भी बढ़ रहा है।। (1)...
सौरमण्डल से आकाशगंगा व दो ट्रिलियन गेलेक्सी मान रहा है।
स्ट्रींग थ्योरी के अनुसार तारों (विश्व के) से भी अधिक विश्व मान रहा है।
ज्ञात मैटर से भी अधिक डार्क मैटर को खोज रहा है।
ज्ञात मैटर तो चार प्रतिशन (4%) डार्क मैटर शेष मान रहा है।। (2)...
सुपरनोवा से ब्लैक होल व न्यूट्रोन स्टार को मान रहा है।
दृश्य विश्व से भी अधिक अदृश्य विश्व को भी मान रहा है।।
हमारे सूर्य से भी मिलियन गुणा ब्लैक होल व तारे मान रहा है।
डार्क विश्व व डार्क स्टार व डार्क रेडियेशन मान रहा है।। (3)...

पृथ्वी से परे अनेक ग्रहों में उन्नत सभ्यता को मान रहा है।
सूक्ष्मजीवों से ले विकसित एलियन को भी मान रहा है।।
न्यूटन के ग्रेविटी से आगे स्ट्रांग न्यूक्लियस फोर्स मान रहा है।
डार्विन के जल में जीवोत्पत्ति से परे वाल्किन (ज्वालामुखी) में
जीवोत्पत्ति खोज रहा है।। (4)...
बिना सूर्य किरण व ऑक्सीजन भी जीवों का अस्तित्व मान रहा है।
पृथ्वी के जीवों के तत्त्व से परे अन्य तत्त्वों के जीव भी मान रहा है।।
न्यूटन के भौतिक सिद्धान्त से भी परे सापेक्ष सिद्धान्त मान रहा है।
हाइजनबर्ग व प्लांक आदि के अनिश्चितता आदि सिद्धान्त मान रहा है।। (5)...
तथापि अभी भी डार्क मैटर व डार्क एनर्जी को न सिद्ध कर पाया है।
विश्व उत्पत्ति सिद्धान्त से ले जीवोत्पत्ति को न सिद्ध कर पाया है।।
चेतना के रहस्य न जान पाया है न जन्म-मृत्यु से ले पुनर्भव।
स्वप्न शकुन अंगस्फुरण से भूत प्रेत व नारकी देव मोक्ष तक।। (6)...
शरीर की ही समस्त क्रिया प्रतिक्रिया से ले रोग व चिकित्सा तक।
मन व मस्तिष्क को भी पूर्णतः जान न पाया क्या जानेगा आत्मा तक।।
विश्व स्वरूप व विस्तार को क्या जानेगा नहीं जान पाया पृथ्वी को।
पृथ्वी में पानी कहाँ से आया क्या जानेगा नहीं जान पाया समुद्र को।। (7) ...
मूर्तिक अणु से ले मूर्तिक विश्व को ही नहीं जाना क्या जानेगा अमूर्तिक।
परम शुद्ध परमाणु व वर्गणाओं को भी नहीं जाना क्या जानेगा मैटर डार्क।
इसमें वैज्ञानिकों की सीमा बाधक है वे केवल मानते भौतिक तत्त्व।
अमूर्तिक व चेतन तत्त्व में उनका नहीं विश्वास व ज्ञान अभी तक।। (8)...
वे स्वयं को ही मानते हैं हम बनें हैं तारों के अणु से ही।
इसके अतिरिक्त हमारे अस्तित्व कदापि नहीं कभी भी।।
असत्य से भी बिग बैंग (विश्व सृष्टि) हुआ यह सबसे महा असत्य है।
तथाहि समय, आकाश, जीव को नहीं जानते पूर्णतः क्या सत्य है।। (9)...
तथापि वैज्ञानिक होते सनम्र सत्यग्राही उदारमना व प्रगतिशील।
परोपकारी भावना युक्त पूरी पृथ्वी के हित हेतु भी प्रयत्नशील।।

संकीर्ण कट्टर क्रूर पन्थ मत जाति धर्म भाषा राष्ट्र परे करते शोधबोध।
पर्यावरण सुरक्षा हेतु अन्य सभी से भी अधिक सम्वेदनशील अहिंसक।। (10)...
इनके कारण से अनेक अन्ध परम्परा व संकीर्णता हो रही दूर।
इस हेतु वे स्वागत योग्य, परम सत्य हेतु 'कनक सूरी' करे स्वागत/(आह्वान)।। (11)...

नन्दौड़, दि-15/10/2019, रात्रि 8.52 व 9.37

(इस कविता के विषय के विशेष परिज्ञान हेतु कविकृत ''भारतीय/(जैन) तथ्य जो आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से परे'' ज्ञानधारा...प्रायः 25 से तीस (30) शोध पूर्ण कृतियों का अध्ययन करें।)

प्रदूषणकारी मानव-आध्यात्मिक दृष्टि से अविकसित

(भस्मासुर या रक्तबीज सम मानवकृत प्रदूषण मानव के ही संहारक)

-आचार्य कनकनन्दी

(चालः1.छोटी-छोटी गैया...2.सायोनारा...)

प्रदूषण! प्रदूषण! मानवकृत दो प्रदूषण।
भावद्रव्य रूप से दो भेद, भाव से जयमान/(उत्पन्न) द्रव्य भेद...(स्थायी)
तृष्णामदभोगोपभोग वर्चस्व है, ये हैं प्रमुख भावप्रदूषण।
इससे जायमान अन्य भाव प्रदूषण, सत्ता-सम्पत्ति हेतु शोषण/(भ्रष्टाचार)।
सत्ता-सम्पत्ति जितनी बढ़ती जाती, तृष्णा से ले वर्चस्व की वृद्धि (होती)।
''लोभ से लोभ की वृद्धि होती'' ईन्धन से अग्नि की यथा वृद्धि (होती)।। (1)
यह ''चैन रियेक्शन'' बढ़ती जाती, रक्तबीज सम इसकी (होती) वृद्धि।
भस्मासुर सम मानव स्व को ही पहुँचा रहा है क्षति/(हानी)।।
उक्त हेतु मानव चाहे अधिक धन, अतएव कर रहा प्रकृति शोषण।
मकान, दुकान, फैक्ट्री, रेल, रोड़ों का, करके अनावश्यक निर्माण।। (2)
भोगोपभोग वर्चस्व/(युद्ध) हेतु अहितकर, सामग्रियों का करते निर्माण।
तथाहि क्रय-विक्रय प्रयोग करते, हिंसात्मक व रोगकारक प्रसाधन।।
इस हेतु करते मृदा जल वनस्पत्ति से पशु-पक्षीओं का हनन।
गरीब, किसान, मजदुर, असहाय, दीन-हीन/(रोगी) मानवों का भी शोषण।। (3)
क्रिया की प्रतिक्रिया इससे हो रही, प्रकृति विद्रोह कर रही।

मृदाजलवायुभोजन प्रदूषित हो रहे, असन्तुलित प्रकृति हो रही।।
अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बवंडर से ले, भूकम्प, बाढ़ भी बढ़ रहे हैं।
इससे धन, जन आरोग्य से ले, विकास में बाधा हो रही है।। (4)
जीवन जीने हेतु प्रमुख, प्राणवायु भी विषाक्त हो रही है।
जीवनदायी प्राणवायु अभी रोग वृद्धि होने से मृत्यु दे रही है।।
अस्थमा, एलर्जी, खाँसी डायबिटीज से ले कैंसर रोग बढ़ रहे हैं।
चार वर्ष से ले दशवर्ष की, आयु भारत में घट गई है।। (5)
भोजन, पानी, आवास, आदि, हो रहे हैं विषाक्त व रोगकारक।
तन-मन-आत्मा भी हो रहे हैं, अस्वस्थ्य से ले दुर्बल।।
जिससे कार्य क्षमता घट रही है, तथा बुद्धि व भावना।।
जिससे व्यक्ति से ले भारत (पृथ्वी) का न हो रहा है सही विकास।। (6)
छोटे नगर छोटे नरक व, बड़े नगर बड़े नरक बन गये।
चमचमाती गाड़ी से ले ऊँचे मकान अभिशाप बन गये।।
ग्लेशियर पिघलने से भी समुद्र का, जल स्तर भी बढ़ रहा है।
समुद्र तटस्थ नगर जल समाधि लेने हेतु विवश हो रहे हैं।। (7)
आगामी छट्ठा महाप्रलय का, सृजन स्वयं कर रहे हैं।
धरती को छोड़कर अन्यग्रह में, निवास हेतु प्रयत्न कर रहे हैं।।
किन्तु स्वदोष दूर कर धरती को, सुरक्षित न कर रहे हैं।
''विनाशकाले विपरीतबुद्धि'' से, सोने के अण्डे हेतु प्रकृति का नाशकर रहे।। (8)
इससे सिद्ध होता मानव आत्मिक दृष्टि से विकसित नहीं हुए हैं।
आध्यात्मिक विकास हेतु ''सूरी कनक'', आह्वान कर रहे हैं।। (9)

शुद्धात्मा गुण गण कीर्तन/ शुद्धात्मा धर्म कीर्तन

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल: 1.जय जय जगदीश हरे हरे.. 2.कुहू कुहू बोले कोयलिया... 3.क्या मिलिए...)

आत्म गुण सह...विभाव रिक्त...होता धर्म सुखकारी...
मोह क्षोभ रिक्त...समता सह...होता धर्म दुःखहारी...
आत्म श्रद्धा सह...आत्म प्रज्ञा युक्त...आचरण होता साम्यकारी...

मोह मद रिक्त...शुद्धभाव युक्त...अनन्त ज्ञान सुख वीर्यकारी...
परभाव रिक्त...स्वभाव सहित...द्रव्य भाव नोकर्म नाशकारी...
शुद्ध बुद्ध आनन्द...निर्मल निरामय...आत्मरस में ही लीनकारी...
संकल्प विकल्प संक्लेश रिक्त...चैतन्य चमत्कार शिवकारी...
संसार भ्रमण विरहित...सत्य शिव सुन्दर हितकारी...
निश्चल निच्छल निर्भय युक्त...जन्म जरा मृत्यु दुःखहारी...
उत्पाद व्यय ध्रौव्य शुद्ध रूप...अचिन्त्य अनुपम गुणधारी...
भौतिक रहित आत्मिक सहित...अभिन्न षट्कारक अविकारी...
स्वयं कर्त्ता धर्त्ता स्वयं ही भोक्ता...त्रैलोक्य विभु आत्मविहारी...
विश्व स्थित...विश्व से महत्...विश्वव्यापी स्व स्वभाव विहारी...
स्व चिन्तन ध्यान अनुभव द्वारा...स्वरूप प्राप्ति लक्ष्य 'कनकसूरी'...

नन्दौड़, दि-3/11/2019, प्रातः 8.47

बागड़वासियों के दोष दूर से हो रही-क्रान्ति-शान्ति!

(बागड़ अञ्चल के कुछ ग्रामों के गुण-दोष व वर्तमान में हो रही है आध्यात्मिक क्रान्ति)

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चालः 1.देख तेरे संसार ही हालत...)

बागड़ के गुण-दोषों का...कनक गुरु ने किया बखान...
चलाया आध्यात्मिक/(ऐतिहासिक) अभियान...
ज्ञान क्रान्ति (स्वाध्याय) से जन-गण-मन में...हुआ अपूर्व प्रभाव/(प्रभात)
चलाया आध्यात्मिक अभियान...(स्थायी)...
यहाँ के लोग भद्र (सरल) स्वभावी...गुरुभक्त हैं आहारदानी...
अतिथि सत्कार में अग्रणी...मान-मनुहार-आदरभावी...
सेवा-सहयोग संस्कृति से...यह भूमि है महान्...चलाया...(1)...
अनेक गुण सह होने पर भी...स्व-दोष को न जान पाते...
हिन्दी शुद्ध इन्हें न आती...ग्रामीण उर्दू बोली बोले...
सुना सुनी शब्द बोलते...नहीं व्याकरण का ज्ञान...चलाया...(2)...

भाषा बोध नहीं था फिर भी...स्वयं को समझते थे ज्ञानी...
गुरुवर को मान बैठे थे...हिन्दी के अल्प भाषा ज्ञानी...
स्वयं को मान रहे थे हमको...हिन्दी का है स्पेशल ज्ञान...चलाया...(3)...
आत्मस्वरूप (मैं) की विपरीत मान्यता...देहात्म बुद्धि के कारण...
घमण्ड, भूत-प्रेत, भटकती आत्मा...मरणोपरान्त होता है आत्मा...
भाषा-भाव न जाने अल्पज्ञ...लौकिक मैं में ही रममाण...चलाया...(4)...
गुण-गुणी की प्रशंसा करना...गलत मानते थे ये अज्ञ प्राणी...
प्रशंसा कर्त्ता कनक गुरु को...विपरीत माने थे ये कुज्ञानी...
बान्धते रहते थे कर्मघाती...करके निन्दा रस पान...चलाया...(5)...
धार्मिक ग्रन्थ लिखना छपाना...रखना भी ये पाप मानते...
स्वाध्याय में रूचि नहीं थी...ज्ञानदान को गलत माने थे...
ज्ञानी गुरु की ज्ञान चेतना से...सब जन थे अञ्जान...चलाया...(6)...
अन्य अनेक विषय भावों में...इनमें व्याप्त थी अनेक भ्रान्ति...
ज्ञान-विज्ञान अनुभव शून्य थे...वञ्चित बोध से दीर्घकालिन...
गुरुदेव के प्रति प्रश्नों से...परिवर्तन हुआ महान्...चलाया...(7)...
बोली आडम्बर युक्त बाह्य क्रिया...मन्दिर दर्शन पूजा मात्र धर्म...
रूढि-परम्परा स्वार्थ युक्त...श्रावक समाधि से अनभिज्ञ...
आत्म/(भाव) विशुद्धि गुण वृद्धि से...सबका हुआ सुधार...चलाया...(8)...
नन्दौड़ ग्राम बड़ा बड़भागी/(पुण्यशाली)...यहाँ से प्रारम्भ हुई क्रान्ति...
कलिकाल श्रेयांस प्रवीण...नन्दा देवी का महा योगदान...
चक्रवर्ती सम सातिशय...इनका पुण्य महान्...चलाया...(9)...
आबाल वृद्ध बन रहे ज्ञानी...लेखक कवि समीक्षाकारी...
भाव अभिव्यक्ति में अग्रणी...ज्ञानदान में पुरोगामी...
इनके भाव-व्यवहार-लक्ष्य का...श्री संघ करे सम्मान...चलाया...(10)...
इस क्रान्ति के कारण से ही...'सुविज्ञ' जनों में गुण ज्ञान वृद्धि...
आहार औषध ज्ञान दानादि...सेवा सहयोग भक्ति प्रवासादि...
एक एक परिवार द्वारा चौमासा...कर रहा बड़ा कमाल...चलाया...(11)...

नन्दौड़, दि-02/11/2019 व दि-03/11/2019, मध्याह्न 3.36

आध्यात्मिक सन्तप्रवर आचार्य श्री कनकनन्दी श्रीसंघ के निस्पृह निराडम्बर चातुर्मास प्रवासादि के प्रभाव!

(ऐतिहासिक अद्वितीय नन्दौड़ ग्राम में एक परिवार द्वारा तीन चातुर्मास का अपूर्व लाभ व बागड़-मेवाड़ अञ्चल से ले अन्य प्रदेशों से प्रायः 400 चातुर्मासों हेतु निवेदन!)

अनुमोदक-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चालः ऐ वतन ऐ वतन हमको तेरी कसम...)

अलौकिक श्रमण...कनकनन्दी गुरु...

आपकी राह/(निश्रा) में आत्मशान्ति/(वैभव) बढ़े...

धन मान प्रसिद्धि को क्यों चाहे हम?...

तेरी सेवा/(निश्रा) से सातिशय पुण्य/(ज्ञान, गुण) मिले/

(बढ़े)...आलौकिक श्रमण...(ध्रुव)

निराडम्बर गुरु...निस्पृही सन्त हैं...वीतरागी गुरु...अपरिग्रही हैं...

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा न करे...ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि से परे /

(धन जन मान भीड़ बोली परे)...

जो भी भव्य आता...भाग्य उसका जगे...सुख साता समाधान शान्ति मिले...

अलौकिक श्रमण...(1)...

निस्पृह भाव से नन्दौड़ ग्राम में...ऐतिहासिक त्रय चातुर्मास करे...

कलिकाल श्रेयांस प्रवीणचन्द्र...नन्दादेवी परिवार पुण्य करे...

/(ऋषभकुमार सहयोग विशेष करे)...

जन-गण-मन में उत्साह बढ़े...इनकी प्रायोगिक प्रेरक क्रान्ति से...

अलौकिक श्रमण...(2)...

संघ में गाड़ी नहीं...साथ चौका नहीं...नौकर आडम्बर तामझाम नहीं...

निरपेक्ष स्वावलम्बी सहज सरल...स्व प्रेरक भक्ति से भक्त सेवा करे...

/(आहार औषधि ज्ञान दान करे)...

ज्ञान प्रभावना देश-विदेशों में...वैज्ञानिक शिष्य भावना से करे अलौकिक श्रमण...(3)...

कोई तन से करे...कोई मन से करे...धन जन श्रम शक्तिभक्ति से करे...

व्यक्तिगत से ले समूह चौमासा करे...स्वतन्त्र एक-एक परिवार के...

/(ग्राम जंगल शहर एकान्त शान्त में)...

आनन्द दायी सरल जीवन जी रहे...ज्ञान गुण कला भक्ति बढ़ा रहे...

अलौकिक श्रमण...(4)...

कोई बागड़ के हैं...कोई मेवाड़ के...राजस्थान कर्नाटक प्रान्त से हैं...

मध्य-उत्तर प्रदेश व दिल्ली से हैं...गुजरात महाराष्ट्र आदि राज्य भी हैं...

/(श्वेताम्बर दिगम्बर हिन्दू आदि भी हैं)...

प्रायः चार शतक (400) चातुर्मास हेतु...'सुविज्ञ' जन निवेदन करे भक्ति से...

अलौकिक श्रमण...(5)...

नन्दौड़, दि-18/10/2019, रात्रि प्रायः 9.00

आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव की निस्पृहता

निराडम्बरता, बिना बोली से प्रभावित हो 400 चातुर्मास हेतु निवेदन

-आर्यिका सुवत्सलमती

(चालः ये देश है वीर जवानों का...)

कनकनन्दी श्री गुरुवर जी, ज्ञानी ध्यानी व विज्ञानी

इन गुरु के विषय में क्या कहना? निस्पृहता इनका है गहना।। धृ.

धन-जन व मान परे एकान्त मौन से वास करे।

जंगल में भी मंगल करे समता शान्ति को ही वरे।। हो हो ऽऽऽ

नंदा प्रवीण शहा परिवार ने युगान्त इतिहास रचा।

इनसे प्रेरणा पा करके विश्व भी प्रेरित हो रहा।।

अनेक प्रान्तों के भक्तगण चातुर्मास हेतु आतुर हैं।

जैसे चातक पक्षी स्वाती की बूंद को तरसता है।।

महाराष्ट्र प्रांत में धर्मतीर्थ पर (आचार्य) गुप्तिनंदी गुरु श्री संघ।

आजीवन चातुर्मास व सतत निवास भी चाहे।।
देऊलगांव राजा के गुरुभक्त, गुरुवर का सानिध्य चाहे।
नागपुर, मुम्बई, औरंगाबाद, नासिक में चौमासा चाहे।।
प्रसन्न ऋषी मुनिवर श्री गुरुवर के पोता शिष्य है।
इन्दौर के ऋषी तीर्थ पर आजीवन गुरु का संग चाहे।।
नितिन भैया का आजीवन चातुर्मास हेतु निवेदन है।
प्रायः तीन सो (300) बार हरा श्री फल उन्होंने चढ़ाया है।।
सागवाडा समाज का कहना है गुरुदेव हमारे विधाता हैं।
आजीवन या जब भी चाहो चातुर्मास, निवास करना है।।
खोड़नीया परिवार की गुरुवर पर निश्चल भक्ति है।
योगेन्द्र गीरि पर चौमासे पाँच (5) से दस (10) तक चाहते है।
राजस्थान के चौमासों के मैं नाम तुम्हें सुनाती हूँ।
बिजोलिया निवाई लावा कोटा जयपुर के भक्तों को मानती हूँ।।
सलूम्बर (छगनलाल) उदयपुर से कृष्णावत जी का निवदेन है।
गारीयावास (मुकेश) देबारी (टाया परिवार) समवशरण मन्दिर (काँरवा परिवार) है।
परसाद, केशरीयाजी कानपूर, सेक्टर ग्यारह गुरुदेव (हमेशा) तुम्हारा है।
देवपूरा (विमल) गनोड़ा बनकोडा (महीपाल सिंह) खरका गींगला परतापूर है।।
भीलूड़ा का भरडा़ परिवार, ओबरी के आबाल वनीता श्रावक गुण।
पुनर्वास कॉलोनी के प्रत्येक शिष्य, टीना मनीष चौमासा चाहते है।
चीतरी मणिभद्र दीपेश भूपेश मयंक मधोक आजीवन गुरु सेवा चाहे।
पारडाइटीवार के जैन हिन्दू गुरुवर का चौमासा चाहे।।
बांसवाड़ा (अनेक कॉलोनी) के श्रावक गण गुरुवर का चातुर्मास चाहे।
अंदेश्वर अतिशयक्षेत्र पर कुशलगढ़ वासी वर्षायोग चाहे।।
गुजरात प्रांत के निवासी गुरुवर का चातुर्मास चाहे।
कोबा (आश्रम) शहापूर (अहमदाबाद) ईडर तारंगा सिद्ध क्षेत्र वाले चाहे।।
कर्नाटक के शमनेवाड़ी में (ब्र.पल्लवी) गुरुवर का वर्षायोग चाहे।

सादा जीवन उच्च विचार (वाले) ग्रामीण गुरुवर को भाये।।
दिगम्बर हो या श्वेताम्बर, या हो हिन्दु राजपूत/(कोई धर्मी)।
गुरुभक्ति से आकर्षित हो एकान्त ग्रामों में भी आते हैं।।
बिना बोली मंच माईक, बाह्य आडम्बरों से रिक्त।
आत्म प्रभावना कर रहे, ज्ञानानन्द पा रहे हैं।।
अन्त्योदय की भावना लेकर, गुरुदेव सर्वोदय करते है।
सत्वेषु मैत्री का भाव धरे, आनन्द मंगल करे हैं/(वात्सल्य भाव धरते हैं।) ।।

नन्दौड़ दि. 19/10/2019 मध्याह्न 1.15

बागड़ अञ्चल के गुण-दोष-उपलब्धियाँ-ज्ञान क्रान्ति

-आर्यिका सुवत्सलमती

(चालः क्या मौसम आया है...)

गुण कीर्तन करते हैं, गुणस्तवन करते हैं/(ज्ञानानन्द पाते हैं)...
स्वाध्याय से ज्ञान की लहर है चली...
स्वयं के बोध की मन में ज्योति जली...
कनकनन्दी गुरुवर ज्ञान क्रान्ति कर्त्ता
मुक्ति पथ के राही हैं भव्यों के त्राता...गुणकीर्तन (स्थायी)
बागड़वासी भ्रद स्वभावी गुरु सेवा में है तत्पर
अतिथि सत्कार में अग्रणी शालीन, नम्र, उदार
सेवा, सहयोग, दान मान-मनुहार सह
ज्ञान दान करके अभी बन रहे ज्ञानवान्।। कनकनन्दी...(1)
अनेक गुण होने पर भी स्व गुण-दोष न जाने
शुद्ध हिन्दी नहीं आती न है व्याकरण ज्ञान
कुज्ञानी/(अज्ञानी) थे सभी पर, स्वयं को माने थे ज्ञानी
कनकनन्दी को भाषा में माने थे अल्पज्ञानी।। कनकनन्दी...(2)
इस अञ्चल के बहुजन स्व-आत्मा को न जाने।

मरने पर ही आत्मा होता भूत-प्रेत ही जाने।।
''मैं'' बोलने से घमण्ड होता ऐसी घुट्टी पी सबने
देहात्म बुद्धि, भटकती आत्मा विपरीत भाव धारे।। कनकनन्दी...(3)
गुण-गुणी प्रशंसा करना इन्हें विपरीत लगता
अनिन्दक प्रशंसाभावी कनक गुरु को गलत माने
घाती कर्म बान्ध रहे थे निगोद की तैयारी
करूणा हृदयी गुरुवर के सदुपदेश से जागे।। कनकनन्दी...(4)
ग्रन्थ लिखना इन्हें न सुहाता क्यों लिखते हो कहते थे
स्वाध्याय में रूचि नहीं थी संसार में ही रमते थे
ज्ञानानन्द को न जाने दूर थे आत्मानन्द से
सांसारिक तनाव लेकर दुःखों को वरते है।। कनकनन्दी...(5)
कौन क्या कहेगा? यह महामारी इस अञ्चल में बहुत थी।
अपक्व फल के समान ज्ञान विकास न हुआ था
ज्ञानदानी गुरुवर की कृपादृष्टि मिली
अधोगति में न जाएँ ऐसी दृष्टि मिली।। कनकनन्दी...(6)
कनकनन्दी गुरुवर श्री हम तुम्हारे साथ चले
मन ये मगन है स्व की लगन हैं आत्मा का ही ध्यान करे
कवि हृदय है गुरुवर विज्ञानी वाग्मी
शिवपथ के अनुगामी शिष्यों के त्राता।। कनकनन्दी...(7)
गुरु जो कहे है आगमवाणी हम आज्ञा पालक अनुगामी
श्रद्धा उन्हीं की भक्ति उन्हीं की ध्यान उन्हीं का नित्य करे
वैज्ञानिक हैं गुरुवर विधि नियम ज्ञाता
विनम्रता से निश्रा में आत्म बोध पाता।। (वात्सल्य पाता) कनकनन्दी...(8)

नन्दौड़ दि. 6/11/2019 प्रातः 8.35